Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय
का प्रकाशन

लर्निंग कर्व

हिन्दी अंक 10 : जुलाई, 2015

प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा

















सम्पादन

चन्द्रिका मुरलीधर
इन्दुमति एस.
मधुमिता सुधाकर
प्रेमा रघुनाथ

सलाहकार

रामगोपाल वल्लत
एस. गिरिधर
उमाशंकर पेरिओडी

इस अंक के विशेष सलाहकार

जिगिशा शास्त्री
किन्नरी पण्ड्या

हिन्दी अनुवाद

सत्येन्द्र त्रिपाठी
भरत त्रिपाठी

हिन्दी अंक सम्पादन

राजेश उत्साही

डिजायन

पेंटागन कम्युनिकेशन प्रा.लि.
+91 080 22212942/946

छायाचित्र सौजन्य

अन्दर के पृष्ठों पर बार्डर डिजायन : जेन साही,सीता स्कूल,कर्नाटक

इस अंक के आवरण तथा अन्दर के पृष्ठों पर उपयोग किए फोटो अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के सदस्यों ने विभिन्न कार्यक्रमों के दौरान लिए हैं। जरूरी नहीं है कि लेखों के अन्त में दिए गए छायाचित्रों का लेखों से कोई सम्बन्ध हो। उनका उपयोग केवल सज्जा के लिए किया गया है।

मुद्रक

SCPL डिजायन
बेंगलूरु - 560 062
+91 80 2686 0585
+91 98450 42233
www.scpl.net

कृपया ध्यान दें : इस अंक में प्रकाशित लेख मूलतः लर्निंग कर्व (अँग्रेजी) XXII, मई 2014 के लेखों का हिन्दी अनुवाद है। लेखों में व्यक्त विचार और दृष्टिकोण लेखकों के अपने हैं, उनसे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

''लर्निंग कर्व अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का एक प्रकाशन है। इसका उद्देश्य शिक्षकों, शिक्षक–अध्यापकों, स्कूल प्रमुख, शिक्षा अधिकारियों, अभिभावकों और गैर–सरकारी संगठनों तक ऐसे प्रासंगिक और विषयगत मुद्दों में पहुँच बनाना है जो उनके रोजमर्रा के काम से सम्बन्धित हैं। लर्निंग कर्व शैक्षिक जगत के विभिन्न दृष्टिकोणों, अभिव्यक्तियों, परिप्रेक्ष्यों, नई जानकारियों और नवाचार की कहानियाँ प्रस्तुत करने के लिए एक मंच प्रदान करता है। इसका मूल विचार 'शैक्षणिक' और 'अभ्यासकर्ता' के मध्य सन्तुलन हेतु उन्मुख पत्रिका के रूप में स्थापित होना है।''

सम्पादक की ओर से



लर्निंग कर्व का यह अंक किसी भी व्यक्ति के जीवन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कालखण्डों में से एक – प्रारम्भिक बाल्यावस्था – पर केन्द्रित है। शिक्षा के किसी भी अन्य पहलू के बारे में जो भी मतभेद हों, यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसके बारे में सभी एकमत हैं कि जन्म से लेकर आठ वर्ष की आयु तक का समय सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होता है और यह किसी के जीवन को बना या बिगाड़ सकता है। यह बात इतनी सार्वभौमिक है कि यह सभी संस्कृतियों के लिए समान रूप से सत्य है।

यह ऐसे महत्त्व तथा विस्तार का विषय है कि हम सभी उसके लिए एक पूरा अंक समर्पित करने के अपने निर्णय में एकमत थे। शिक्षाशास्त्री तथा मनोवैज्ञानिक क्यों इसे जीवन का वह प्रमुख समय मानते हैं जब शैक्षिक प्रयास किए जाना चाहिए, और यदि उन प्रयासों से सर्वोत्तम दीर्घकालिक परिणाम अपेक्षित हों तो वे किस तरह किए जाना चाहिए, ये महत्त्वपूर्ण तथा सतत जारी रहने वाले सरोकार, उन सभी लोगों के लिए हैं जिनका बच्चों से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध है। इनमें सबसे पहला स्थान माता–पिता का है जो एक शिशु के जीवन के प्रथम व्यवस्थापक होते हैं। तब प्रत्येक बात सीखने का अवसर होती है क्योंकि हर बात आश्चर्यजनक रूप से नई होती है। चाहे वह भाषा को ग्रहण करना हो, अंग संचालन के कौशल हों, चाहे मानवीय सम्पर्कों तथा सीखने की कला सीखने जैसे जीवन के कौशल हों, ये सभी उन जीवन्त प्रथम वर्षों में हर क्षण घटित होते हैं। आदर्श रूप से, प्रारम्भिक वर्षों का पाठ्यक्रम समग्र रचनात्मकता को समाहित करने वाला होना चाहिए, जिसमें संगीत और कलाएँ, प्रारम्भिक गणित तथा भाषा का विकास शामिल हों। विशिष्ट आवश्यकताओं को पहचानना तथा उनको शामिल करना भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। यह दृष्टिकोण इस क्षेत्र में शोध कार्य को प्रमुख महत्त्व देता है, सफल तथा सार्थक प्रारम्भिक बाल शिक्षा कार्यक्रमों को सुनिश्चित करने के लिए बच्चों के साथ काम करने के सभी पहलुओं पर सतत ध्यान केन्द्रित रखना जरूरी होता है। यह तभी सम्भव है जब इस क्षेत्र में नित नूतन खोजों के लिए निरन्तर तलाश तथा संवाद हो।

शासकीय तथा निजी संस्थाएँ इससे भली–भाँति अवगत हैं और वे यथासम्भव अच्छी से अच्छी बाल–शिक्षा प्रदान करना चाहती हैं। पर, क्या ऐसा होता है? निजी शिक्षा केन्द्रों के मामले में, कोई ऐसी नियंत्रक संस्था नहीं है जो यह सुनिश्चित करती हो कि बुनियादी मानदण्डों का पालन किया जा रहा है। शासकीय शिक्षा केन्द्रों के मामले में, शिक्षक प्रशासनिक बारीकियों में इस कदर व्यस्त रहते हैं कि वे वह नहीं कर पाते जो जरूरी है। आवश्यक जगह का अभाव दोनों ही मामलों में एक समस्या है और अधोसंरचना या बुनियादी सुविधाओं की कमी एक अन्य बाधा है। घर पर – जो एक बच्चे का पहला, हालाँकि अनौपचारिक, स्कूल होता है – रोजमर्रा के जीवन की बाध्यताएँ वैसे पारस्परिक क्रियाकलापों की छूट नहीं देतीं जैसी 30 वर्ष पहले सम्भव थी। इसमें कम्प्यूटर, आईपैड, मोबाइल फोन तथा टीवी – जिनमें से किसी के लिए भी सक्रिय भाषाई कौशल आवश्यक नहीं होते – के जड़ प्रभावों को भी जोड़ दें तो अवसर के बेकार चले जाने की स्थिति निर्मित हो जाती है, क्योंकि सारा समय, कीमती समय, ऐसे ही बीतता चला जाता है।

इस अंक में देश के कुछ जाने–माने और माननीय शिक्षाविदों के विषय–केन्द्रित लेख हैं जिनमें प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा (ई.सी.ई.) के बहुत व्यावहारिक तथा क्रियाशील दृष्टिकोण प्रस्तुत किए गए हैं। नमूने के तौर पर, उठाए गए मुद्दों में से कुछ इस प्रकार हैं : विभिन्न आयु वर्गों तथा योग्यता स्तरों को शामिल करने वाले किसी सफल प्रयोग का विवरण देने वाले लेख, प्रारम्भिक बचपन में रचनात्मकता तथा कलाओं के महत्त्व की रूपरेखा; इसके अलावा प्रारम्भिक बाल्यावस्था में लैंगिक अधिकार तथा पठन कौशलों को सिखाने के बारे में नई जानकारी, जिसे सीखने का अवसर हर बच्चे को मिलना चाहिए, ऐसी बातों को भी इस अंक में जगह दी गई है। दो अन्य महत्त्वपूर्ण पहलुओं – एक शोधकर्ता के रूप में शिक्षक की भूमिका तथा ई.सी.ई. में आगे बढ़ने की राह – पर भी विमर्श किया गया है।

अन्य लेखकों ने अपने अमूल्य प्रायोगिक अनुभवों को यहाँ साझा किया है। उदाहरण के लिए, एक बेहद महत्त्वपूर्ण पहलू, जिस पर हम हमेशा विचार नहीं करते, – स्कूली शिक्षा के अनुभव के लिए मानसिक तैयारी – अलग से एक लेख का विषय है, तथा इसी प्रकार ई.सी.ई. में मातृभाषा बनाम अँग्रेजी के जटिल मुद्दे की भी अलग से पड़ताल की गई है। सीखने के तरीके की अपने–आप में एक अनोखी प्रक्रिया होने, तथा प्रारम्भिक शैक्षिक प्रयास की पैरवी पर भी सामग्री दी गई है। एक अन्य विचारोत्तेजक पहलू अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की मेडक, आंध्रप्रदेश में चल रही प्रायोजना का कार्यकारी सारांश है।

यह किसी भी तरह से कोई सम्पूर्ण सूची नहीं है – यह केवल इस अंक की विविधता की एक झाँकी है। हमें लगता है कि यह विशाल परिमाण वाले एक ऐसे विषय की परिपूर्ण जाँच–पड़ताल करता है जो केवल एक–एक बच्चे को ही नहीं, बल्कि देश और दुनिया को भी प्रभावित करता है। सीधे शब्दों में कहें तो हमारे ग्रह का भविष्य इस पर निर्भर करता है कि हम अपने छोटे बच्चों के साथ किस तरह पेश आते हैं।

समाप्त करने से पहले, इस अंक के लिए हम जिगिशा शास्त्री तथा किन्नरी पण्ड्या के आभारी हैं। वे दोनों बहुत सहृदयता पूर्वक इस अंक का सलाहकार होने के लिए राजी हुईं और हर चरण में – प्रासंगिक विषयों के चयन के हमारे निर्णय से लेकर नाम सुझाने तथा अन्य विशेषज्ञों से सम्पर्क करने तक – उनकी सहायता तथा घनिष्ठ सहयोग के बिना यह सम्भव नहीं हो पाता। आप दोनों को धन्यवाद।

प्रेमा रघुनाथ
सम्पादक, लर्निंग कर्व
prema.raghunath@azimpremjifoundation.org
अनुवाद : सत्येन्द्र त्रिपाठी

इस अंक में

खण्ड अ

व्यापक परिदृश्य










खण्ड ब

बच्चों के साथ काम













खण्ड स
प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा में शोध



खण्ड द
कार्यक्षेत्र से







खण्ड अ
व्यापक परिदृश्य



प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा का महत्त्व

इन्दु प्रसाद

इस समय भारत में शिक्षा का एकमात्र अनियंत्रित क्षेत्र प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा है। स्कूली शिक्षा के लिए अनेक नियम हैं, और अब तो सार्वभौमिक स्कूली शिक्षा के लिए एक कानून भी है, तथा अनेकों विधान, नीतिगत ढाँचे तथा रूपरेखाएँ हैं। पर, वास्तव में इस तरह का कुछ भी प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के लिए नहीं है। हमारे पास ग्रामीण क्षेत्रों में आँगनवाड़ियों के माध्यम से एक सरकारी पूर्व–स्कूल (प्री–स्कूल) व्यवस्था अवश्य है। पर निजी क्षेत्र में इस पर कतई कोई नियंत्रण नहीं है। इसलिए मैं आज अपने घर में एक पूर्व–स्कूल प्रारम्भ करने का निर्णय ले सकती हूँ और कोई भी मुझसे इस बारे में कोई सवाल नहीं करेगा। न यह पूछेगा कि किस पाठ्यक्रम/बोर्ड का अनुसरण किया जाना है, क्या जब बच्चे 18 माह के हों तब उन्हें लेना विधिसम्मत है, या उन्हें केवल 3 वर्ष की आयु में ही लिया जाना चाहिए, किन न्यूनतम सुरक्षा मानदण्डों का पालन किया जाना चाहिए, संचालक द्वारा कोई प्रशिक्षण प्राप्त किया गया है या नहीं, आदि। अतः, यह सबके लिए एक पूरी तरह से खुली छूट वाला क्षेत्र है। इसलिए प्रारम्भिक बाल शिक्षा तथा देखरेख के लिए, विशेष रूप से शहरी क्षेत्र में, सभी तरह के निजी केन्द्रों – शिशु सदन (डेकेयर सेंटर्स), झूला घर (क्रेश), पूर्व–स्कूल, आदि – की जैसे बाढ़–सी आ गई है। इनमें से किसी को भी आरम्भ करने और चलाने के लिए कोई नियम नहीं हैं। अतः यह चिन्ता का बहुत बड़ा मुद्दा है क्योंकि यह बच्चों की सुरक्षा, उनके सीखने, उनके बड़े होने तथा उनके विकास को प्रभावित करता है। बचपन के प्रारम्भिक वर्षों का दौर किसी बच्चे के विकास के सबसे महत्त्वपूर्ण कालखण्डों में से एक होता है।

जहाँ यह शहरी इलाकों का परिदृश्य है, वहीं ग्रामीण इलाकों में सरकारी आँगनवाड़ियों का नियंत्रित क्षेत्र है। समग्र रूप से इसका विचार और अधिकांश राज्यों में इसके पाठ्यक्रम सम्बन्धी जो दिशा निर्देश तथा पोषण आदि के लिए मानदण्ड निर्धारित किए गए हैं, वे काफी सराहनीय हैं। परन्तु, विभिन्न कारणों से इसका क्रियान्वयन बहुत शोचनीय है। इसलिए, हमारे सामने दोनों स्थितियाँ हैं, एक ओर शहरी, अर्ध शहरी तथा ग्रामीण अनियंत्रित निजी क्षेत्र है, तथा दूसरी ओर नियंत्रित सरकारी क्षेत्र है जो काफी दयनीय हालत में है। प्रकट रूप से, तमिलनाडु अपने आई.सी.डी.एस. (इंटीग्रेटेड चाइल्ड डेवेलपमेंट सर्विसेज – एकीकृत बाल विकास सेवाएँ) कार्यक्रम में बहुत अच्छा कर रहा है, पर यह उसके सापेक्ष ही 'बहुत अच्छा' है जैसा देश के अधिकांश अन्य भागों में हो रहा है। हमें इसकी भी कोई जानकारी नहीं है कि निजी, हालाँकि अनियंत्रित, क्षेत्र कोई अच्छी सेवा प्रदान कर रहा है या नहीं। उचित पैमाने पर इसके बारे में बहुत ही थोड़े शोधकार्य या अध्ययन किए गए हैं जो हमें बता सकें कि वास्तव में क्या हो रहा है। पड़ोसी के अतिरिक्त कमरे, या गैरेज, या बगीचे में चलाए जा रहे पूर्व–स्कूल से लेकर बहुत ऊपरी धनाढ्य छोर वाली परिष्कृत पूर्व–स्कूल व्यवस्थाओं (जो बहुत अच्छी दिखती हैं पर अधिकांश लोगों की आर्थिक सामर्थ्य से परे होती हैं) तक इनकी एक पूरी शृंखला है। यह एक ऐसा विराट क्षेत्र है, जिसमें कोई साझे सिद्धान्त नहीं हैं, इसलिए इसमें 'निजी क्षेत्र' कहलाने वाली एकल सत्ता जैसी कोई चीज नहीं है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण आयाम यह है कि हमारे यहाँ विशाल संख्या में ऐसे बच्चे भी हैं जो सीखने के व्यवस्थित वातावरण के किसी भी पूर्व अनुभव के बिना, अपने जीवन के पहले साढ़े पाँच या छह वर्ष घर पर बिताकर, या उसमें से कुछ समय किसी नाकाम आँगनवाड़ी में बिताकर या किसी प्रकार ऐसे ही गुजारकर, सीधे ही सरकारी स्कूलों की कक्षा 1 में चले आते हैं। इसलिए, हमारे देश में ढेर सारे ऐसे बच्चे हैं जिनके प्रथम छह वर्ष काफी बेतरतीब होते हैं, जिनमें इस बारे में कोई वास्तविक सोच–विचार नहीं होता कि बच्चों के साथ क्या हो रहा है – इस तथ्य को देखते

हुए कि ऐसी अधिकांश स्थितियों में माता–पिता, दोनों ही काम करने वाले होते हैं, और पारिवारिक सहारे की कोई व्यवस्था कभी उपलब्ध होती है और कभी नहीं। साथ ही इसमें पोषण, स्वास्थ्य तथा सुरक्षा की समस्याएँ भी जुड़ी रहती हैं। ऐसा नहीं है कि हर जगह यही हो रहा है, लेकिन हमारे देश में बच्चे के जीवन के प्रथम छह वर्षों में जो हो रहा है, एक तरह से यह उसका एक व्यापक चित्र है।

एक अन्य वर्ग शहरों में रोजी–रोटी के लिए बाहर से पलायन करके आने वाले लोगों का है, जिसमें छोटे बच्चे अपने माता–पिताओं के साथ, उदाहरण के लिए, एक निर्माणाधीन जगह से दूसरी जगह पर डेरा डालते रहते हैं। उनका क्या होता है? वे ज्यादातर काफी अस्वच्छ और असुरक्षित परिवेशों में रहते हैं। परियोजना के आकार आदि पर निर्भर करते हुए भवन–निर्माताओं के लिए एक झूलाघर चलाना आवश्यक होता है। पर अनेक ऐसा नहीं करते। यह एक अन्य बहुत ही ढीले–ढाले तरीके से नियंत्रित क्षेत्र है। प्रदूषण, सुरक्षा, आसपास फैले हुए उपकरण, देखभाल का अभाव, स्वच्छता का अभाव, पोषण की कमी आदि को देखते हुए, यह इन बच्चों के लिए एक अत्यंत कठिन परिस्थिति होती है। इसके साथ ही, अपने गाँवों से पलायन करके आने के कारण वे अपने घरों के सहज परिवेश से भी दूर होते हैं। वे उनके गाँवों में बसे हुए बृहत परिवारों और समुदायों से कट जाते हैं और यहाँ छोटे केन्द्रीय परिवारों में, अकसर ऐसी जगहों पर रहते हैं जहाँ की भाषा उनकी अपनी भाषा से बहुत भिन्न होती है।

इसके अलावा, हम परिवार के पूरे स्वरूप में परिवर्तन के दौर से गुजर रहे हैं, जो अर्ध–शहरी तथा शहरी परिवारों को अधिक प्रभावित कर रहा है। अब घर पर दादा–दादी, नाना–नानी, चाची, बुआ, मौसी, चाचा, मामा और अन्य बच्चों आदि से भरे–पूरे परिवार निरन्तर घटते जा रहे हैं। पहले, आप लगभग दस बच्चों में से एक होते थे, जिसकी दादी या नानी नियमित रूप से कहानी सुनाती थी; हर समय आपके साथ कोई खेलने वाला होता था। रसोईघर, जो अनेक प्रकार की चीजों से भरी एक अद्भुत जगह होती है, आपकी पहुँच में होता था। साथ ही बगीचे तथा जानवरों तक भी आपकी पहुँच होती थी। चारों ओर बहुत सी चीजें होती रहती थीं जो सब मिलकर बच्चों के सीखने के लिए बहुत ही अनुकूल वातावरण निर्मित करती थीं। चूँकि आसपास अनेक और हर प्रकार के, बड़े लोग होते थे, इसलिए बच्चा ढेर सारी भाषा का अनुभव करता था। बच्चे को सीखने और बढ़ने के लिए ऐसे सभी प्रकार के अवसर मिलते थे, जो जरूरी नहीं कि किसी ढाँचे के अन्तर्गत होते थे। धीरे–धीरे एक या दो बच्चों वाले परिवार होने लगे, और इस तरह की पारस्परिक अन्तःक्रियाएँ निरन्तर कम होती गईं, जिसके कारण बच्चे के लिए चीजों को साझा करने की सोच, तथा एक–दूसरे के साथ रहने की सोच को समझना, स्वयं भाषा को सीखना, तर्क प्रक्रिया को ग्रहण करना, आदि कठिन होता जा रहा है। उदाहरण के लिए, आप देखेंगे कि दो या तीन बच्चों वाले घरों में, छोटा बच्चा अकसर चीजें ज्यादा जल्दी सीखता है। ऐसा नहीं कि छोटा बच्चा ज्यादा बुद्धिमान है या बड़ा बच्चा कम प्रतिभाशाली है। यह केवल अवसर की सुलभता की बात है – जब छोटा बच्चा उस दौर में होता है जिसमें उसका मस्तिष्क प्रखर और एक सोख्ते की तरह होता है, तब उसे एक ऐसे बड़े बच्चे की संगति का अवसर मिलता है जो पहले से ही अनेक बातें सीख रहा होता है।

शोध बताता है कि एक बच्चे के विकास – संज्ञानात्मात्क विकास, भावनात्मक विकास, सामान्य स्वास्थ्य, सीखने के प्रति रुझानों में विकास, दूसरों के प्रति रुख, आदि – में पहले छह वर्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। ये शिशुओं के लिए बड़ी बातें प्रतीत हो सकती हैं, पर ये वाकई में बहुत महत्त्वपूर्ण होती हैं, क्योंकि वे अनेक रुझानों और अपेक्षाओं को निर्मित करती हैं। मुझे लगता है कि बच्चे पहले छह वर्षों में जिस तरह भाषा सीखते हैं, उस तरह की सरलता से वे उसे फिर कभी नहीं सीखते। यदि हम मस्तिष्क के विकास को देखें, तो जिस प्रकार के स्नायुविक सम्बन्ध पहले बारह वर्षों में, और निश्चित ही पहले छह वर्षों में, बन रहे होते हैं, वे फिर कभी दोहराए नहीं जाते। निर्मित होने वाले स्नायुविक सम्बन्धों की संख्या वास्तव में आपके सीखने का परिमाण दर्शाती है – इस बात को कहने का शायद यह तकनीकी ढंग न हो, पर इसे समझने का यह एक सरलीकृत तरीका है। बच्चों को मिलने वाले विविध प्रकार के अनुभवों, और अनुभवों के बार–बार दोहराए जाने से ही किसी बच्चे को ज्यादा तेजी से सीखने में मदद मिलती है, और इससे हमारा मतलब उसके लिए उचित समय या आयु के पहले सीखना नहीं है। इसका आशय केवल इतना है कि चीजों को देखने में सक्षम होना, अवधारणाओं को विकसित करना, आसपास जो घट रहा है उसकी गतिकी को समझना, चीजों के जुड़ावों को

देखना, सम्बन्धों को देखना – ये सभी बहुत जल्दी प्रारम्भ हो जाते हैं। इसमें भाषा बड़ी भूमिका निभाती है, क्योंकि भाषा तथा संज्ञान बहुत घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं। भाषा वह माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने लिए और दूसरों के लिए संसार का निर्माण करते हैं। भाषा का सीखना जीवन में बहुत जल्दी शुरू हो जाता है। इसलिए, जब वे बहुत छोटे होते हैं तब भी, बच्चों से खूब बात करना, उन्हें चीजों को समझाना, उनसे चर्चा करना उनके भाषा कौशलों को विकसित करने में जबर्दस्त रूप से उनकी मदद करता है। हो सकता है कि तब बच्चों ने बोलना न सीखा हो, और भाषा का मतलब बोलना हो यह जरूरी भी नहीं है। सबसे पहले और सबसे ऊपर, भाषा वह तरीका है जिससे हम सोचते हैं, और बच्चे निरन्तर सोचते रहते हैं। बोलना, पढ़ना और लिखना बाद में आते हैं।

जिस बात से फर्क पड़ेगा वह है बच्चे (कह सकते हैं कि 2–3 वर्ष की आयु का) का ऐसे घर में बड़ा होना जहाँ लिखा हुआ शब्द मूल्यवान माना जाता है, इसलिए जहाँ बच्चा अपनी माँ, पिता, दादा, बड़े भाई या बहिन के साथ बैठता है और किसी किताब के पन्ने पलटते हुए, कोई कहानी सुनते हुए, कहानी और लिखे हुए शब्द के बीच के सम्बन्ध को समझते हुए, और यह समझते हुए कि लिखित शब्द के भीतर एक जादुई दुनिया बसती है, वह प्रतिदिन कुछ घण्टे बिताता है; पाँच या छह वर्ष की आयु तक पहुँचने पर इस बच्चे ने जिस प्रकार की भाषा विकसित कर ली होगी वह उसके लिए उन ऊँचे स्तर की अवधारणाओं को समझना और ग्रहण करना ज्यादा आसान बना देगी जिन्हें उसे स्कूल में सीखना होगा, क्योंकि उसका आधार पहले ही तैयार हो चुका होगा। दूसरे, उसने सीखने के प्रति लगाव भी विकसित कर लिया होता है क्योंकि सीखने के साथ उसे सकारात्मक अनुभव हुए होते हैं, और वे सकारात्मक अनुभव (अच्छी अनुभूतियाँ, आनन्दपूर्ण परिस्थितियाँ, कुछ रोमांचक क्रियाएँ) उसके मस्तिष्क की संरचना में बस गए होते हैं, और वे सभी उसके मन में समझ का एक संजाल बनाते हैं।

अब हम एक दूसरी स्थिति पर विचार करें – ऐसा घर जहाँ इस प्रकार के संसाधन का अभाव है, और उस तरह के घर का अमीर या गरीब होना जरूरी नहीं है, क्योंकि इसका धन से कोई लेना–देना नहीं होता। जहाँ धन से संसाधनों तक आपकी पहुँच आसान हो जाती है, जबकि कठिन सामाजिक–आर्थिक हालातों से आने वाले बच्चों को बहुत संघर्ष करना पड़ता है, वहीं ऐसे भी घर होते हैं जहाँ संसाधन तो होते हैं लेकिन सीखने की संस्कृति, पढ़ने के प्रति लगाव, किताबों तक पहुँच और पढ़ने तथा लिखने के बारे में उत्साह और रोमांच नदारद रहते हैं। इसलिए बच्चा उस सबके अनुभव के बिना ही छह वर्ष की उम्र में कक्षा 1 में आता है, फलस्वरूप उसे उस प्रकार के संयोजन बिठाने में सक्षम होने के लिए, विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों को समझ पाने के लिए, और अनेक अवधारणाओं को समझने के लिए कुछ समय लगता है – अतः इस दृष्टि से ऐसा बच्चा थोड़ी बाधाग्रस्त पृष्ठभूमि के साथ आता है।

पूर्व–स्कूल की धारणा वास्तव में इन अवसरों (ऐन्द्रिक अन्वेषण, संज्ञानात्मक अन्वेषण, तथा भावनात्मक जुड़ाव को प्रोत्साहित करना, एक–दूसरे के साथ खेलना सीखना, दूसरे मनुष्य के बारे में, वस्तुओं के बारे में सोचना सीखना, रंग को समझना, पढ़ने का आनन्द लेना सीखना) को प्रदान करने के लिए है। उस समय इस तरह की अनेक बातें आनन्ददायी तथा अच्छे अनुभवों के साथ सिखाई जाती हैं। यह एक स्थाई सम्बन्ध बना देता है। और यदि यह भावनात्मक सुरक्षा के वातावरण (ऐसा वातावरण जिसमें बच्चा बस बच्चा होता है। उसे जैसा वह है वैसा ही स्वीकार किया जाता है, प्रोत्साहित किया जाता है, उसे सराहा और प्यार किया जाता है, उसकी जरूरतों को समझा जाता है) में हो तो समूचा अनुभव बच्चे के मन में एक सकारात्मक बोध की तरह बैठ जाता है और हमेशा के लिए बस जाता है। इसका उल्टा भी सच होता है। प्रारम्भिक बचपन में बहुत कठिन अनुभवों (अभावों के अनुभव, हर प्रकार की हिंसा के अनुभव, ऐसे बड़े लोगों के साथ हुए अनुभव जो उन्हें छोटी उम्र में ताकतवर से भयभीत होना सिखा देते हैं जिससे उनमें बड़ों के प्रति, तथा अधिकार–सम्पन्न और नियंत्रण रखने वाले व्यक्ति के प्रति भय विकसित हो जाता है) से गुजरने वाले बच्चों के मन में ऐसे सन्देश बहुत जल्दी घर कर जाते हैं।

पर इतना भर कह देना काफी नहीं है कि बच्चों को बचपन में सीखने को प्रेरित करने वाले सकारात्मक अनुभव होना जरूरी है; वास्तव में परिणाम इस पर निर्भर करता है कि वे अनुभव दरअसल में क्या हैं। अतः मैं यह कहूँगी कि एक रद्दी खेल–स्कूल में भेजने के बजाय बच्चे को एक आनन्दपूर्ण घर पर रखना बेहतर है। यहाँ तक कि ऐसे माता–पिता या

दादा–दादी / नाना–नानी, जो ठीक–ठीक नहीं जानते कि बच्चे के साथ क्या करना चाहिए, का साथ भी बच्चों के लिए उससे कहीं कम नुकसानदायक होता है कि उन्हें ऐसे पूर्व–स्कूल में भेज दिया जाए जहाँ एक ढाँचा और सीखना तो होता है, लेकिन यह सीखना या तो उनकी उम्र से परे होता है या भय और दबाव के कारण होता है। यहाँ अपेक्षित पूरी सोच ही इस उम्र में आनन्द के अनुभव निर्मित करने और रोमांच जगाने की है। तब पहले से ही, बच्चे सवाल पूछ रहे होते हैं, जिज्ञासु होते हैं, और अनेक चीजों के द्वारा उत्साहित और रोमांचित होते हैं, ऐसी चीजों के द्वारा भी जो बड़ों को एकदम साधारण दिखाई देती हैं; बच्चों के लिए यह पूरी दुनिया ही बिलकुल नई, और रोमांच तथा दिलचस्पी से भरी होती है – जीवित रहने के लिए यह उनकी सहज निधि होती है। अपने–आप में भाषा की धारणा (जिसमें हर चीज का एक नाम होता है, एक ऐसी व्यवस्था जहाँ आप एक चीज को किसी नाम से बुला सकते हैं और किसी अन्य चीज को किसी और नाम से) और रंग की धारणा तथा एक रंग के जो विभिन्न गहरे, हल्के रूप हो सकते हैं – ये सभी अद्‌भुत होता है, संसार वाकई में एक रोमांचक स्थान होता है, खासकर उसके लिए जो बस इसमें प्रवेश कर रहा होता है। इसलिए यहाँ सोच यह है कि हम अपने बच्चों को इस तरह के अनुभव दें, जो संज्ञानात्मक दृष्टि से उत्प्रेरक और भावनात्मक रूप से सुरक्षित हों। यदि यह सम्भव होता है, तो सीखने के प्रति एक सकारात्मक रवैए का आधार निर्मित करने के साथ–साथ यह बच्चे के स्कूल में प्रवेश करने की राह को सुगम बना देता है।

पोषण एक अत्यन्त निर्णायक भूमिका निभाता है। और हमारे देश में यह एक बड़ा मुद्दा है क्योंकि कक्षा 1 में छह वर्ष की आयु में प्रवेश करने वाले हमारे अधिकांश बच्चे पोषण की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण तत्वों (विटामिन बी कॉम्प्लेक्स, खनिज, आदि) की कमी से ग्रस्त होते हैं। उनमें से अनेक, विशेष रूप से हमारी लड़कियाँ, खून की कमी से पीड़ित रहते हैं। इन सभी महत्त्वपूर्ण तत्वों की संज्ञानात्मक क्षमता में बहुत बड़ी भूमिका होती है। पोषण की कमी तथा संज्ञानात्मक क्षमता में बहुत मजबूत पारस्परिक सम्बन्ध होता है। इसलिए कक्षा 1 में प्रवेश करने वाले हमारे अधिकांश बच्चे पहले ही तीन कदम पीछे होते हैं, यही कारण है कि आँगनवाड़ी व्यवस्था में, पोषण का पहलू एक बड़ा हिस्सा होता है – ऐसा हिस्सा जिसकी हम निश्चित रूप से अपने देश में उपेक्षा नहीं कर सकते।

मध्यान्ह भोजन योजना के पीछे ठीक यही कारण था। एक तो यह उपस्थिति बढ़ाने के लिए था, लेकिन दूसरा सहज कारण था कि भोजन, मस्तिष्क के काम करने और सीखने में सीधा पारस्परिक सम्बन्ध होता है। यदि आप स्कैंडिनेवियाई देशों को देखें, उदाहरण के लिए फिनलैण्ड को, तो वे संसार के सबसे धनी देशों में से है, लेकिन उन सभी देशों के स्कूलों में मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम होता है। इसका कारण यह नहीं है कि बच्चे दोपहर का भोजन खरीदकर करने में आर्थिक रूप से सक्षम नहीं होते, या वे ऐसे घरों से आते हैं जो पोषण की दृष्टि से समस्याग्रस्त होते हैं, बल्कि ऐसा इसलिए है कि वे इसे बहुत बुनियादी और शिक्षा का अत्यावश्यक अंग मानते हैं। इसका धनी या गरीब होने से कोई लेना–देना नहीं है, बल्कि इसका कारण यह तथ्य है कि पोषण तथा सीखने में एक–दूसरे से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। पोषण न केवल आपके शरीर से जुड़ता है, बल्कि उस तरीके से भी जुड़ा होता है जिस तरह आपका मस्तिष्क काम करता है। उदाहरण के लिए, खून की कमी (अनीमिया – रक्ताल्पता) का प्रभाव स्मरण शक्ति पर पड़ता है, जो सीखने का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा होती है। इसलिए पूर्व–स्कूल में मुद्दे मस्तिष्क के विकास से, और इसलिए हम बच्चे को कैसा उत्प्रेरक वातावरण देते हैं, उसे किस तरह के सम्बन्ध निर्मित करने में मदद करते हैं, हम किस तरह का शारीरिक पोषण प्रदान करते हैं, और शारीरिक गतिविधियों के लिए जो जगह देते हैं आदि बातों से जुड़े होते हैं। यही कारण है कि हमने संगठित, संरचित पूर्व–स्कूल के वातावरण की धारणा विकसित की। अन्यथा, जिन परिवारों में ये सुविधाएँ उपलब्ध रहती हैं वे इस दृष्टि से अपने–आप में पर्याप्त हैं। मैं मानती हूँ, और बहुत लोग मुझसे असहमत हो सकते हैं, कि यदि ऐसा घर है जो ये सभी चीजें प्रदान करता है, तो वास्तव में उसके जैसी और कोई जगह नहीं हो सकती। उसका औपचारिक रूप से स्कूल होना जरूरी नहीं है। बच्चे को पूर्व–स्कूल भेजने से केवल यह होता है कि इससे उसे ऐसे संरचित वातावरण की आदत पड़ जाती है जिसका सामना उसे छह वर्ष की उम्र में करना पड़ेगा जब वह एक नियमित स्कूल में जाएगा। लेकिन भली–भाँति सबसे जुड़कर विकसित हुए बच्चों को एक नए वातावरण से तालमेल बिठाने में लम्बा समय नहीं लगता; वे इसे काफी जल्दी सीख लेते हैं।

एक बच्चे के समग्र विकास में प्रारम्भिक बचपन के इतना महत्त्वपूर्ण होने के बावजूद, लगता है कि हमने किन्ही कारणों से इसे अपेक्षित महत्त्व नहीं दिया है। जहाँ एक ओर उच्च शिक्षा पर यहाँ बहुत ध्यान दिया जा रहा है, वहीं जीवन की एकदम शुरुआत को एक तरह से भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जा रहा है। पूर्व–स्कूल शिक्षा, शिक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत नहीं आती। यह महिला एवं बाल विकास मंत्रालय का हिस्सा होती है। केन्द्र में यह विभाग सामाजिक न्याय तथा सशक्तीकरण मंत्रालय कहलाता है, पर राज्य सरकारों में यह विषय महिला एवं बाल विकास के अन्तर्गत होता है। पूरी आँगनवाड़ी व्यवस्था इसके कार्य–क्षेत्र के अन्तर्गत आती है। यदि किसी एक ही परिसर में एक प्राथमिक स्कूल के साथ एक आँगनवाड़ी भी हो तो दोनों में व्यवस्था के स्तर पर एक – दूसरे से कोई नाता नहीं होता। एक बच्चा आँगनवाड़ी में जो कुछ सीखता है, और जो कुछ वह स्कूल में कक्षा 1 में सीखेगा, उन दोनों के बीच में कोई जुड़ाव नहीं होता। आँगनवाड़ी तथा प्राथमिक स्कूल के बीच में कोई बातचीत नहीं होती। इसलिए व्यवस्थात्मक दृष्टि से, आँगनवाड़ी व्यवस्था तथा प्राथमिक स्कूल व्यवस्था के बीच कतई कोई सम्बन्ध नहीं है। एक तो, प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा को किसी बच्चे की शिक्षा के सतत प्रवाह के अंग के रूप में नहीं देखा जाता, और दूसरे इसे बच्चे की समग्र शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता।

प्रारम्भिक बचपन को अभी भी अधिकतर केवल स्वास्थ्य तथा चिकित्सा के दृष्टिकोण से ही देखा जा रहा है, अर्थात जोर अभी भी सुरक्षित जन्म, टीकाकरण आदि पर ही है। एक व्यवस्था के रूप में और व्यापक रूप से समाज के हिस्से की तरह, हमने अभी भी प्रारम्भिक बचपन के विभिन्न उत्प्रेरक तत्वों के बीच के उन सम्बन्धों को नहीं समझा है जो भविष्य के जीवन को और अधिक सशक्त बनाते हैं। उदाहरण के लिए, माता–पिता के रूप में भी हम यह नहीं समझते कि हमारी क्रियाओं में से अनेक कितनी निर्णायक होती हैं और प्रारम्भिक वर्षों में उनका कैसा प्रभाव पड़ सकता है। इसका मतलब यह नहीं है कि हमें बहुत अस्वाभाविक और संरचित माता–पिता बनने की जरूरत है, पर इस बारे में सचेत होने की आवश्यकता है कि जो कुछ भी किया जाता है उसका उस बच्चे पर प्रभाव पड़ता है जो आपके घर में रहता है। जो ढेर सारी बातों को ग्रहण करता रहा होता है, और जिसके लिए (माता–पिता के रूप में) आप उसके जीवन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति होते हैं। बच्चे के लिए, उसकी पूरी दुनिया आपके इर्दगिर्द घूमती है, और इसलिए आप जो करते हैं वह अत्यधिक रूप से निर्णायक हो जाता है। अतः बच्चा सभी अनुभवों से आपके साथ–साथ गुजरता है। इसलिए माता–पिता के रूप में हम अपनी खुद की भूमिकाओं को उतनी गम्भीरता से नहीं लेते जितनी हमें लेना चाहिए।

इसके अलावा, सर्वांगीण स्तर पर हमने इस बारे में पर्याप्त सोच–विचार नहीं किया है कि स्कूल में प्रवेश करने के पहले के पाँच–छह वर्षों में बच्चा किस प्रकार के अनुभवों से गुजरेगा और उनका कैसा प्रभाव पड़ेगा। इसके मूल में, बच्चों के बारे में, सीखने के तथा बड़े होने के बारे में, और शिक्षा के द्वारा जो किए जाने की अपेक्षा होती है उसके बारे में हमारी समग्र समझ, या उसकी कमी है। उदाहरण के लिए, मेरे पड़ोसी के घर में एक बच्चा है जो ढाई साल का है और उसकी माँ ने अपनी चिन्ता जाहिर की कि उसने अभी तक उसे पूर्व–स्कूल नहीं भेजा है, जबकि आसपास के सभी लोगों ने पहले ही अपने बच्चों को दो साल की उम्र में ही किसी पूर्व–स्कूल में डाल दिया है, और उन्होंने लिखना सीखना शुरू कर दिया है। वह बच्चा बहुत क्रियाशील है, शाम को अपार्टमेंट कॉम्प्लेक्स के बहुत से बच्चों के साथ खेलता है और पूरी सुबह अपनी दादी के साथ रहता है जो उसे पूरी तरह से खुश रखती है। मुझे इस स्थिति में अभी तक कोई कमी नहीं दिखाई देती। इसलिए उसके पूर्व–स्कूल जाने के बारे में माँ की चिन्ता उसके आसपास सब जो कर रहे हैं वह देखकर बने दबाव के कारण ज्यादा है, न कि वास्तव में बच्चे की जो जरूरत है उसके कारण। यहाँ बुनियादी खाका ही चिन्ता और भय



का कारण प्रतीत होता है। यह अपेक्षा करना तो उचित है कि बच्चे को दूसरे बच्चों से मिलना–जुड़ना चाहिए, उनके साथ काम करना, चीजों को साझा करना चाहिए, आदि, लेकिन उससे तीन वर्ष की उम्र में लिखना शुरू कर देने की अपेक्षा करना बिलकुल गैर जरूरी है। यदि हम एक बच्चे के सूक्ष्म अंग–संचालन विकास को देखें, तो लिखने की क्रिया वास्तव में आखिर में, करीब–करीब पाँच वर्ष या उससे अधिक में, घटती है। इसलिए, आसानी से जूतों के फीते बाँधने में समर्थ होना, हर तरह के बटन लगा पाना तथा लिखना वे काम हैं जो एक बच्चा तकरीबन छह साल की उम्र में ही करना शुरू करता है। और आज, अनेक पूर्व–स्कूल बच्चों को ढाई साल की उम्र में लिखने पर मजबूर करते हैं, जब मांसपेशियाँ कतई इसके लिए तैयार नहीं हुई होतीं। वास्तव में यह विकास के लिए हानिकारक है और अनेक बच्चों को क्षति पहुँचा सकता है, न केवल शारीरिक रूप से, बल्कि मानसिक रूप से भी, जो कि ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। यह तुरन्त एक अप्रीतिकर अनुभव का सन्देश भेजता है। इसके पीछे की अनुभूति या उसकी नैतिकता को एक पल के लिए पूरी तरह भुलाकर, और केवल उसके स्नायु विज्ञान को देखते हुए, यहाँ लिखने की क्रिया और वह क्रिया करने में बच्चे द्वारा महसूस किया जाने वाला दुःख, इन दोनों के बीच में एक स्नायुविक सम्बन्ध बन रहा होता है। जो सन्देश बच्चे के पास रह जाता है, वह है : "लिखना बहुत खराब काम है; मैं इसमें धीमा रहूँगा; इसके लिए लोग मुझ पर चिल्लाएँगे; मेरा हाथ दुखता है"। तब हमने इस गतिविधि को बच्चे के लिए पहले से ही दण्ड में बदल दिया है। इस गतिविधि को करने के तरीके हैं। यदि बच्चे स्वाभाविक रूप से जल्दी लिखना शुरू कर देते हैं, तो उन्हें ऐसा करने दो, लेकिन इसका निर्णय उन्हें खुद लेने दो और जैसा वे चाहें वैसा लिखने दो। इसे उस आयु में सुधारे जाने की या उनकी लिखावट की बारीकियाँ ठीक किए जाने की जरूरत नहीं है। उसे बाद में, छह साल की उम्र में, सुधारा जा सकता है, जब बच्चे का नियंत्रण बेहतर हो जाता है। यह थोड़ा बाद में करने से कोई नुकसान नहीं होता। सीखने की गति में लचीलेपन का मतलब यह नहीं है कि सीखना घटित नहीं होता। यदि एक बच्चा सकारात्मक, रोमांचक, और मानसिक रूप से चुनौती भरे अनुभवों से गुजरता है, तो वह सफल होगा, क्योंकि वह सीखने में सक्षम होने के साथ–साथ अपनी प्रखरतम मानसिक स्थिति में होता है। वह तो हम हैं जो इसे नष्ट कर देते हैं। हम ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित कर देते हैं कि उनके कारण बच्चे आठ या दस साल की उम्र पार करने तक सवाल पूछना बन्द कर देते हैं।









इन्दु प्रसाद अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलुरु के रिसोर्स सेण्टर का नेतृत्व करती हैं। फाउण्डेशन से जुड़ने से पहले वे लगभग 15 वर्षों तक स्नायुविक समस्याओं: ऑटिज्म, सेरिब्रल पाल्सी, सीखने की अक्षमताओं – से ग्रस्त बच्चों के साथ काम करने वाली, और समावेशी कक्षाओं में पढ़ाने वाली शिक्षक थीं। वे राजनीति शास्त्र में मास्टर्स के अलावा विशेष शिक्षा में बी. एड. तथा एम. एड. हैं। उनसे indu@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी



प्रारम्भिक बाल्यावस्थाः देखभाल और शिक्षा तथा शिक्षा का अधिकार

डोलाश्री मैसूर

इस लेख में प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखभाल और शिक्षा (अर्ली चाइल्डहुड केयर एण्ड एजुकेशन – ई.सी.सी.ई.), खासतौर से भारत में पूर्व–स्कूल शिक्षा, के मुद्दे से जुड़े कानून और नीतिगत बदलावों का वर्णन किया गया है। इस लेख में इस बात की पड़ताल करने की भी कोशिश की गई है कि इस महत्त्वपूर्ण नीतिगत उद्देश्य पर न्यायालयों में किस तरह सोच–विचार किया गया है। यह लेख ई.सी.सी.ई.पर संवैधानिक स्थिति के संक्षिप्त वर्णन के साथ शुरू होता है और फिर इस मुद्दे पर हुए कानूनी बदलावों को समझने की दिशा में आगे बढ़ता है।

ई.सी.सी.ई. पर संविधान जो कहता हैः

भारत के संविधान में सामाजिक कल्याण के लक्ष्यों, जैसे शिक्षा और रोजगार, को राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों के रूप में जगह दी गई है। मौलिक अधिकारों के विपरीत, कोई भी अदालत राज्य के किसी भी नीति निदेशक सिद्धान्त को लागू नहीं करा सकती या किसी नीति निदेशक सिद्धान्त के उल्लंघन से जुड़े किसी मसले पर फैसला नहीं सुना सकती।[2] हालाँकि, राज्य से यह अपेक्षा की जाती है कि कानून और नीतियाँ बनाते वक्त वह इन निदेशक तत्वों का ख्याल रखते हुए उन्हें मार्गदर्शक सिद्धान्तों के रूप में प्रयोग करेगा।

मूल रूप से, 1950 के भारतीय संविधान में सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा को अनुच्छेद 45 (उस समय का)के अन्तर्गत एक अप्रवर्तनीय नीति निदेशक सिद्धान्त के रूप में शामिल किया गया था। राज्य के इस नीति निदेशक सिद्धान्त में यह कहा गया था कि राज्य को चौदह वर्ष की उम्र तक के सभी बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रयास करना चाहिए। इसके अलावा, यह ध्यान में रखना जरूरी है कि अनुच्छेद 45 (तत्कालीन)[3] भारत के संविधान के अन्तर्गत राज्य का ऐसा अकेला नीति निदेशक सिद्धान्त था जिसमें 10 साल की अवधि दी गई थी जिसके अन्दर राज्य को नियत उद्देश्य को पूरा करना था। इस प्रावधान में ई.सी.सी.ई. और प्राथमिक शिक्षा के बीच फर्क नहीं किया गया था; इसमें सिर्फ चौदह वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की राज्य की बाध्यता का वर्णन किया गया है।

मोहिनी जैन [4] और उन्नीकृष्णन [5] के मुकदमों में उच्चतम न्यायालयः

उच्चतम न्यायालय ने अपने दो निर्णयों – मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य (1992) तथा जे. पी. उन्नीकृष्णन बनाम आंध्रप्रदेश राज्य (1993) – में शिक्षा के अधिकार के सम्बन्ध में स्थिति को स्पष्ट किया। पहले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले में शिक्षा के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत सुनिश्चित किए गए जीवन जीने के अधिकार का हिस्सा घोषित किया। न्यायालय ने माना कि शिक्षा पाने का अधिकार सभी नागरिकों को सभी चरणों पर उपलब्ध है। अब नागरिक राज्य से उन्हें शिक्षा मुहैया कराने की माँग कर सकते थे। उन्नीकृष्णन के मामले में, न्यायालय ने इस सिद्धान्त पर जोर दिया कि शिक्षा पाने का अधिकार, शिक्षा के अधिकार से जुड़ा हुआ है। हालाँकि, न्यायालय ने निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार को चौदह वर्ष की आयु के बच्चों तक के लिए सीमित कर दिया। न्यायालय ने तर्क दिया कि– (i) यह संवैधानिक निदेशक सिर्फ बच्चों के लिए उपलब्ध है, और (ii) राज्य के पास सभी स्तरों पर शिक्षा का अधिकार प्रदान करने का आर्थिक सामर्थ्य नहीं है।

[1] The Supreme Court and High Courts under Articles 32 and 226 of the Constitution can enforce fundamental rights such as the right to equality, freedom or life.
[2] Article 37, Constitution of India, 1950
[3] The forthcoming section of the article entitled “The fundamental right to education and ECCE” covers the revision that was made to Article 45 under the Constitution (Eighty-Sixth Amendment) Act, 2002.
[4] Mohini Jain v State of Karnataka, (1992) 3 SCC 666
[5] Unnikrishnan J. P. v State of Andhra Pradesh 1993 SCC (1) 645

ये दोनों निर्णय इस बात पर जोर देते हैं कि जीवन जीने के अधिकार को सार्थकता से हासिल करने के लिए शिक्षा का अधिकार अत्यावश्यक है। लेकिन, इनमें से कोई भी निर्णय प्राथमिक शिक्षा और ई.सी.सी.ई. के बीच में फर्क नहीं करता। न्यायालय के लिए, ई.सी.सी.ई. और प्राथमिक शिक्षा के बीच यह भेद कोई चिंताएँ खड़ी नहीं करता क्योंकि शिक्षा का अधिकार बच्चों को चौदह साल की उम्र पूरी हो जाने तक दिया गया था।

शिक्षा का बुनियादी अधिकार और ई.सी.सी.ई. :

2002 में, भारत की संसद ने बच्चों के लिए निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 21 क के अन्तर्गत एक बुनियादी अधिकार के रूप में जोड़ दिया।[6] नया जोड़ा गया यह अधिकार 6 से 14 साल के बच्चों की प्राथमिक शिक्षा तक सीमित था। परिणामस्वरूप, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय अनुच्छेद 21 क के किसी भी उल्लंघन को सुधार सकते हैं। लेकिन, इस संशोधन में अनुच्छेद 45 में बदलाव करके उसमें छह साल से कम उम्र के बच्चों के लिए ई.सी.सी.ई. को शामिल किया गया। संशोधित अनुच्छेद 45 कहता है कि राज्य छह साल की उम्र तक के बच्चों के लिए प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखभाल और शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा। इसलिए, ई.सी.सी.ई. को राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त के रूप में शामिल करके, यह संशोधन किसी भी व्यक्ति को ई.सी.सी.ई. से जुड़ी किसी भी योजना या कार्यक्रम को लागू करवाने के लिए न्यायालय में गुहार लगाने से रोकता है।[7]

प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने की जिम्मेदारी मानव संसाधन विकास मंत्रालय की होती है जबकि महिला और बाल विकास मंत्रालय आई.सी.डी.एस. (समेकित बाल विकास सेवा योजना) को, और इसलिए ई.सी.सी.ई. को भी, लागू करने के लिए जिम्मेदार होता है। शिक्षा के अधिकार को जोड़ने का प्रस्ताव मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा रखा गया था। इसके परिणामस्वरूप, छह साल से कम उम्र के बच्चे को शिक्षा के अधिकार के दायरे से बाहर रखा गया है।

भोजन के अधिकार से जुड़ा मामला[8] :

उच्चतम न्यायालय द्वारा पी.यू.सी.एल. बनाम भारत संघ (2001) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित किए गए कुछ आदेश भी हमारी इस चर्चा में प्रासंगिक हैं क्योंकि वे भारत में आँगनवाड़ी व्यवस्था को सर्वव्यापी बनाने के लिए बहुत अहम थे। यह याचिका पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज द्वारा दायर की गई थी ताकि संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत अनिवार्य रूप से दिए गए जीवन जीने के अधिकार के अंग के रूप में भोजन के अधिकार को सुनिश्चित किया जा सके। याचिकाकर्ताओं ने भोजन और पोषण तक पहुँच को सुनिश्चित करने के लिए, और लोगों को भूख और भुखमरी से बचाने के लिए न्यायालय की शरण ली। न्यायालय ने खाद्य सुरक्षा से जुड़ी सभी योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए कई आदेश जारी किए हैं जिनमें, मध्यान्ह भोजन योजना को सर्वव्यापी बनाना और सार्वजनिक वितरण प्रणाली को पुनर्जीवित करना शामिल हैं। न्यायालय द्वारा नियुक्त एक समिति सभी राज्यों, केन्द्र शासित प्रदेशों और केन्द्र सरकार द्वारा सौंपी जाने वाली परिपालन रिपोर्टों के माध्यम से इन आदेशों के परिपालन पर निगरानी रखती है।

भारत में ई.सी.सी.ई. की अवधारणा निर्मित करने में आई.सी.डी.एस. का योगदान सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह छह साल से कम उम्र के बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और विकास की जरूरतों को पूरा करता है। इस योजना के सम्बन्ध में न्यायालय ने एक आदेश[9] जारी किया जिसमें राज्य को आई.सी.डी.एस. के अन्तर्गत आँगनवाड़ी व्यवस्था को सर्वव्यापी बनाने का निर्देश दिया गया। इसके बाद एक और आदेश[10] पारित किया गया जिसके तहत राज्य की जिम्मेदारी है कि वह "पूर्व–स्कूल की उम्र के बच्चों को शुरुआती प्रोत्साहन देने और शिक्षा के माध्यम से उनका मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विकास करने के लिए आवश्यक दशाओं को सुनिश्चित करे।" दुर्भाग्यवश, हम पाते हैं कि 2013 में भी अधिकांश आँगनवाड़ियों में या तो कर्मचारियों की कमी है या वे शोचनीय बुनियादी सुविधाओं के साथ काम कर रहे हैं।[11]

[6] The Constitution (Eighty-Sixth Amendment) Act, 2002
[7] Article 37 of the Constitution prohibits any court from enforcing any directive principle of state policy.
[8] People's Union for Civil Liberties v Union of India W. P. (c) 196 of 2001
[9] W.P. (c) 196/2001, Order dated 28/11/2012, available at: http://www.righttofoodindia.org/orders/nov28.html
[10] W.P. (c) 196/2001, Order dated 29/04/2004, available at: **http://www.righttofoodindia.org/orders/apr2904.html**
[11] "Poor Status of Anganwadis in Bangalore" CIVIC (2012), available at: **http://civicspace.in/sites/default/files/attachments/public%20hearing%20on%20health%20english%20version.pdf.** Also see "Anganwadis for All – A Primer" Right to Food Campaign (2007) available at: **http://www.righttofoodindia.org/data/icds06primer.pdf**

आर.टी.ई. कानून और ई.सी.सी.ई. :

अनुच्छेद 21 क के अन्तर्गत आने वाला शिक्षा का अधिकार कानून द्वारा निर्धारित ढंग से, बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (आगे इसे आर.टी.ई. कहेंगे) के माध्यम से लागू किया जाना है। हालाँकि यह कानून अधिकांशतः प्राथमिक शिक्षा पर लागू होता है, लेकिन राज्य सरकारों को प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखभाल और शिक्षा (खण्ड 11) प्रदान करना ऐच्छिक है। इसके अलावा, आर.टी.ई. यह आदेश भी देता है कि जिन स्कूलों में पूर्व–स्कूल शिक्षा मुहैया कराई जाती है, वहाँ आर.टी.ई. के अन्तर्गत दाखिलों और आरक्षणों की प्रवेश कक्षा पूर्व–स्कूल कक्षा होगी। परिणामस्वरूप, पूर्व–स्कूल शिक्षा प्रदान करने वाले सभी स्कूलों पर भी निशुल्क और अनिवार्य पूर्व–स्कूल शिक्षा प्रदान करने का दायित्व होता है। आर.टी.ई. के अन्तर्गत यह प्रावधान बच्चों को अधिकार देता है कि (i) वे पड़ोस के किसी सरकारी, निजी या सहायता–प्राप्त स्कूल में दाखिला हासिल कर सकें (ii) अगर बच्चा समाज के आर्थिक या सामाजिक रूप से वंचित वर्ग से आता है तो उसे निशुल्क और अनिवार्य पूर्व–स्कूल शिक्षा प्रदान की जाए।

आर.टी.ई. कानून की संवैधानिक वैधता को गैर–सहायता प्राप्त और सहायता प्राप्त स्कूलों के एक समूह ने सोसाइटी फॉर अनएडेड प्राइवेट स्कूल्स ऑफ राजस्थान बनाम भारत संघ के मामले में चुनौती दी थी।[12] 2012 में, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन ने, यह तर्क देते हुए कि आर.टी.ई. की वैधता को बनाए रखना जरूरी है, इस याचिका के मामले में हस्तक्षेप किया। इसके अलावा, ई.सी.सी.ई. के मुद्दे पर, फाउण्डेशन ने तर्क दिया कि न्यायालय को ई.सी.सी.ई. को अनुच्छेद 21 क के अन्तर्गत उल्लिखित शिक्षा के अधिकार में ही शामिल मानना चाहिए, और इसलिए फाउण्डेशन की माँग थी कि इस अधिकार के दायरे में 6 साल से कम उम्र वाले बच्चों को भी शामिल किया जाना चाहिए। यह तर्क तीन आधारों पर दिया गया था, जो इस प्रकार हैं–

(i) उच्चतम न्यायालय ने उन्नीकृष्णन के मामले में निर्णय दिया कि चौदह साल की उम्र तक सभी बच्चे शिक्षा के अधिकार की पात्रता रखते हैं और यह अधिकार राज्य पर बाध्यकारी है;

(ii) शोध से पता चलता है कि स्कूलों में शैक्षणिक परिणामों को सुनिश्चित करने में ई.सी.सी.ई. महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है; और

(iii) भारत में पूर्व–स्कूल शिक्षा का क्षेत्र मुख्यतः अनियंत्रित है क्योंकि आर.टी.ई. कानून कक्षा 1 और उससे आगे की कक्षाओं के लिए मानदण्ड और मानक तय करता है। पर न्यायालय, इस अधिकार को छह साल से कम उम्र के बच्चों तक बढ़ाने पर मौन रहा क्योंकि संसद ने ई.सी.सी.ई. को शामिल करने के लिए संशोधित अनुच्छेद 45 को जोड़ लिया था।

कर्नाटक में ई.सी.सी.ई. और स्कूल से बाहर रह जाने वाले बच्चों को लेकर मुकदमेबाजी:

ई.सी.सी.ई. की महत्ता स्कूल से बाहर रह जाने वाले बच्चों से जुड़ी याचिका के रूप में कर्नाटक उच्च न्यायालय के सामने भी लाई गई है।[13] कर्नाटक उच्च न्यायालय ने स्कूल से बाहर रह जाने वाले बच्चों की समस्या पर एक अखबार की रिपोर्ट[14] के आधार पर एक सुओमोटो याचिका दायर की।[15] न्यायालय ने स्कूल से वंचित रहने वाले 50,000 बच्चों की समस्या को शिक्षा के मौलिक अधिकार का बहुत बड़ा अतिक्रमण माना। इस मामले में, न्यायालय न केवल स्कूल से बाहर रह जाने वाले बच्चों की समस्या का निवारण करने की कोशिश कर रहा है, बल्कि कर्नाटक में आर.टी.ई.के क्रियान्वयन पर निगरानी रखने वाली एक उच्च–स्तरीय समिति का गठन करके उसने शैक्षिक प्रशासन के क्षेत्र में भी दखल दिया है। इस मुकदमे के परिणामस्वरूप कई बदलाव हुए हैं जिनमें स्कूल से बाहर रहने वाले बच्चों की नई परिभाषाएँ बनी हैं और उपस्थिति दर्ज करने वाले अधिकारियों की जिम्मेदारियाँ बदलीं। लेकिन, यह गौर करने लायक बात है कि इस याचिका में आँगनवाड़ी व्यवस्था पर जो जोर दिया गया था वह, ई.सी.

[12](2012) 6 SCC 1
[13]W.P. (C) 15678 of 2013 High Court of Karnataka
[14]Supra at n. 5
[15]"The glitches that dog RTE implementation", the Hindu (March 31, 2013) available at: **http://www.thehindu.com/news/national/karnataka/the-glitches-that-dog-rte-implementation/article4564801.ece**
[16]"All Anganwadis in Karnataka will have toilets by next June, says Court", The Hindu (August 20, 2013) available at: **http://www.thehindu.com/news/national/karnataka/all-anganwadis-in-karnataka-will-have-toilets-by-june-next-says-court/article5039280.ece**

सी.ई. पर बिना कोई ध्यान दिए, सिर्फ यह सुनिश्चित करने तक सीमित था कि एक व्यापक सरोकार के रूप में इससे निकलने वाले बच्चे मुख्यधारा के स्कूलों में शामिल हो जाएँ। जिन मुद्दों ने वाकई गति पकड़ी वे आँगनवाड़ियों की मूलभूत सुविधाओं, खासतौर से शौचालयों, से सम्बन्धित थे।[16] हालाँकि, न्यायालय ने विभिन्न विभागों के बीच बेहतर समन्वय की जरूरत पर जोर दिया है, पर अच्छे स्तर वाली ई.सी.सी.ई. के उद्देश्य को इस मुकदमे के दायरे से बाहर छोड़ दिया गया है।

समापन टिप्पणी

हालाँकि भारतीय राज्य ने छह से चौदह साल की उम्र के बच्चों की प्राथमिक शिक्षा के मुद्दे पर सफलतापूर्वक कानून बनाया है, पर ई.सी.सी.ई. में एकरूपता और अच्छे स्तर को सुनिश्चित करने के लिए कोई खास प्रयास नहीं किए गए हैं। भारत में ई.सी.सी.ई. का क्षेत्र मुख्यतः अनियंत्रित ही रहा है। ऐसा कोई एक समान कानून या नीति नहीं है जो उनकी स्थापना तथा कार्यप्रणाली को नियंत्रित करती हो या फिर आँगनवाड़ियों अथवा पूर्व–स्कूल कक्षाओं पर नियामक मानदण्ड लागू करती हो। इसके अलावा, आँगनवाड़ी व्यवस्था और पूर्व–स्कूल व्यवस्था के लिए अलग–अलग मंत्रालय जिम्मेदार होते हैं। ई.सी.सी.ई. की गुणवत्ता को बेहतर करने के लिए किसी अधिकार को हासिल करना जरूरी नहीं है। लेकिन, ई.सी.सी.ई. पर किसी स्पष्ट कानून या नीति के न होने से, न्यायालय भी इस मामले में निर्णय देने से कतराते मालूम होते हैं। इसलिए, हमें ऐसी व्यापक नीति बनाने की सख्त जरूरत है जो ई.सी.सी.ई. की स्थापना के ढंग का विस्तृत खाका प्रस्तुत करे, एक समान मानक स्थापित करे और पूर्व–स्कूल संस्थाओं तथा आँगनवाड़ियों के क्रियाकलापों को नियंत्रित करती हो।







[16]"All Anganwadis in Karnataka will have toilets by next June, says Court", The Hindu (August 20, 2013) available at:
http://www.thehindu.com/news/national/karnataka/all-anganwadis-in-karnataka-will-have-toilets-by-june-next-says-court/article5039280.ece

डोलाश्री मैसूर अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ पॉलिसी एण्ड गवर्नमेंट में ग्रेजुएट फैलो के रूप में काम करती हैं। वे हब फॉर ऐजुकेशन लॉ एण्ड पॉलिसी (हेल्प) की सदस्य हैं। उन्होंने उच्चतम न्यायालय में सोसाइटी फॉर अनएडेड स्कूल्स इन राजस्थान बनाम भारत संघ के मामले में, तथा वर्तमान में चल रहे प्रमाती ऐजुकेशनल एण्ड कल्चरल ट्रस्ट बनाम भारत संघ के मुकदमे में आर.टी.ई. पर फाउण्डेशन द्वारा किए गए हस्तक्षेप में भी मदद की। इसके अलावा, उन्होंने कर्नाटक उच्च न्यायालय में स्कूल से बाहर रह जाने वाले बच्चों के मुकदमे में भी सक्रियता से भाग लिया है। अपने कुछ साथियों के साथ, डोलाश्री ने कर्नाटक में आर.टी.ई. कानून के अन्तर्गत स्थापित शिकायत निवारण की व्यवस्था को समझने का अध्ययन करना शुरू किया है। उन्होंने यूनीवर्स्टी लॉ कॉलेज, बेंगलूरु से 2010 में बी.ए., एल.एल.बी. की पढ़ाई पूरी की। शोध के लिए उनकी रुचि के विषय हैं शिक्षा का अधिकार, सामाजिक–आर्थिक अधिकार तथा संवैधानिक विधि। उनसे dolashree.mysoor@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी



प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा: आगे की सम्भावनाएँ

वनिता कौल

भूमिका

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने स्वीकार किया है कि 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखभाल तथा शिक्षा (अर्ली चाइल्डहुड केयर एण्ड एजुकेशन – ई.सी.सी.ई.) न केवल शिक्षा की सीढ़ी का प्रथम चरण होती है, बल्कि यह प्राथमिक शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण आधार भी होती है। अब वैश्विक स्तर पर शिक्षा के एक चरण के रूप में ई.सी.सी.ई. के विस्तार को 8 वर्ष की उम्र तक माने जाने पर विचार किया जा रहा है, क्योंकि बाल विकास के दृष्टिकोण से यह देखा गया है कि 6 से 8 वर्ष की आयु–समूह के बच्चे अपनी जरूरतों तथा लक्षणों में अपने से छोटे बच्चों जैसे ही होते हैं और उनके लिए समान शैक्षिक पद्धतियों की जरूरत होती है। ई.सी.सी.ई. की संकल्पना बच्चों के लिए एक ऐसे समेकित, समग्र कार्यक्रम के रूप में की गई है जिसमें शिक्षा, देखभाल, स्वास्थ्य तथा पोषण, सभी के प्रावधान शामिल हैं। ई.सी.सी.ई. की अवधि के भीतर तीन उप–चरणों को चिन्हित किया गया है – (अ) तीन साल या उससे कम उम्र के बच्चों (जिन्हें घर पर आधारित प्रेरक वातावरण तथा देखभाल की आवश्यकता होती है) के लिए प्रारम्भिक प्रेरक चरण; (ब) 3 से 6 वर्ष के बीच की आयु वाले बच्चों (जिन्हें समग्र दृष्टिकोण वाले केन्द्र–आधारित प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा कार्यक्रम की आवश्यकता होती है) के लिए प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा चरण, और (स) 6 से 8 वर्ष के बीच की आयु वाले बच्चों (जो कक्षा 1 और 2 में आते हैं) के लिए प्रारम्भिक प्राथमिक शिक्षा चरण।

वैश्विक स्तर पर और देश के भीतर भी, स्नायुविज्ञान, अर्थशास्त्र और शिक्षा में हुए शोध से यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रायोगिक साक्ष्य उपलब्ध हैं कि स्कूल–पूर्व (प्री–स्कूल) शिक्षा में भाग लेने से न केवल पूरा जीवन प्रभावित होता है, बल्कि यह निकट भविष्य की दृष्टि से भी लाभकारी होता है, क्योंकि इससे प्राथमिक शिक्षा के चरण में बच्चों की याददाश्त, उपस्थिति और प्रदर्शन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, यह भी स्थापित हो चुका है कि स्कूल के लिए तैयार हो चुकने के अनुभव (विशेष रूप से सर्व शिक्षा अभियान के सन्दर्भ में जहाँ पहली पीढ़ी के सीखने वालों के विभिन्न समूह पर्याप्त भाषाई तथा संज्ञानात्मक तैयारी के बिना ही स्कूल व्यवस्था में दाखिल हो रहे हैं) प्राथमिक कक्षाओं में तालमेल बिठाने और सीखने में मदद करते हैं। अतः प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा न केवल इन नाजुक वर्षों में बच्चे को जीवन के लिए एक ठोस आधार प्रदान करने में, बल्कि प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्यों को हासिल करने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। इसलिए यह शिक्षा के अधिकार की संकल्पना को साकार करने में बहुत कारगर निवेश के रूप में भी काम कर सकती है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के दो प्रमुख उद्देश्य होते हैं – (i) आयुविकास की दृष्टि से, खेल आधारित गतिविधियों के उचित कार्यक्रम, पारस्परिक क्रियाओं तथा अनुभवों (जो जीवनपर्यन्त सीखने और विकास के लिए ठोस आधार प्रदान करेंगे) के माध्यम से बच्चों के सर्वांगीण विकास को बढ़ावा देना, तथा (ii) ऐसी विशेष प्रकार की अवधारणाओं तथा कौशल–आधारित गतिविधियों – जो प्राथमिक स्कूली पढ़ाई में प्रवेश से पहले पढ़ने, लिखने तथा अंकगणित (3 आर कहलाने वाली बुनियादी कौशल) सीखने के लिए पूर्व–तैयारी को बढ़ावा देंगी – के द्वारा बच्चों में स्कूल के लिए तैयार होने का भाव विकसित करना। यह इन तीन बुनियादी कौशलों को औपचारिक रूप से सिखाने वाला कार्यक्रम नहीं होता। स्कूल के लिए तैयार होने का उद्देश्य चार से छह वर्ष के बीच की आयु वाले बच्चों के लिए विशेष रूप से अनुकूल होता है, क्योंकि इस उम्र तक बच्चे अधिक संरचित, परन्तु खेल–आधारित, सीखने के वातावरण के लिए परिपक्वता की दृष्टि से तैयार हो चुकते हैं।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण नई घटनाएँ हुई हैं जिनके प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के लिए विशेष निहितार्थ हैं। नीति के स्तर पर 2006 में भारत सरकार के कामकाज के बँटवारे सम्बन्धी नियमों (बिजनेस एलोकेशन रूल्स) में ई.सी.सी.ई. को मानव संसाधन विकास मंत्रालय से महिला एवं बाल विकास मंत्रालय को हस्तान्तरित कर दिया गया। इसके बाद, पिछले कुछ वर्षों की एक उल्लेखनीय घटना बच्चों को निशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का अधिनियम (आर.टी.ई. 2009) पारित होना है, जो 1 अप्रैल 2010 से प्रभावी हो गया। हालाँकि अभी इस अधिनियम में छह वर्ष से कम आयु के बच्चों को शामिल नहीं किया गया है, पर इसकी धारा 11 में यह स्पष्ट करता है कि, "तीन वर्ष की आयु से ऊपर के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के लिए तैयार करने तथा ई.सी.सी.ई. (प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखभाल तथा शिक्षा) प्रदान करने की दृष्टि से, उचित सरकार ऐसे बच्चों के लिए स्कूल–पूर्व शिक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक प्रबन्ध कर सकती है।" बाद में संशोधित अनुच्छेद 45 के द्वारा ई.सी.सी.ई. को भी इसमें एक संवैधानिक प्रावधान के रूप में शामिल किया गया है, अब यह अनुच्छेद इस प्रकार है : "राज्य सभी बच्चों को उनकी आयु के छह वर्ष पूरे होने तक ई.सी.सी.ई. प्रदान करने का प्रयास करेगा।" इन नई घटनाओं ने बच्चों की शिक्षा तथा विकास की बुनियाद के रूप में एक हद तक ई.सी.सी.ई. के, तथा उसके अन्तर्गत स्कूल–पूर्व शिक्षा के, उभर रहे महत्त्व को रेखांकित किया है।

भारत में प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा की वर्तमान स्थिति

ई.सी.सी.ई. के क्षेत्र में एक बड़ी घटना हाल ही में ई.सी.सी.ई. पर राष्ट्रीय नीति को मिला वह अनुमोदन है जिसे भारत सरकार के महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा सितम्बर 2013 में संसूचित किया गया। इस नीति के साथ ई.सी.सी.ई. के लिए एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा तथा गुणवत्ता के मानदण्डों को भी जोड़ा गया है। नीतिगत स्तर पर उठाए गए ये कदम इस क्षेत्र के विस्तार तथा गुणवत्ता नियंत्रण के लिए सकारात्मक संभावनाएँ और उम्मीद जगाते हैं।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान स्कूल–पूर्व नामांकन में जबर्दस्त छलांग लगी है – 2005 में 21 प्रतिशत से वह 2010 में 47 प्रतिशत हो गया है (यूनेस्को, 2010)। ए.एस.ई.आर. के और अधिक ताजा आँकड़े (2010) दर्शाते हैं कि ग्रामीण इलाकों के 3 से 6 साल की उम्र के 83.6 प्रतिशत बच्चों का किसी न किसी पूर्व–स्कूल कार्यक्रम, जिसमें निजी पूर्व–स्कूल भी शामिल हैं, में नामांकन है। हालाँकि सभी स्रोतों के साथ आँकड़ों की विश्वसनीयता का सवाल हो सकता है, फिर भी इस क्षेत्र में प्रगति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। एक हद तक इसका श्रेय समेकित बाल विकास सेवाओं (आई.सी.डी.एस.) में तेजी से हुए विस्तार और उसके सार्वभौमीकरण को, और उसके साथ ही अनेक राज्यों के जनजातीय और ग्रामीण इलाकों तक में भी तेजी से बढ़ रही निजी क्षेत्र की सुविधाओं को जाता है। सेण्टर फॉर अर्ली चाइल्डहुड एजुकेशन एण्ड डेवेलपमेंट (सी.ई.सी.ई.डी.), अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, दिल्ली तथा ए.एस.ई.आर. सेण्टर द्वारा आंध्रप्रदेश, आसाम और राजस्थान में हाल ही में किए गए एक अध्ययन ने दर्शाया है कि निरीक्षित किए गए हर गाँव में एक आँगनवाड़ी पाई गई, जबकि निजी पूर्व–स्कूल सुविधाएँ भी छलांगें लगाती हुई फैल रही हैं। (आई.सी.ई.आई., 2013)

विस्तार की दृष्टि से, भारत में केन्द्र–आधारित प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा की सुविधाएँ तीन स्पष्ट रूप से भिन्न धाराओं, अर्थात सार्वजनिक, निजी तथा स्वैच्छिक क्षेत्रों, में उपलब्ध हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में प्रमुख कार्यक्रम आई.सी.डी.एस. है, जिसके लिए केन्द्रीय एजेन्सी महिला एवं बाल विकास मंत्रालय है। विषयवस्तु सामग्री तथा सुविधाओं, दोनों की गुणवत्ता की दृष्टि से प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा, जो इसकी छह सेवाओं में से एक है, की स्थिति न्यूनतम महत्त्व की है, और इसे सभी राज्यों में इसका सबसे कमजोर अंग माना जाता है। यह कार्यक्रम वर्तमान में अपने 12 लाख आँगनवाड़ी केन्द्रों के संजाल के माध्यम से छह साल से कम उम्र के 7 करोड़ 30 लाख बच्चों से भी अधिक तक पहुँचता है। इनके अतिरिक्त, राजीव गाँधी राष्ट्रीय शिशु–सदन योजना के अन्तर्गत भारत सरकार द्वारा 22038 शिशु–सदनों को मंजूरी दी गई है (एम.डब्ल्यू.सी.डी. 2011), कुछ मामलों में ये शिशु–सदन बच्चों की हिफाजत तथा देखभाल के साथ–साथ पूर्व–स्कूल शिक्षा भी प्रदान करते हैं। सर्व शिक्षा अभियान भी गैर–आई.सी.

डी.एस. इलाकों में 14,235 ई.सी.ई. केन्द्रों को सहायता दे रहा है जिनमें देश भर में लगभग 48,6605 बच्चे भाग लेते हैं, इसके अलावा एन.पी.ई.जी.ई.एल. कार्यक्रम के अन्तर्गत शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए विकास खण्डों (ब्लॉक) में अन्य 4367 ई.सी.सी.ई. केन्द्रों, जिनमें 92,523 बच्चे भाग लेते हैं, को सहायता दी जा रही है एन.पी.ई.जी.ई.एल. प्रगति रिपोर्ट, जून 2011)। सर्व शिक्षा अभियान गुणवत्ता सुधारने के कुछ प्रयासों, जैसे कि आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण, सामग्री प्रदान करना आदि के लिए धनराशि भी प्रदान करता रहा है।

हालाँकि कोई विश्वसनीय अनुमानित आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु हाल के त्वरित सर्वेक्षण दर्शाते हैं कि निजी क्षेत्र लगातार फैल रहा है और यहाँ तक कि पूर्व–स्कूल शिक्षा प्रदान करने के लिए वह ग्रामीण तथा जनजातीय इलाकों में भी प्रवेश कर रहा है (ए.यू.डी.,2011)। ए.एस.ई.आर. के 2010 के सर्वेक्षण के अनुसार, ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले औसतन 11.4 प्रतिशत बच्चे निजी संस्थाओं से पूर्व–प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, और कुछ राज्यों में यह प्रतिशत इससे काफी अधिक भी हो सकता है। सर्वेक्षण इंगित करते हैं कि कम शुल्क लेने वाले इन निजी पूर्व–स्कूलों में से अधिकांश में गम्भीर खामियाँ दिखाई देती हैं, जैसे कि बच्चों से ठसी हुई कक्षाएँ और विकास की दृष्टि से अनुपयुक्त पाठ्यक्रम जो बच्चों के लिए नुकसानदायक भी हो सकते हैं (सी.ई.सी.ई.डी., 2013)। निजी उपक्रमों के अलावा, इस क्षेत्र में राष्ट्रीय तथा स्थानीय गैर–सरकारी संस्थाएँ (एन.जी.ओ.) भी हैं जिन्हें सरकार तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सहायता एजेन्सियों से सहायक अनुदान के रूप में वित्तीय सहायता प्राप्त होती है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत कितने बच्चे भाग ले रहे हैं इस बारे में कोई विश्वस्त आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा की समस्याओं का विश्लेषण

जहाँ विगत वर्षों में ई.सी.ई. में नामांकनों की संख्या बढ़ी है, वहीं दूसरी ओर गुणवत्ता, न्याय तथा क्षमता की समस्याएँ उल्लेखनीय बनी हुई हैं। सर्वोपरि चिन्ता का विषय यह है कि बड़ी संख्या में बच्चे, पूर्व–स्कूलों में जाए बगैर ही, या उनमें जाकर भी स्कूल के लिए तैयार होने की दृष्टि से प्राथमिक पाठ्यक्रम के लिए उपयुक्त पूर्व तैयारी शिक्षा पाए बगैर ही, प्राथमिक स्कूलों में आ रहे हैं। यह स्थिति माँग करती है कि उन समस्याओं का विश्लेषण किया जाए जिनके परिणामस्वरूप, अनेक नीतिगत प्रावधानों तथा कार्यक्रमों के बावजूद, देश में प्राथमिक बाल्यावस्था शिक्षा की यह दशा है। कुछ महत्त्वपूर्ण समस्याएँ इस प्रकार हैं :

(अ) बच्चों के बड़े होने से जुड़ी जरूरतों और उनकी क्षमताओं की दृष्टि से, प्रारम्भिक बाल्यावस्था के प्रत्येक उप–चरण में आयु के अनुरूप प्रयासों की आवश्यकता की समझ का सार्वजनिक क्षेत्र में अभाव तथा सार्वजनिक और स्वैच्छिक क्षेत्रों में 3 से 6 वर्ष की आयु के बच्चों को समान स्तर का समझने की प्रवृत्ति।

(ब) आई.सी.डी.एस.में प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा को पर्याप्त प्राथमिकता न दिया जाना, जिसके परिणामस्वरूप इसे सभी जगह एक पोषण कार्यक्रम की तरह ही देखा जाता है। इसमें विशेष चुनौतियाँ हैं क्योंकि इसमें एक अकेले अप्रशिक्षित तथा बहुत ज्यादा काम के बोझ से लदे कार्यकर्ता से, खराब बुनियादी सुविधाओं (अधोसंरचना) तथा मामूली संसाधनों के साथ, ऐसी बहु–आयामी सेवाएँ प्रदान करने की अपेक्षा की जाती है, जिनके लिए बिलकुल भिन्न प्रकार के कौशलों की आवश्यकता होती है।

(स) माता–पिता की आकांक्षाओं का झुकाव अँग्रेजी माध्यम के निजी पूर्व–स्कूलों की ओर होना। यह ग्रामीण तथा जनजातीय इलाकों में भी 4 से 5 साल के बच्चों के लगातार आँगनवाड़ियों को छोड़कर निजी पूर्व–स्कूलों में जाने, या कुछ मामलों में मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम की वजह से प्राथमिक स्कूलों में जाने, की प्रवृत्ति में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। नागालैण्ड, असम, जम्मू और कश्मीर जैसे कुछ राज्यों ने स्वयं पहल करते हुए प्राथमिक स्कूलों में ही पूर्व–स्कूल कक्षाओं को भी जोड़ दिया है ताकि उनके लिए समुदाय की तेजी से बढ़ती हुई माँग को पूरा किया जा सके।

(द)प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा में हाल ही तक किन्ही भी मार्गदर्शक सिद्धान्तों, संसाधन सामग्री या गुणवत्ता के मानदण्डों का अभाव होना। इसके परिणामस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यक्रमों में इसे न्यूनतम महत्त्व दिया गया, तथा निजी क्षेत्र की सुविधाओं में प्राथमिक शिक्षा का नीचे की ओर विस्तार करते हुए विकास की दृष्टि से अनुपयुक्त पद्धतियों को अपनाने के कारण

अनियंत्रित और मनमाने प्रचलनों की स्थिति निर्मित हो गई। दोनों ही परिदृश्य बच्चों के विकास तथा शिक्षा की दृष्टि से अनुत्पादक और हानिकारक हो सकते हैं।

(ई) प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा में, विशेष रूप से राज्य, जिले तथा जिले से नीचे के स्तरों पर, सुविधाओं की योजना बनाने, उन्हें क्रियान्वित करने, उन्हें सहारा देने तथा उनकी निगरानी रखने के लिए संस्थानिक क्षमता का अभाव।

(फ) संस्थानिक क्षमता के अभाव से जुड़ी हुई एक अन्य समस्या ई.सी.सी.ई. के बारे में किसी भी प्रबन्धन जानकारी व्यवस्था (मैनेजमेंट इनफॉर्मेशन सिस्टम – एम.आई.एस.) या जानकारी आधार–कोष, जो नियोजन या मूल्यांकन की प्रक्रिया में सहायक हो सकता हो, का पूरी तरह से अभाव।

इन समस्याओं के बने रहने के लिए जिम्मेदार एक प्रमुख कारक यह है कि अभी तक प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के लिए केन्द्र सरकार के द्वारा प्रायोजित ऐसी कोई योजना या समर्पित आर्थिक सहायता उपलब्ध नहीं रही है जो ऊपर चर्चित सर्वांगीण समस्याओं में से अनेक का समग्र रूप से समाधान कर सकती थी। प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के सन्दर्भ में, राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने एक अनुशंसा की है कि आई.सी.डी.एस. के माध्यम से आँगनवाड़ियों में एक अतिरिक्त कार्यकर्ता की व्यवस्था करके 4 साल तक की उम्र के बच्चों को ई.सी.सी.ई. का अनुभव सुलभ कराया जा सकता है, और इसके अलावा, सभी बच्चों के लिए प्रत्येक प्राथमिक स्कूल में एक वर्ष की पूर्व–प्राथमिक कक्षा को भी जोड़ दिया जाना चाहिए। यदि शिक्षा के अधिकार का पालन करते हुए, सभी राज्यों में कक्षा 1 के लिए आवश्यक आयु को बढ़ाकर छह वर्ष कर दिया जाए, तो इसके परिणामस्वरूप बच्चों को 2 वर्ष की स्कूल–आधारित प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा मिल सकेगी। जिसे यदि यथोचित तरीके से प्रदान किया जाए तो वह सभी बच्चों के लिए सीखने का एक ठोस आधार निर्मित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

आगे की राह के लिए सुझाव

उपरोक्त पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, 12वीं पंचवर्षीय योजना में एक बदलाव प्रस्तावित किया गया है कि शिक्षा के अधिकार के कानून में दिए गए अधिकारों को नीचे की ओर बढ़ाकर उनमें प्रारम्भिक बाल्यावस्था की शिक्षा के चरण को भी शामिल कर दिया जाए। इसके अतिरिक्त, यह भी अनुशंसा की गई है कि 4 से 6 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा के दायरे में ही लाया जाए, या उसके साथ उसे, 'ऊपर से नीचे' के बजाय 'नीचे से ऊपर' का दृष्टिकोण अपनाते हुए, बच्चों के कक्षा 1 में प्रवेश करने से पहले उन्हें स्कूल के लिए तैयार करने के कार्यक्रम के रूप में समेकित कर दिया जाए। परन्तु, फिलहाल यह प्रस्ताव ठण्डा पड़ गया है और इसे फिर सामने लाए जाने की जरूरत है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य सुझाव जिन पर विचार किया जा सकता है इस प्रकार हैं :

1. आर.टी.ई. के अनुबन्ध के अनुरूप कक्षा 1 में प्रवेश करने की आयु को 6 वर्ष निर्धारित करने के लिए सभी राज्यों को प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है। ताकि उन 23 राज्यों में जहाँ उनके कक्षा 1 में प्रवेश की आयु वर्तमान में 5 वर्ष है, 5 साल की उम्र वाले बच्चे स्कूल के लिए तैयार करने वाले किसी प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा केन्द्र, कक्षा में रखे जाएँगे। ए.एस.ई.आर. के सर्वेक्षण (2010) के अनुसार, देश भर के ग्रामीण क्षेत्रों में 5 साल की उम्र के 60 प्रतिशत से भी अधिक बच्चे आँगनवाड़ियों में होने के बजाय प्राथमिक स्कूलों में हैं।
2. आँगनवाड़ी केन्द्रों के स्तर का उन्नयन करके उन्हें प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखभाल तथा शिक्षा के ऐसे केन्द्रों में परिवर्तित किए जाने की जरूरत है जिनमें बुनियादी सुविधाएँ, ई.सी.सी.ई. में पेशेवर प्रशिक्षण प्राप्त एक समर्पित कार्यकर्ता, 4 वर्ष से कम आयु – जो मस्तिष्क के विकास के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण उम्र होती है – के बच्चों के लिए आयु के अनुकूल प्रारम्भिक प्रेरक एवं शैक्षिक पाठ्यक्रम तथा सीखने की सामग्री हो।
3. प्रत्येक प्राथमिक स्कूल में 4 से 6 साल की उम्र के बच्चों के लिए एक पूर्व–प्राथमिक खण्ड होना आवश्यक है जिसके लिए पर्याप्त संसाधन आबंटित किए जाने की जरूरत है, ताकि बच्चों को विकास की दृष्टि से एक ठोस और उपयुक्त तथा स्वीकार्य गुणवत्ता वाला स्कूल की पूर्व–तैयारी का कार्यक्रम प्रदान किया जा सके। यहाँ ध्यान रखने की बात यह है कि स्कूल की पूर्व–तैयारी का मतलब पूर्व–स्कूल के चरण में 3

आर (पढ़ना, लिखना तथा अंकगणित) सिखाना नहीं है। प्राथमिक पाठ्यक्रम को नीचे की ओर बढ़ाने का यह चलन बच्चों के सीखने और विकास के लिए बहुत हानिकारक पाया गया है। इसके बजाय, स्कूल की पूर्व–तैयारी का अभिप्राय कुछ संज्ञानात्मक, भाषाई अवधारणाओं तथा कौशलों के साथ–साथ सीखने के प्रति एक सकारात्मक रुझान से है, जो खेल तथा गतिविधि के माध्यम से बच्चे को बाद में अधिक कारगर तरीके से प्राथमिक कक्षाओं में 3 आर सीखने के लिए तैयार करता है।

4. एक 'प्रारम्भिक सीखने की इकाई' की अवधारणा को अपनाया जाना चाहिए जो पूर्व–प्राथमिक तथा शुरुआती प्राथमिक कक्षाओं को एक इकाई में समेकित कर दे, ताकि पाठ्यक्रम में नियोजित ढंग से 'नीचे से ऊपर की ओर' निरन्तरता आ सके (यह विकास की दृष्टि से उपयुक्त, गैर–औपचारिक तथा खेल–आधारित होना चाहिए), साथ ही उसमें लचीलेपन की गुंजाइश हो ताकि हर बच्चा उसके लिए अनुकूल गति से सीख सके, इस प्रकार यह कदम हर बच्चे के लिए एक ठोस आधार निर्मित करने में योगदान देगा। इस अवधारणा से सम्बन्धित देश के भीतर और देश के बाहर की अच्छी प्रणालियों, अर्थात गतिविधि–आधारित सीखने के कार्यक्रम, जैसे कि कर्नाटक का नली–कली आदि, से मिलने वाली जानकारी पाठ्यक्रम में इस बदलाव के लिए उपयोगी होगी। इस बदलाव के लिए स्कूली व्यवस्था में किन्हीं संरचनात्मक या प्रशासनिक परिवर्तनों की आवश्यकता नहीं है, बल्कि इसका जोर मुख्य रूप से पाठ्यक्रम तथा शिक्षण पद्धति में परिवर्तन, और उसके साथ ही हर स्तर के लिए उपयुक्त सामग्री प्रदान किए जाने तथा उससे जुड़ी शिक्षक की तैयारी और सहयोग पर होगा।

5. ई.सी.ई. में डिप्लोमा के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एन.सी.टी.ई.) का आदर्श पाठ्यक्रम इस समेकित अवधारणा को पहले से ही प्रतिबिम्बित करता है क्योंकि इसके दायरे में यह पूर्व–स्कूल तथा कक्षा 1 और 2, दोनों के लिए शिक्षक की तैयारी को शामिल करता है। इसकी और भी समीक्षा की जाना, इसे सशक्त बनाया जाना और प्रारम्भिक सीखने की इकाई की अवधारणा को सहारा देने के लिए अनुकूल बनाया जाना चाहिए, तथा शिक्षक की उपयुक्त तैयारी को सुनिश्चित किया जाना चाहिए। एन.सी.टी.ई. को इस प्रारम्भिक सीखने के चरण, अर्थात पूर्व–प्राथमिक तथा कक्षा 1 और 2, के शिक्षकों को अपने दायरे में शामिल करने, के लिए मानक योग्यताएँ निर्धारित करने की और अपने टी.ई.टी. (टीचर्स एलिजिबिलिटी टैस्ट – शिक्षक पात्रता परीक्षा) दिशा–निर्देशों को इसके अनुरूप बनाने की जरूरत होगी। राज्यों को शिक्षकों की भर्ती करने के उनके नियमों को संशोधित करने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता होगी, ताकि वे इस डिप्लोमा को हासिल करने वाले स्नातकों को प्रारम्भिक सीखने के चरण, अर्थात पूर्व–प्राथमिक तथा कक्षा 1 और 2, के शिक्षकों के रूप में नियुक्त करें।

6. सार्वजनिक, निजी तथा स्वैच्छिक क्षेत्रों में पूर्व–स्कूलों की गुणवत्ता को नियंत्रित करने की एक व्यवस्था स्थापित करने की आवश्यकता होगी, जिसके साथ ही शिक्षा की गुणवत्ता को लेकर वर्तमान गलत धारणाओं को सही करने के लिए सभी भागीदारों को शामिल करने वाला एक सशक्त पैरवी (ऐडवोकेसी) समूह बनाया जाना, और सभी बच्चों को न्यायोचित तथा विकास की दृष्टि से उपयुक्त पूर्व–स्कूल शिक्षा मिलना भी सुनिश्चित किया जाना होगा।

जहाँ बच्चों को स्कूल के लिए तैयार करवाने में सहायता दी जाएगी, वहीं स्कूलों को भी बच्चों के लिए तैयार किए जाने की जरूरत होगी। इसके लिए उन्हें समर्पित और प्रशिक्षित शिक्षकों तथा खेलने और सीखने की उत्प्रेरक सामग्री, और प्रारम्भिक कक्षाओं के लिए कक्षाओं की सुविधाओं के साथ बच्चों के लिए मैत्रीपूर्ण बनाया जाना पड़ेगा। इसके साथ ही ऊपर के संस्थानिक स्तरों पर, विशेष रूप से जिला और ब्लॉक स्तरों पर, नागरिक समाज संगठनों और पेशेवर लोगों की भागीदारी के माध्यम से संसाधनों की क्षमताओं को भी प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के लिए सशक्त बनाए जाने की जरूरत होगी, ताकि संसाधनों के लिए निरन्तर सहयोग और व्यापक समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित हो सके।





वनिता कौल ने इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, दिल्ली से मनोविज्ञान में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है। वर्तमान में वे स्कूल ऑफ ऐजुकेशन स्टडीज एण्ड सेण्टर फॉर अर्ली चाइल्डहुड एजुकेशन एण्ड डेवेलपमेंट, अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, दिल्ली में प्रोफेसर तथा डायरेक्टर हैं। सेण्टर की डायरेक्टर के रूप में उन्होंने प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के क्षेत्र में अनेक शोध तथा एडवोकेसी परियोजनाओं को प्रारम्भ किया है। अभी वे जिस महत्त्वपूर्ण शोध का नेतृत्व कर रही हैं वह ई.सी.ई. में गुणवत्ता के अन्तरों से प्राथमिक परिणामों पर पड़ने वाले तात्कालिक और मध्यकालिक प्रभाव का लोंजीट्यूडनल (दीर्घकालिक) अध्ययन है। इसके पहले वे वर्ल्ड बैंक में वरिष्ठ शिक्षा विशेषज्ञ तथा एन.सी.ई.आर.टी. में पूर्व–स्कूल तथा प्राथमिक शिक्षा के विभाग में प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष भी रही हैं। उनसे vkaul54@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी



प्रारम्भिक वर्षों में पोषण, स्वास्थ्य और शिक्षा

श्रीलता राव शेषाद्री और सूरज अंकुश परब



भूमिका

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, भ्रूण के विकास के सबसे प्रारम्भिक चरणों से शुरू होकर पूरे मानव जीवन के दौरान पोषण की भूमिका बेहद अहम होती है। पोषक भोजन न केवल जीवित रहने के लिए अत्यावश्यक है वरन व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में भी इसका बड़ा योगदान होता है। बच्चों के लिए तो पोषण निर्णायक भूमिका निभाता है। यदि किसी बच्चे को बहुत छोटी उम्र से पोषक तत्व नहीं दिए जाते हैं तो इसका उस बच्चे के शारीरिक विकास पर, संज्ञानात्मक क्षमता पर और मस्तिष्क की कार्यकुशलता पर बहुत गहरा नकारात्मक असर पड़ता है (चित्र 1)। एक कुपोषित बच्चे पर तमाम तरह की स्वास्थ्य समस्याओं जैसे चयापचयी दुर्बलता (मेटाबॉलिक इम्पेयरमेंट), रोग प्रतिरक्षा क्षमता का ह्रास (कम्प्रोमाइज्ड इम्युनिटी), तथा ध्यान–अक्षमता–अतिक्रियाशीलता विकार (अटेन्शन–डेफिसिट–हाईपरऐक्टिविटी डिसऑर्डर–ए.डी.एच.डी.), पढ़ने–लिखने की मानसिक कठिनाई (डिसलेक्सिया), अंग–संचालन की कठिनाई (डिसप्रेक्सिया) और स्वलीनता सम्बन्धी विकार (ऑटिस्टिक स्पैक्ट्रम डिसऑर्डर्स) आदि का खतरा रहता है। सही पोषण मिलने से बच्चे की विकास करने, समझने और गरीबी से बाहर आने की क्षमता पर गहरा सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। इससे समाज को भी बहुत लाभ होता है क्योंकि उत्पादन बढ़ता है तथा परिवारों और समुदायों के लिए आर्थिक सम्भावनाएँ बेहतर हो जाती हैं।

कुपोषण, खराब स्वास्थ्य और खराब शिक्षा का दुष्चक्र पीढ़ी–दर–पीढ़ी नुकसान को जन्म देता है। एक कुपोषित, अस्वस्थ और अशिक्षित माँ अकसर कम वजन वाले बच्चे को जन्म देती है। जन्म के बाद बच्चे को पर्याप्त रूप से माँ का दूध नहीं मिलता, पर्याप्त प्रतिरक्षण नहीं होता, समय से पूरक पोषण आहार नहीं मिल पाता या उसकी पर्याप्त मात्रा नहीं मिल पाती और गुणवत्तापूर्ण भोजन नहीं मिलता। बच्चा अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में बड़ा होता है जहाँ पानी और सफाई की सुविधाएँ अच्छी नहीं होतीं जिसके कारण बहुत सम्भव है कि बच्चे की तबीयत बार–बार बिगड़ती हो। इससे शिक्षा व्यवस्था में भागीदारी कर पाने की बच्चे की क्षमता पर नकारात्मक असर पड़ता है, जिससे बच्चा जीवन भर के लिए कमजोर रह जाता है, और इसका परिणाम कम उत्पादकता और गरीबी के रूप में सामने आता है।

हर वर्ष दुनिया भर में होने वाली 23 लाख मौतों के पीछे मूल कारण कुपोषण है। कई लाख अन्य बच्चों के संज्ञानात्मक व शैक्षिक विकास न होने में कुपोषण बड़ा हाथ होता है। इसके परिणामस्वरूप, दुनिया भर के लाखों बच्चों के जीवन जीने के अवसरों पर आघात होता है। प्रतिदिन 19,000 बच्चे ऐसी बीमारियों से मर जाते हैं जिनकी रोकथाम की जा सकती है। 13 करोड़ विद्यार्थी स्कूल तो जाते हैं पर बुनियादी बातों को नहीं समझ पाते। भारत में कुपोषण का स्तर दुनिया में सर्वाधिक खराब कुपोषण स्तरों में शुमार होता है, यह उप–सहारा अफ्रीका के स्तर से दोगुना और चीन के कुपोषण स्तर से 6 गुना है। बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल और भूटान जैसे दक्षिण एशियाई देशों के बीच भारत में सामान्य से कम वजन वाले बच्चों का, बौने (अपनी उम्र के हिसाब से बहुत नाटे) बच्चों का तथा कृशकाय बच्चों का प्रतिशत सर्वाधिक है। एन.एफ.एच.एस.–3 के आँकड़ों के अनुसार, भारत में 5 साल से कम उम्र के 48% बच्चे बौने, 43% सामान्य से कम वजन वाले और 20% कृशकाय हैं। इसके अलावा, शहरी इलाकों की अपेक्षा ग्रामीण इलाकों में, तथा वंचित वर्गों जैसे अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जातियों व गरीबों के बीच ये आँकड़े कहीं ज्यादा हैं। एक

और भयावह आँकड़ा यह है कि भारत में 30% शिशु जन्म के समय कम वजन के होते हैं, और यह आँकड़ा दुनियाभर के आँकड़ों से दोगुना है; यहाँ 36% स्त्रियाँ सदा अल्प–पोषित रहती हैं और 55% रक्ताल्पता (एनीमिया) से पीड़ित रहती हैं।

पोषण, स्वास्थ्य और शिक्षा के बीच अन्तर्सम्बन्धः

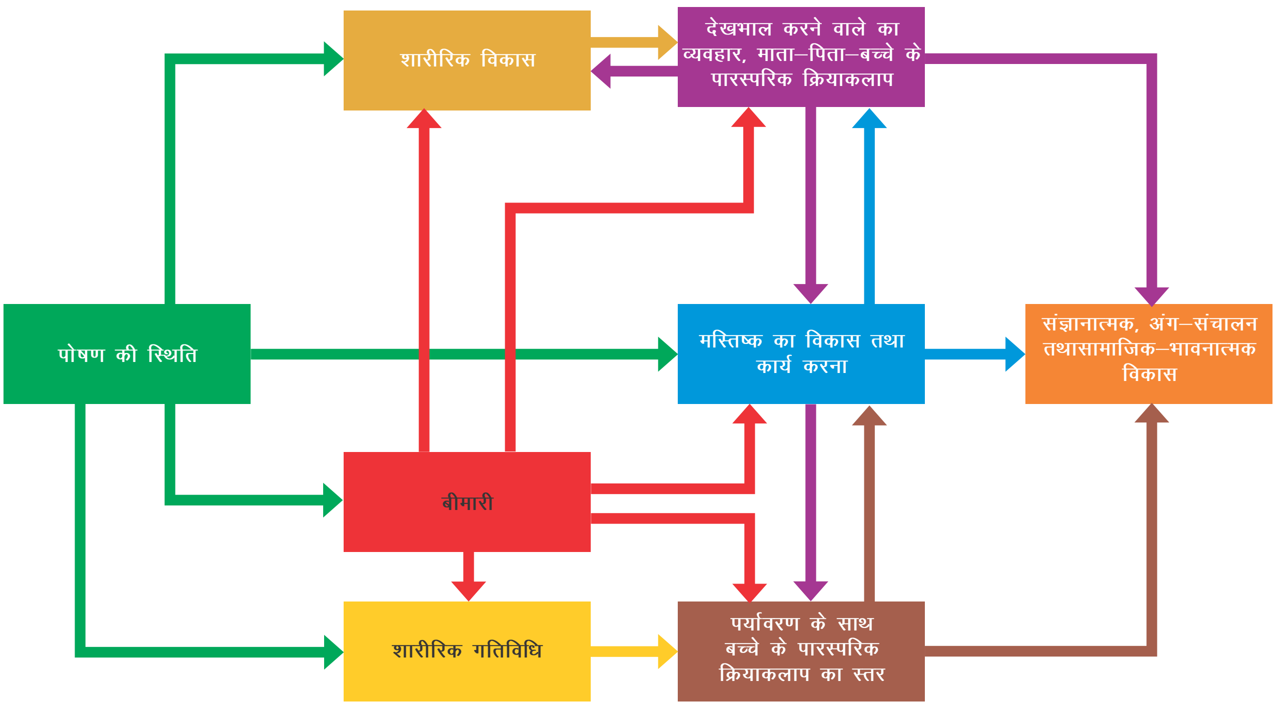
पोषण, स्वास्थ्य और शिक्षा किसी भी बच्चे के समग्र विकास के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण तत्व होते हैं। उन्हें अकसर अलग–अलग विषयों के रूप में देखा जाता है, पर हमें यह पूछने की जरूरत हैः क्या ये विषय एक–दूसरे से इतने जुदा हैं? क्या ये सब एक ही छतरी – सामाजिक संरक्षण – के नीचे नहीं आते? क्या हम एक ही लक्ष्य – बच्चा – पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर रहे हैं?

पोषण, स्वास्थ्य और शिक्षा एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। कुपोषित बच्चे गणित की परीक्षा में 7% कम अंक लाते हैं, और 8 साल की उम्र में भी एक सरल–सा वाक्य पढ़ने की उनकी सम्भावना बाकी बच्चों से 19% कम होती है, एक सरल वाक्य लिखने की उनकी संभावना 12% कम होती है, और उनके अपनी उम्र के अनुरूप कक्षा में होने की सम्भावना 13% कम होती है।

स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा के पारस्परिक प्रभावों को देखते हुए पोषण और शिक्षा, खासतौर पर स्कूलों के सन्दर्भ में, यूनेस्को, यूनिसेफ, डब्ल्यू.एच.ओ. और विश्व बैंक ने सन 2000 में स्कूल, स्वास्थ्य और पोषण को जोड़ने के वैश्विक अभियान के हिस्से के रूप में फोकस रिसोर्सेज ऑन इफेक्टिव स्कूल हेल्थ (फ्रेश) नामक स्कूल स्वास्थ्य और पोषण रूपरेखा तैयार की। दुनिया भर के विकासशील देशों से मिले आँकड़ों ने दर्शाया कि बच्चों के 20 करोड़ स्कूल–वर्ष हर साल खराब स्वास्थ्य और अपर्याप्त पोषण के कारण नष्ट हो रहे थे।[1]

चित्र 1:

बच्चों के संज्ञानात्मक, अंग–संचालन और सामाजिक–भावनात्मक विकास पर पोषण की कमी के असर को दर्शाने वाली सम्भावित प्रक्रियाएँ



स्रोतः ऐलिजाबेथ प्राडो और कैथरीन ड्वीई (2012), लेविट्स्की और बार्न्स (1972) और पॉलिट (1993) पर आधारित
www.savethechildchildren.org.ink उत्प्रेरक विचार

[1] Bundy D (2011).Rethinking School Health – A Key Component of Education for All.World Bank, Washington DC.

भारत में चल रहे कार्यक्रम

भारत ने मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्र 1966, बाल अधिकार महासंधि (सी.आर.सी.) 1989 पर हस्ताक्षर किए हैं। इसके अलावा, सरकार ने शिक्षा के अधिकार, भोजन का अधिकार और साथ ही सर्वव्यापी रूप से स्वास्थ्य प्रदान करने का भी समर्थन किया है। इससे कुछ प्रगति तो हुई हैः प्राथमिक स्कूलों में शुद्ध नामांकन दर 98.99% तक बढ़ गई है, लेकिन शिक्षा की गुणवत्ता तथा कमजोर पोषण व खराब स्वास्थ्य की वजह से बच्चों की सीखने की क्षमता पर पड़ने वाला असर अभी भी चिन्ता के विषय बने हुए हैं। सरकारी नीतियों में कई कमियाँ हैं, जिनमें आँकड़ों और साक्ष्यों की कमी, कर्मचारियों का उचित प्रशिक्षण और सामर्थ्य विकास न होना, और सम्बन्धित विभागों के बीच जरूरी अन्तर–विभागीय समन्वय न होना।

भारत सरकार द्वारा बच्चों में कुपोषण की समस्या को दूर करने, तथा उनके बेहतर स्वास्थ्य और शिक्षा के लिए कई कार्यक्रम चलाए गए हैं। प्रमुख 'केन्द्र–प्रायोजित योजनाएँ' इस प्रकार हैं:

अन्त्योदय अन्न योजनाः यह अति विपन्न लोगों के लिए ऊँचे अनुदान (सब्सिडी) दर पर अनाज देने की योजना है। इसमें पात्र लाभार्थियों का निर्धारण किया जाता और उन्हें खाद्यान्न की आपूर्ति की जाती है।

समेकित बाल विकास योजनाः यह छह साल से कम उम्र के बच्चों के स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा पर ध्यान देने वाला एक कार्यक्रम है। गर्भवती महिलाएँ, स्तनपान कराने वाली महिलाएँ और किशोरियाँ भी इस कार्यक्रम के दायरे में आती हैं। बच्चों, किशोरियों, गर्भवती और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को रोजाना भोजन सम्बन्धी न्यूनतम निर्धारित स्तर दिया जाना होगा। इस योजना में यह निर्देश भी दिया गया है कि हर बस्ती में एक आँगनवाड़ी केन्द्र होना चाहिए और सभी मौजूदा केन्द्रों को तत्काल प्रभाव से क्रियाशील किया जाना चाहिए।

मध्यान्ह भोजन योजनाः सरकारी और सहायता प्राप्त निजी स्कूलों में बच्चों के लिए स्कूल में भोजन का कार्यक्रम। सरकारी और सरकार द्वारा सहायता प्राप्त समस्त प्राथमिक स्कूलों में सभी बच्चों को सभी कामकाजी दिनों में साल में कम से कम 200 दिनों तक ताजा बनाया गया भोजन दिया जाना चाहिए।

लक्ष्य–आधारित सार्वजनिक वितरण प्रणालीः गरीब लोगों के लिए सामान्य रूप से अनुदान प्राप्त खाद्यान्न योजना। इसमें पात्र लाभार्थियों का निर्धारण किया जाता है, उन्हें राशन कार्ड प्रदान किए जाते हैं और हर महीने खाद्यान्न की आपूर्ति की जाती है। इस योजना की रूपरेखा और प्रावधान हर राज्य में अलग–अलग हैं, पर इसका लक्ष्य निर्धनतम परिवारों को खाद्यान्न मुहैया कराना है।

यद्यपि सरकार ने स्वास्थ्य सेवाओं, बेहतर पोषण और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को बच्चों की पहुँच में लाने के लिए कई कदम उठाए हैं, पर इन नीतियों और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में कई खामियाँ और कमियाँ रही हैं। इन योजनाओं को और मजबूत किए जाने की जरूरत है, इनमें और पूँजी निवेश किया जाना चाहिए, इन्हें सबके लिए सुगम बनाया जाना चाहिए तथा ए.एन.एम. (ऑग्जिलरी नर्स एण्ड मिडवाइफ – अतिरिक्त परिचारिका एवं दाई), मान्यता प्राप्त सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं (ए.एस.एच.ए.एस.) और आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को बेहतर पारिश्रमिक, प्रशिक्षण और आधारभूत ढाँचे के जरिए सशक्त बनाने की जरूरत है।

इसके अलावा, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों को बेहतर बनाने, शिक्षकों की भरती करने तथा सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए उन्हें उचित प्रशिक्षण देने की भी जरूरत है।

निष्कर्ष

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि इन सभी कार्यक्रमों का लक्ष्य समान लाभार्थी हैं। जनता के स्तर पर, ये कार्यक्रम स्कूलों, उप स्वास्थ्य केन्द्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों, और आँगनबाड़ियों के माध्यम से उन तक पहुँचाए जाते हैं। अन्य साजो–सामान के अतिरिक्त इन सभी केन्द्रों का अपना–अपना आधारभूत ढाँचा और सामुदायिक कर्मचारी होते हैं। यदि समुदाय स्तर के ये लोग और ढाँचे एक साथ काम कर सकें और अपने लाभार्थियों के समूह के सम्बन्ध में कोई साझा लक्ष्य बना सकें, तो उनकी पहुँच और प्रभाव

कई गुना बढ़ सकता है। इस वक्त, दुर्भाग्यवश, हर कार्यक्रम अपने–अपने सीमित दायरे में काम कर रहा है और उसे किसी अन्य कार्यक्रम के सरोकार से कोई खास वास्ता नहीं पड़ता। इन बाधाओं को पार करना उन लक्ष्यों में से एक होना चाहिए जिनके लिए हम संघर्ष करते हैं।

References

1. What Is The Relationship Between Child Nutrition And School Outcomes? By Annik Sorhaindo and Leon Feinstein
2. State of World's Mother Report, 2012
3. www.savethechildchildren.org.ink, Food for thoughts.
4. Children in India 2012 – A statistical appraisal, mospi.nic.in
5. Why India remains malnourished by Jyotsna Singh andKunal Pandey.



श्रीलता राव शेषाद्री अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के हेल्थ, न्यूट्रीशन एण्ड डेवेलपमेंट इनीशिएटिव का हिस्सा हैं। शोध के लिए उनकी दिलचस्पी के विषयों में स्वास्थ्य व्यवस्थाओं का विकास, और स्वास्थ्य, पोषण व शिक्षा के बीच सम्बन्ध शामिल हैं। वे ग्रामीण कर्नाटक के स्कूली बच्चों की आहार सम्बन्धी पसन्द के निर्धारकों और उनके पोषण सम्बन्धी परिणामों पर एक अध्ययन का नेतृत्व कर रही हैं। उनकी रुचि स्वास्थ्य के क्षेत्र में निर्णय प्रक्रिया में साक्ष्य के इस्तेमाल; रोकी जा सकने वाली मृत्यु और अक्षमता को कम करने के लिए सर्वाधिक किफायती नीतियों पर नीतिगत मार्गदर्शन देने और स्वास्थ्य विभाग में पारदर्शिता और शासन सम्बन्धी मुद्दों में भी है। उन्होंने कर्नाटक हेल्थ स्टेटस रिपोर्ट (नवम्बर 2010) को बनाने और लिखने में योगदान दिया है और वे इसकी अनुशंसाओं को लागू करवाने में भी सक्रिय बनी रहेंगी। उनसे shreelata.seshadri@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

सूरज अंकुश परब नवम्बर, 2013 में रिसर्च कोऑर्डीनेटर के रूप में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के हेल्थ, न्यूट्रीशन एण्ड डेवेलपमेंट इनीशिएटिव का हिस्सा बने। उन्होंने गोवा विश्वविद्यालय, गोवा से अर्थशास्त्र में एम.ए. किया है। अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में आने से पहले वे 'संगत', जो भारत का एक प्रमुख मानसिक स्वास्थ्य स्वयंसेवी संगठन है, के लिए सात साल तक कई स्कूलों के स्वास्थ्य प्रोजेक्टों के लिए शोधकर्ता और समन्वयक के रूप में काम कर रहे थे। सूरज के पास कार्यक्रम समन्वयन, गुणात्मक और मात्रात्मक आँकड़ों के एकत्रीकरण और विश्लेषण, आँकड़ा प्रबन्धन और जटिल स्वास्थ्य सेवा अभियानों की निगरानी और मूल्यांकन के क्षेत्र में काम करने का अनुभव है। उनसे suraj.parab@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी



प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा : प्रवाह से बाहर निकलते हुए

किन्नरी पण्ड्या एवं जिगिशा शास्त्री



इस लेख में हम देश में प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा (ई.सी.ई.) की स्थिति का चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं और उन विभिन्न स्तरों की चर्चा कर रहे हैं जिन पर पेशेवर लोग ई.सी.ई. कार्यक्रमों को निष्पादित करने में संलग्न हैं। इससे आगे बढ़ते हुए, हम कुछ ऐसी केन्द्रीय सैद्धान्तिक धारणाओं की अनुशंसा भी कर रहे हैं जिन्हें (यह मानते हुए कि उच्च शिक्षा के एक अध्ययन क्षेत्र के रूप में ई.सी.ई. को देखने पर उसमें बच्चों के लिए जमीन पर क्रियान्वित किए जा रहे ई.सी.ई. कार्यक्रमों की गुणवत्ता में परिवर्तन करने की अन्तर्निहित क्षमता होती है) ई.सी.ई. में काम कर रहे पेशेवर लोगों को जानना चाहिए। हम अनुशंसा और आशा कर रहे हैं कि ई.सी.सी.ई. को राष्ट्रीय महत्त्व दिए जाने के सन्दर्भ में ई.सी.ई. के पेशेवर लोगों के लिए उच्च शिक्षा कार्यक्रमों को उपलब्ध बनाने के लिए ज्यादा सशक्त प्रयास किए जाएँगे।

सितम्बर 2013 में प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखभाल तथा शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) पर राष्ट्रीय नीति की अधिसूचना जारी किए जाने के साथ भारत में प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा में परिवर्तन के दौर की शुरुआत हो गई है। हमें आशा है कि इस प्रकार, देर से ही सही, जीवन के प्रारम्भिक वर्षों के महत्त्व को स्वीकार किए जाने से पूरे देश में सभी बच्चों के लिए उच्च गुणवत्ता वाली ई.सी.सी.ई. को नई ताकत और गति मिलेगी। अभी तक एक नियामक तंत्र के न होने के कारण, पिछले दो दशकों में देश भर में प्राथमिक बाल्यावस्था शिक्षा (ई.सी.ई.) केन्द्रों की भरमार हो गई है। इस मान्यता ने, कि बच्चों के बारे में जानने के लिए कोई विशेष बात नहीं होती या कि, "एक समय हम सभी बच्चे थे और हमारे अपने स्वयं के बच्चे हैं, इसलिए हम उनके बारे में और उनके लिए जो करना है उसके बारे में जानते हैं" – अनेक लोगों को बच्चों को 'स्कूली शिक्षा' के लिए तैयार करने के बहुत फायदेमन्द धन्धे में लगने के लिए प्रेरित किया है। बच्चों को सीखना जल्दी 'आरम्भ करने' की, और उन्हें साक्षर (यदि इसका मतलब 'ए, बी, सी....तथा 1, 2, 3...' जानना है) बनाने की (वास्तविक) जरूरत को मानते हुए, अधिकांश ई.सी.ई. कार्यक्रम प्राथमिक शिक्षा के नीचे की ओर किए जाने वाले विस्तार के रूप में विकसित किए जाते हैं, जिसके साथ कुछ गीत और कहानियाँ जोड़ दी जाती हैं। बच्चे पालने की लोक समझ से लैस लोग, जिन्हें सीखने तथा सिखाने की विकासात्मक प्रक्रियाओं का ज्ञान नहीं होता या बहुत मामूली ज्ञान होता है, बराबरी से ई.सी.ई. कार्यक्रमों में भागीदारी करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप व्यापक समुदाय को (ग्रामीण तथा शहरी, दोनों क्षेत्रों में समान रूप से) मिले–जुले प्रकार के कार्यक्रमों का समूह उपलब्ध होता है।

दूसरी ओर, विकासात्मक दृष्टि से उपयुक्त तथा सांस्कृतिक दृष्टि से संवेदनशील कार्यक्रम देश के विश्वविद्यालयों के विभागों के प्रयोगशाला वाले स्कूलों में उपलब्ध रहते हैं और कुछ रोचक कार्यक्रम गैर–सरकारी संगठनों तथा निजी स्कूलों द्वारा संचालित किए जाते हैं। हमें ऐसे ई.सी.ई. कार्यक्रम भी मिलते हैं जो मारिया मोण्टेसरी तथा अन्य दार्शनिकों द्वारा प्रचलित किसी विशेष विचारधारा और पद्धति का अनुसरण करते हैं। लेकिन इनकी संख्या बहुत थोड़ी है। इसके साथ–साथ, समेकित बाल विकास सेवाओं (आई.सी.डी.एस.) के हिस्से के रूप में सरकार द्वारा संचालित आँगनवाड़ी केन्द्र भी हैं जिनसे इस योजना के अन्तर्गत पोषण और स्वास्थ्य जैसे अन्य पहलुओं का ध्यान रखते हुए ई.सी.ई. के भी क्रियान्वयन करने की अपेक्षा की जाती है। इस प्रकार भारत में ई.सी.ई. के क्षेत्र में कई प्रकार की धाराएँ काम कर रही हैं।

आज के स्पर्धात्मक तथा अँग्रेजी भाषा के वर्चस्व वाले परिदृश्य में माता–पिता तथा समुदाय ऐसे कार्यक्रम पसन्द करते हैं जो बच्चे को स्कूल के वातावरण में 'ठीक से जमने' में मदद करेंगे। तथापि, प्रदान किए जा रहे

कार्यक्रम की प्रकृति तथा गुणवत्ता तब भी पूर्व–स्कूल के मालिकों की जिम्मेदारी होती है। इसे देखते हुए, यदि विकासात्मक दृष्टि से उपयुक्त, गुणवत्ता वाले कार्यक्रम उपलब्ध कराए जाना है, तो सरकार को एक नियामक तंत्र को स्थापित करने की आवश्यकता है। साथ ही, देश के अकादमिक जगत को उच्च शिक्षा, शोध तथा विकास के लिए एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में प्रारम्भिक वर्षों की शिक्षा को स्वीकार करने की जरूरत है।

छोटे बच्चों को ई.सी.ई. कार्यक्रम उपलब्ध कराने के लिए विभिन्न रूपों में अनेक व्यक्ति, (उनको हम आगे 'पेशेवर लोग' कहेंगे) काम करते हैं। यहाँ हम उन विविध स्तरों की चर्चा करेंगे जिन पर ये पेशेवर लोग अपना योगदान देते हैं, और इसकी भी कि हमारे देश के छोटे बच्चों को गुणवत्तापूर्ण कार्यक्रम प्रदान करने के लिए इन लोगों को किस प्रकार की शिक्षा दिए जाने की आवश्यकता होगी।

यहाँ हम विभिन्न स्तरों पर काम करने वाले कुछ प्रकार के पेशेवर लोगों (जो सीधे बच्चों के साथ काम करते हैं से लगाकर जो सीधे सम्पर्क की दृष्टि से काफी दूर होते है, तक) की सूची दे रहे हैं:

- शिक्षक / देखभाल करने वाला जो रोजमर्रा के आधार पर बच्चों के साथ काम करता है। ऐसे लोगों को जमीनी स्तर के या प्रथम पंक्ति के कार्यकर्ता भी कहा जाता है, आई.सी.डी.एस. व्यवस्था में वे आँगनवाड़ी कार्यकर्ता होते हैं, और हर निजी या सरकार द्वारा संचालित पूर्व–स्कूल में वे शिक्षक होते हैं।
- दूसरा स्तर निरीक्षक समूह का होता है। वे देखभाल करने वालों, अर्थात आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं, के सीधे सम्पर्क में रहते हैं। वे देखभाल करने वालों की रोजमर्रा की गतिविधियों की निगरानी करते हैं, और आदर्श स्थिति में उन्हें उनका मार्गदर्शक भी होना चाहिए, पूर्व–स्कूलों की बड़ी शृंखलाओं में वे पाठ्यक्रम विकसित करने वाले लोग तथा प्रत्येक आयु समूह के लिए पूर्व–स्कूल कार्यक्रम समन्वयक भी हो सकते हैं।
- ई.सी.ई. कार्यक्रम समूह के भीतर तीसरा समूह सबसे उच्चतम स्तर पर होता है। आई.सी.डी.एस.योजना के भीतर वे बाल विकास परियोजना अधिकारी (सी.पी.डी.ओ.) होते हैं। वे आँगनवाड़ियों की बड़ी संख्या की निगरानी करते हैं, और आदर्श स्थिति में उन्हें गुणवत्तापूर्ण सेवाओं को क्रियान्वित करने के लिए नेतृत्व करना चाहिए। वे निरीक्षकों का मार्गदर्शन करते है। निजी पूर्व–स्कूलों में वे प्रिंसिपल या पूर्व–स्कूल कार्यक्रमों के प्रमुख होते हैं।
- इस सीढ़ी में चौथा समूह शिक्षक प्रशिक्षक समूह है। आई.सी.डी.एस.योजना के अन्तर्गत, वे विभिन्न संवर्गों के लोगों को प्रशिक्षित करने के लिए कार्यक्रमों का निर्माण तथा उनका क्रियान्वयन करते हैं। निजी क्षेत्र में, वे नर्सरी शिक्षकों के प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षक होते हैं जो पूर्व–स्कूल शिक्षकों को प्रशिक्षण देते हैं।
- पेशेवर लोगों के इन चार वर्गों, जो प्रारम्भिक वर्षों के किसी कार्यक्रम (चाहे आई.सी.डी.एस. या निजी क्षेत्र में अन्य) से कमोबेश सीधे जुड़े रहते हैं, के अतिरिक्त प्रारम्भिक बाल्यावस्था के क्षेत्र को ऐसे योग्यता प्राप्त पेशेवर लोगों की आवश्यकता होती है जो नीति के विकास में, ई.सी.ई. और प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखभाल तथा शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) की पैरवी करने में सहायक हो सकते हैं; जो सीखने की सामग्री, खिलौने तथा किताबें डिजाइन करते है; शोधकर्ता इत्यादि। इन स्तरों में से प्रत्येक पर कारगर ढंग से काम करने के लिए ई.सी.ई. को अध्ययन के एक क्षेत्र के रूप में पूरी तरह से समझना आवश्यक होगा।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारे देश में चूँकि एक कार्यक्षेत्र के रूप में प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा असंगठित तथा अनियंत्रित बनी रही है, इसलिए अध्ययन तथा जाँच–पड़ताल के एक क्षेत्र के रूप में इस पर सीमित ध्यान ही दिया गया है। इस इतिहास को देखते हुए, उपरोक्त स्तरों में से प्रत्येक पर संलग्न लोगों के लिए गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा कार्यक्रमों का अभाव है। एक कार्यक्षेत्र के रूप में ई.सी.ई. में विशेष प्रशिक्षण से यह सम्भव होगा कि गुणवत्तापूर्ण ई.सी.ई. पाठ्यक्रम विकसित किए जा सकें, तथा ऐसे स्थान निर्मित किए जा सकें जो छोटे बच्चों को शारीरिक–अंगचालन, मानसिक–सामाजिक, संज्ञानात्मक और सृजनात्मक क्षेत्रों में विकास करने के अवसर प्रदान करें। बच्चों के लिए सामग्री की रचना और उसका चुनाव आयु तथा विशेषता के क्षेत्र के लिए उपयुक्त होगा। ई.सी.ई. की समझ वाले पेशेवर लोग प्रशिक्षण कार्यक्रमों को विकसित कर सकेंगे और छोटे बच्चों के भावी शिक्षकों को तथा ई.सी.ई. संस्थाओं के प्रशासकों को प्रशिक्षण प्रदान कर सकेंगे।

छोटे बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण ई.सी.ई. कार्यक्रम के लिए प्रारम्भिक वर्षों की शिक्षा के बारे में क्यों, कब, क्या और कैसे, इन सभी पहलुओं की अकादमिक रूप से गहरी तथा सैद्धान्तिक रूप से मजबूत समझ जरूरी होगी। इसलिए जहाँ एक ओर क्षेत्र में काम करने वाले पेशेवर लोगों के प्रत्येक स्तर की जरूरतों और उनकी भूमिका से की जाने वाली अपेक्षाओं पर निर्भर करते हुए प्रशिक्षण कार्यक्रम की विषयवस्तु तथा प्रकृति बदलती रहेगी, वहीं दूसरी ओर कुछ केन्द्रीय सैद्धान्तिक सामग्री ऐसी होगी जो सबके लिए साझा होगी और जो ई.सी.ई. के उच्च शिक्षा कार्यक्रम के पाठ्यक्रम का आधार–स्वरूप होगी। इसके साथ ही, बच्चों के साथ सीधे जुड़ने और उनके साथ काम करने का अभ्यास एक ऐसा महत्त्वपूर्ण अंग है जिसे सभी कार्यक्रमों में शामिल रहना चाहिए। कार्यक्रम का एक बड़ा भाग, प्रतिशत में करीब–करीब सैद्धान्तिक पहलू के बराबर, इस ढंग से निर्मित किया जाना चाहिए कि भागीदारों को बच्चों के साथ सक्रिय अनुभव (बच्चों का अवलोकन करना, उनका आकलन करना, सीखने की सामग्री डिजाइन करना, कार्यक्रमों को डिजाइन करना, इत्यादि) का अवसर मिल सके।

केन्द्रीय सैद्धान्तिक पहलुओं को मोटे तौर पर तीन क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है अर्थात बच्चों के विकास को समझना, प्रारम्भिक वर्षों के लिए पाठ्यक्रम तथा छोटे बच्चों के साथ काम करना। इन मोटे–मोटे क्षेत्रों में से प्रत्येक के भीतर ऐसी विशिष्ट सैद्धान्तिक विषयवस्तु वाले पहलू जिन पर ध्यान केन्द्रित किया जाना होगा इस प्रकार हैं :



बच्चों के बड़े होने तथा विकास की प्रक्रिया को समझना; विकास के क्षेत्र; बच्चों के लिए सीखने की प्रक्रिया; बच्चों को प्रभावित करने वाले कारक; प्रारम्भिक बचपन के बारे में दार्शनिक विचारधाराएँ; बाल विकास के सिद्धान्त; तथा माता–पिता और समुदाय की भागीदारी।

शोध तथा व्यावहारिक कार्य, दोनों दर्शाते हैं कि हर उस व्यक्ति को जो बच्चों के साथ और उनके लिए काम करता है बच्चों तथा बाल्यावस्था के इन बुनियादी पहलुओं के बारे में ज्ञात होना चाहिए।

एक ई.सी.ई. कार्यक्रम में बच्चों के साथ काम करने तथा पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में जिन अन्य महत्त्वपूर्ण पहलुओं की विषयवस्तु पर ध्यान दिए जाने की जरूरत है, वे हैं : बच्चों के बड़े होने, व्यवहार तथा विकास में उनका मार्गदर्शन; बच्चों के लिए सीखने के परिणाम तथा सम्बन्धित अनुभव; पाठ्यक्रम तथा मूल्यांकन; बच्चों के लिए संगीत, छोटे बच्चों के साथ काम करने के नैतिक पहलू; सांस्कृतिक सन्दर्भों को समझना, लैंगिक मुद्दों तथा विशेष जरूरतों वाले बच्चों को शामिल करना; छोटे बच्चों के साथ शोध आदि।

पाठ्यक्रम के इन विशेष अंगों में से प्रत्येक पर काम करने के दौरान, दो महत्त्वपूर्ण तत्वों का सभी में समावेश किया जाना जरूरी है : बच्चों की सामाजिक–सांस्कृतिक विविधता को समझना और बच्चों के साथ काम करने के लिए नैतिक सावधानियाँ। ई.सी.ई. कार्यक्रम से जुड़े हर व्यक्ति को हमारे देश में बच्चों के विभिन्न सन्दर्भों, जैसे कि ग्रामीण, शहरी, जनजातीय, पारिवारिक प्रकार तथा जाति, वर्ग, भाषा, लिंग की विविधता आदि को समझना आवश्यक होगा। पूर्व–स्कूल के परिवेश में बच्चों की इस जटिल भिन्नता को समझने में तथा हर बच्चा अपने जिस विशिष्ट व्यक्तित्व को लेकर आता है उसे सराहने में शैक्षणिक कार्यक्रमों को पेशेवर लोगों की सहायता करना चाहिए। सभी संवर्गों के पेशेवर लोगों के लिए प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के सभी कार्यक्रमों को प्रत्येक बच्चे को पहचानने, सराहने तथा उसके प्रति संवेदनशील होने में उन व्यक्तियों की सहायता करना चाहिए।

विभिन्न प्रकार की स्थितियों में कार्यवाही करने के लिए, छोटे बच्चों तथा उनकी शिक्षा के साथ काम करने के परिवेशों का मजबूत नैतिक आधार होना जरूरी होगा। इसके लिए ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो छोटे बच्चों के साथ काम करने में नैतिक दृष्टिकोणों का पालन करेंगे और दुविधाओं की स्थिति में नैतिक निर्णय लेंगे।

उपरोक्त सभी बातों के अलावा, निरीक्षकों के पदों पर स्थित लोगों, जो दूसरे लोगों का संचालन करने, निगरानी करने तथा परामर्श देने का काम करते हैं, को इन प्रक्रियाओं की सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की समझ की जरूरत पड़ेगी। उनके लिए निगरानी करने और परामर्श देने के अन्तर, और व्यवहार में उनके परस्पर जुड़े रहने के तरीके को समझना भी आवश्यक होगा।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के क्षेत्र की इस समझ का प्रभाव ई.सी.ई. कार्यक्रमों की रचना करने, उनको कार्यान्वित करने तथा उनकी निगरानी रखने पर पड़ेगा। आँगनवाड़ियों या पूर्व–स्कूलों में सभी काम करने वाले लोगों के द्वारा, या नीति निर्माताओं तथा पैरवीकारों द्वारा लिए जाने वाले निर्णय तदर्थ नहीं होंगे, बल्कि मजबूत सैद्धान्तिक आधार–ज्ञान तथा व्यावहारिक प्रासंगिकता पर आधारित होंगे। जमीन पर किए जाने वाले कामों का कुछ सुदृढ़ आधार होगा और उसके फलस्वरूप समुचित रूप से अपेक्षित परिणाम प्राप्त होंगे। इससे पूर्व–स्कूल के परिवेशों में छोटे बच्चों के 'सर्वांगीण विकास' की (न कि उन्हें केवल आगे के स्कूल में 'ठीक से जमने' के लिए तैयार करने की) आवश्यकता को पहचानने तथा उसके लिए कार्यक्रम प्रदान करने में सहायता मिलेगी।

अन्त में निष्कर्ष यह है कि किसी भी प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा कार्यक्रम में बच्चे और उनका सर्वांगीण विकास ही हर प्रक्रिया के केन्द्र में होना चाहिए। हमारी समृद्ध सांस्कृतिक प्रथाएँ बच्चों के साथ काम करने के बारे में कुछ अन्तर्दृष्टियाँ प्रदान करती हैं, लेकिन प्रारम्भिक वर्षों में सभी बच्चों को गुणवत्तापूर्ण अनुभव प्रदान करने के लिए, ई.सी.ई. के क्षेत्र में प्रक्रियात्मक रूप से शामिल सभी स्तरों पर ऐसे लोगों की आवश्यकता होगी जिन्हें इस क्षेत्र की विशिष्ट विषयवस्तु के ज्ञान के आधार पर पेशेवर ढंग से प्रशिक्षित किया गया हो। बारहवीं पंचवर्षीय योजना में ई.सी.ई. पर दिए गए जोर से, और साथ ही ई.सी.सी.ई. पर राष्ट्रीय नीति के अनुमोदन से हमारे नीति निर्माताओं का इरादा स्पष्ट है। हमारे देश में उच्च शिक्षा ने प्राथमिक शिक्षा तथा अध्यापक शिक्षा को अध्ययन के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों के रूप में सफलतापूर्वक स्वीकार किया है। अब समय आ गया है कि प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा को भी उसका जायज महत्त्व हासिल हो।







चित्रों के लिए आभार : मेडक ई.सी.ई. इनीशिएटिव टीम, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन

किन्नरी पण्ड्या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के शिक्षक समुदाय की सदस्य हैं और एम.ए. के कार्यक्रम में पढ़ाती हैं। वे प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के विकास की पहल करने वाले दल की सदस्य हैं और अपने अकादमिक कार्य के साथ–साथ सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था में भी सीधे सक्रिय रूप से कार्यरत हैं। उन्होंने गुजरात में स्कूल मूल्यांकन पद्धतियों को संशोधित करने के एक जिला–स्तरीय प्रयास का प्रबन्धन किया है; उत्तराखण्ड और छत्तीसगढ़ में सेवा–पूर्व अध्यापक–शिक्षा के पाठ्यक्रम के पुनरीक्षण में भाग लिया है; और आंध्रप्रदेश के आई.सी.डी.एस. केन्द्रों के साथ सक्रिय रूप से कार्य करती हैं। उनसे kinnari@azimpremjifoundation.org सम्पर्क किया जा सकता है।

जिगिशा शास्त्री अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में शिक्षक हैं और एम.ए. के कार्यक्रम में पढ़ाती हैं। वे प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के विकास की पहल करने वाले दल की सदस्य हैं और आंध्रप्रदेश के आई.सी.डी.एस. केन्द्रों के साथ व्यापक रूप से काम करती हैं। पहले वे बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में कार्यरत थीं। साथ ही यूनीसेफ गुजरात के लिए राज्य ई.सी.ई. सलाहकार थीं। ई.सी.ई. में उनकी रुचि के क्षेत्र प्रशिक्षण, पाठ्यक्रम विकास, मूल्यांकन तथा सामाजिक योग्यता हैं। उनसे jigisha.shastri@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** सत्येन्द्र त्रिपाठी



प्रारम्भिक बाल्यावस्था में लैंगिक अधिकार

मीना स्वामीनाथन

प्रारम्भिक बाल्यावस्था, यानी गर्भधारण से लेकर लगभग छह साल की उम्र तक के समय, को किसी मनुष्य के विकास के दृष्टिकोण से अब जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण दौर माना जाता है। इस दौर में उपेक्षा या मानसिक आघात होने से व्यक्तित्व को गम्भीर और कभी–कभी स्थायी क्षति पहुँचती है। लैंगिक दृष्टिकोण से देखने पर, पाँच मुद्दे ऐसे हैं जिनकी अवधारणा किसी छोटी बच्ची के अधिकारों के रूप में की जा सकती है, और अगर दूसरे ढंग से कहें तो, छोटी बच्ची की नजर से देखने पर लैंगिक भेदभाव के रूप में की जा सकती है।

1. पहला है, लड़की के रूप में जन्म लेने का अधिकार।
2. दूसरा है, स्वस्थ अवस्था में जन्म लेने का अधिकार।
3. तीसरा है, माँ के दूध पर अधिकार : बच्ची का स्तनपान करने का अधिकार और माँ का बच्ची को स्तनपान कराने का अधिकार।
4. चौथा है, प्रारम्भिक बाल्यावस्था में देखभाल प्राप्त करने का अधिकार। इसमें विकास और शिक्षा शामिल हैं।
5. पाँचवाँ है, बच्चे की देखभाल करने वाले व्यक्ति को सम्मान और पुरस्कार का अधिकार।

1. लिंग चयन

हालाँकि पिछले कुछ दशकों में शिशु मृत्यु दर (आई.एम.आर.) और बाल मृत्यु दर (सी.एम.आर.), दोनों में नाटकीय ढंग से कमी आई है – आई.एम.आर. 1971 में 1000 जीवित जन्मे शिशुओं पर 129 थी जो 2010 में घटकर 47 हो गई। इसी प्रकार सी.एम.आर. 1971 में 1000 पर 51.9 से घटकर 2010 में 13.3 (भारत की जनगणना के अनुसार) रह गई। लेकिन, जो व्यथित करने वाली बात सामने आई है, वह है बढ़ता हुआ प्रतिकूल बालिका लिंग अनुपात, जो पिछले चालीस सालों से लगातार घटता जा रहा है। पहले के 1000 लड़कों पर 962 लड़कियों से यह लगातार घटता गया है – 1991 में 1000 लड़कों पर 945 लड़कियाँ, 2001 में 1000 पर 927 तथा 2011 में अभी तक का सबसे निम्न अनुपात – 1000 पर 914 (भारत की जनगणना)। विभिन्न समूह भारत में हर साल "गायब" हो जाने वाली लड़कियों की संख्या के भयावह आकलन पेश करते हैं। ऐसे ही एक आकलन में 1 से 15 वर्ष तक की आयु वाली लड़कियों की गायब होने की संख्या 41. 5 लाख बताई गई है (जेन्डरबाइट्स, वर्डप्रेस)। शुरुआती दशकों में इस अन्तर की वजह कन्या शिशु हत्या होती थी, और बाद में, लिंग चयन एवं गर्भपात के कारणों से लड़कों और लड़कियों के बीच यह अन्तर बढ़ता चला गया। इतना ज्यादा, कि यह सोचने पर मजबूर होना पड़ता है कि क्या लड़की को पैदा होने का हक भी है या नहीं! – यह लैंगिक भेदभाव की पराकाष्ठा है।

चूँकि लिंग परीक्षण का सम्बन्ध लिंग से है, और यह बच्चे के पैदा होने से पहले कराया जाता है, अतः इससे न केवल बच्चों के अधिकारों पर असर पड़ता है, बल्कि महिलाओं के अधिकारों पर भी। गर्भपात कराने के महिला के अधिकार को गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम द्वारा बहुत स्पष्ट ढंग से परिभाषित किया गया है। इस अधिनियम में कहा गया है कि गर्भ के समापन को उचित और गर्भपात को कानूनी रूप से स्वीकार्य बनाने वाले तीन मुख्य कारण हैं – और भ्रूण का लिंग निश्चित ही उनमें से एक नहीं है! और आगे बढ़ें, तो एक और अधिनियम (पी.सी.पी.एन.डी.टी. : गर्भधारण–पूर्व एवं प्रसव–पूर्व निदान तकनीक अधिनियम) साफ–साफ कहता है कि लिंग चयन कानून के द्वारा निषिद्ध है। पर फिर भी इसका लगातार जारी रहना यह दिखाता है कि सार्वजनिक दिखावे के रूप में निरन्तर देवी की महिमा की बातें करने और उनकी पूजा करने के बावजूद हमारा समाज कितना नारी–विरोधी हो चुका है। इसलिए स्पष्ट है कि, कई स्त्रियों को अपनी मर्जी के विपरीत कन्या भ्रूण को गिराना पड़ता है, क्योंकि इसके

लिए उन पर बहुत दबाव बनाया जाता है, और वे इसका प्रतिरोध करने की स्थिति में नहीं होतीं।

यह बात दुखद किन्तु सत्य है कि परिष्कृत वैज्ञानिक तकनीकों का बहुत स्पष्ट रूप से स्त्रियों के विरुद्ध उपयोग किया जाता है। वैज्ञानिक दावा करेंगे कि विज्ञान अपने आप में तटस्थ है, और वह किसी का पक्षधर या किसी के विरुद्ध नहीं है। यह बात सैद्धान्तिक रूप से तो सही है, पर वैज्ञानिक भी मनुष्य ही होते हैं, जो किसी समाज का हिस्सा होते हैं और उनके मूल्यों और प्रवृत्तियों पर अनिवार्य रूप से उन्हीं मान्यताओं और प्रवृत्तियों की छाप होती है जो उनके सामाजिक अनुभवों में उनके सामने सामने आती हैं। यह उल्लेखनीय है कि चिकित्सकीय जगत से जुड़े बहुत कम पेशेवर लोग ऐसे हैं जो खुलकर इन कुरीतियों के विरुद्ध सामने आए हैं। इसलिए इस निष्कर्ष पर पहुँचना कोई गलत नहीं होगा कि उनमें से अधिकांश लोग, खासतौर पर निजी क्षेत्र में, जो कि सबसे ज्यादा प्रशंसित और प्रभावशाली क्षेत्र है, इस अपराध के भागी रहे हैं।

तमिलनाडु में 1990 के दशक में और उसके बाद भी, सी.ए.एस.एस.ए. (कैम्पेन अगेन्स्ट सेक्स सिलेक्टिव एबोर्शन : लिंग चयन पर आधारित गर्भपात के खिलाफ अभियान) द्वारा आयोजित अभियानों के साथ काम करते हुए, हमें अकसर देखने में आता था कि महिला स्त्री–रोग विशेषज्ञ, जो निश्चित ही गर्भावस्था के दौरान विभिन्न (उचित और अनुचित, दोनों कारणों से) अल्ट्रासॉनिक परीक्षण का इस्तेमाल करती थीं, ऐसे पुरुष शिशु–रोग विशेषज्ञों के खिलाफ खड़ी हो गईं जिन्होंने जिन्दगियों को बचाने के लिए और सम्बन्धित नवजातों के स्वास्थ्य को सुधारने के लिए आवाज उठाई। यहाँ एक विडम्बना भरी बात यह थी कि चिकित्सा जगत के इन पेशेवर लोगों में से कई ऐसे पति–पत्नी थे जो इस पेशेवर विभाजन में अपने ही जीवनसाथी के खिलाफ थे। इस विचार से मन स्तब्ध रह जाता है कि क्या इन मुद्दों की कलह की वजह से उनकी घरेलू जिन्दगी की शान्ति भंग हो गई होगी, और अगर हाँ तो कैसे?

2. जन्म के समय सामान्य से कम वजन होना

वैश्विक रूप से, लगभग 15% नवजात सामान्य से कम वजन (एल.बी.डब्ल्यू.) के साथ पैदा होते हैं, यानी 2500 ग्राम से कम। इनमें से, आधे से ज्यादा दक्षिण एशिया में हैं, और उनमें से 75% भारत में हैं, और प्रतिवर्ष 83 लाख नवजात इन आँकड़ों में जुड़ते जाते हैं। पिछले कुछ सालों में इस आँकड़े में उल्लेख करने लायक कोई कमी नहीं आई है। (यूनीसेफ 2006) एन.एफ.एच.एस. 3 के आकलन के अनुसार 2005–06 में कुल हुए नवजातों में से तकरीबन 21% एल.बी.डब्ल्यू. थे। माता के अल्प–पोषित होने के कारण, खासतौर से गर्भावस्था की अन्तिम त्रैमासी में, जन्म के समय शिशु का वजन सामान्य से कम होता है जिसके नकारात्मक परिणाम आगे कई रूपों में सामने आते हैं – मस्तिष्क के विकास में, शरीर की वृद्धि और संरचना में, अल्पकालिक उपापचयी (मेटाबॉलिक) विकास में जिसके चलते अन्ततः संज्ञानात्मक क्षमता कम होती है और उसके कारण भविष्य का शैक्षणिक प्रदर्शन प्रभावित होने की सम्भावना होती है, रोग रोधक क्षमता और कार्यक्षमता घट जाती है। यह पुरानी कहावत – पिताओं के पापों का भुगतान बच्चों को करना पड़ता है – की क्रूर परन्तु अद्‌भुत मिसाल है। इस मामले में, शब्दशः बिलकुल ऐसा होता है। किसी भी कारण से गर्भवती महिला को पर्याप्त आहार और देखभाल न मिलने के कारण, विशेष रूप से आखिरी तीन महीनों में, जन्म के समय बच्चे का वजन कम होता है।

स्वाभाविक है, कि कम वजन के नवजात शिशुओं की आगे की जिन्दगी के ऐसे बहुत कम दीर्घकालिक अध्ययन हुए हैं जो यह दिखा सकें कि कैसे और किस तरह से उनका आगे का विकास प्रभावित होता है; इसके अलावा, मानवीय दृष्टि से भी देखें, तो बगैर किसी निदानात्मक उपाय के सिर्फ उनका आगे अध्ययन भर किया जाना, अनैतिक बात होगी, क्योंकि कमी का पता लग जाने के बाद उस कमी को पूरा करने का हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए। हालिया शोधों से पता चला है कि ऐसे बच्चों में बाद के जीवन में मधुमेह, मोटापा, उच्च रक्तचाप और दिल की बीमारी होने की प्रवृत्ति होती है (भट और अन्य, 2013)। बार्कर और अन्य (2007), जिन्होंने हेलसिंकी में ऐसे बच्चों के एक समूह का निरीक्षण जारी रखा, ने यह पाया कि जन्म के समय छोटा आकार होने के बाद 3–11 साल की उम्र के बीच तेजी से वृद्धि होने पर ही ऐसे ही नतीजे सामने आए, और साथ ही बाद के जीवन में आने वाली तनावपूर्ण परिस्थितियों के प्रति ऐसे बच्चों की प्रतिक्रिया कमजोर रही। चौधरी और अन्य (2004) ने एल.बी.डब्ल्यू. बच्चों के एक समूह पर निगरानी रखी और पाया कि सामान्य बच्चों के एक निश्चित समूह की तुलना में उनकी बौद्धिक क्षमता, दृश्य–प्रेरक तंत्र प्रदर्शन, प्रेरक तंत्र क्षमता और स्कूल में

उनका प्रदर्शन कमजोर थे, और उनके पढ़ने तथा गणित करने में सीखने की अक्षमता पाई गई। इसलिए, ऐसा लगता है कि बचपन की, स्कूल के दौरान, और बाद के वयस्क जीवन में आने वाली कई समस्याओं को जन्म के समय उनके कम वजन तथा माँ के अल्प–पोषित होने से जोड़कर देखा जा सकता है, और इसलिए माँ का कमजोर स्वास्थ्य भी अपने आप में लैंगिक भेदभाव का प्रतिनिधि सूचक है। यहाँ भी इस तरह का भेदभाव जीवन के बिलकुल प्रारम्भ से शुरू हो जाता है, जन्म से कहीं पहले, लेकिन उसके परिणाम दूरगामी होते हैं।

3. केवल माँ का दूध

आजकल शिशुओं के लिए जन्म से लेकर छह महीने की उम्र तक सिर्फ माँ का दूध देने की सलाह दी जाती है। वास्तव में उसके बाद भी, दो साल की उम्र तक बाकी पूरक खाद्य पदार्थों के साथ माँ का दूध जारी रहने देना चाहिए। डब्ल्यू.एच.ओ. द्वारा भी इस सलाह का अनुमोदन और समर्थन किया गया है। इसके बावजूद भारत में ऐसा बहुत कम होता है कि बच्चों को सिर्फ माँ का दूध दिया जाता हो।

बच्चे को केवल माँ का दूध मिलते रहने के लिए जरूरी है माँ और बच्चा दिन भर लगातार एक–दूसरे के निकट रहें, क्योंकि छोटे बच्चों को अनियमित अन्तरालों पर भूख लगती है, इसके अलावा माँ और बच्चे के बीच मजबूत रिश्ते के लिए भी ऐसा होना जरूरी है, जो मनो–सामाजिक विकास का पहला अनिवार्य कदम है।

पर कामकाजी गरीब माताओं के लिए हमेशा ऐसा कर पाना सम्भव नहीं होता। महिलाओं की कई मजबूरियाँ होती हैं, न सिर्फ उसे वैतनिक और अवैतनिक, दोनों प्रकार के उत्पादक कार्यों में लगे रहना पड़ता है, बल्कि घर को सम्भालने और घर का कामकाज करने की जिम्मेदारी भी उसकी होती है। और सबसे बड़ा काम, जो लोगों को काम जैसा दिखाई नहीं देता लेकिन जिसमें सबसे ज्यादा समय देना पड़ता है – वह है देखभाल का काम, न सिर्फ बच्चों की बल्कि बुजुर्गों की, बीमारों की, अक्षम लोगों की, घर के जानवरों की। लेकिन अभी हाल में जाकर "महिलाओं द्वारा देखभाल का अवैतनिक कार्य" जैसे शब्द सुनने में आए हैं। और इस काम का समय, विस्तार और विविधता का आकलन करना भी अब शुरू हो गया है। समय के उपयोग के अध्ययन (टाइम यूज स्टडी) की पद्धति काम के इस अधिकतर अनदेखे बोझ को विस्तार से दर्ज करने की जबरदस्त गुंजाइश देता है, पर अभी तक इसका कोई खास उपयोग नहीं किया गया है। फिर भी, अभी भी यह हमें इस गुंजाइश की कुछ झलकियाँ दिखाता है, जैसे कि जहाँ भारतीय पुरुष दिन में दो घण्टे आराम करते हैं, वहीं महिलाओं को दिन में सिर्फ पाँच मिनिट आराम मिल पाता है (सी.एस.ओ.)। इतना ही नहीं, जहाँ एक औसत भारतीय पुरुष दिन में नौ घण्टे काम करता है, वहीं एक औसत भारतीय महिला दिन में चौदह घण्टे काम करती है। तो फिर महिलाओं को अपने बच्चों को सिर्फ अपने दूध पर रखने का समय कहाँ है?

उदाहरण के लिए, मातृत्व लाभ अधिनियम सिर्फ संगठित क्षेत्र पर लागू होता है, जिसमें सिर्फ 11% महिला कामगार कार्यरत हैं। सभी महिलाओं को मातृत्व अधिकार मिलने पर ही स्तनपान कराने वाली महिलाएँ पर्याप्त समय तक कामगारी से दूर रह पाएँगी, और इस प्रकार न सिर्फ

माँ के साथ रहने वाले तीन वर्ष से कम आयु के सबसे छोटे बच्चों द्वारा स्तनपान की स्थिति (प्रतिशत में)

आयु (माह)	स्तनपान न करने वाले	सिर्फ स्तनपान करने वाले	सादापानी पीने वाले	गैर–दूध पेय / रस पीने वाले	वैकल्पिक दूध पीने वाले	पूरक खाद्य लेने वाले
<2	2.7	69	16.2	2.6	7.8	1.7
2 – 3	1.5	50.9	23.1	4.9	14.6	5.0
4-5	1.5	27.6	25.6	6.4	20.2	18.6
6-8	4.0	9.7	18.8	3.2	11.6	52.7

स्तनपान की स्थिति का आशय 24 घण्टे (कल का दिन तथा रात्रि) की अवधि के दौरान स्तनपान से है। स्तनपान करने वालों और सिर्फ पानी पीने वालों की श्रेणियों में रखे गए बच्चे कोई अन्य पेय या पूरक आहार ग्रहण नहीं करते थे। स्तनपान न करने वालों, सिर्फ स्तनपान करने वालों, स्तनपान करने और सादा पानी पीने वालों, गैर–दूध पेय / रस पीने वालों तथा पूरक खाद्य (ठोस तथा अर्ध–ठोस आहार) लेने वालों की श्रेणियाँ पदानुक्रम वाली तथा अलग–अलग हैं, और इन सबका योग 100 प्रतिशत हो जाता है। (एन.एफ.एच.एस. III, 2006)

स्तनपान सुगम हो सकेगा, बल्कि माँ और बच्चे का रिश्ता भी और गहरा हो सकेगा। यह सराहनीय बात है कि राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (2013) वाकई में पहली बार सभी महिलाओं को नौ महीनों की अवधि (गर्भावस्था के आखिरी तीन महीने और बच्चे के जन्म के बाद पहले छह महीने) के दौरान मातृत्व अधिकार प्रदान करता है, पर इसके अन्तर्गत दी जाने वाली मामूली तयशुदा रकम – प्रस्तावित राशि "कम से कम 1000 रुपये" (जिसका अर्थ 'बस इतना ही और इससे ज्यादा नहीं' के रूप में लगाए जाने की सम्भावना है) – आज की महँगाई के दौर में किसी भी महिला के लिए अधिक दिनों तक कामकाज से दूर रह सकने के लिए नाकाफी है। एक और क्रूर विडम्बना है – आखिरकार उसे माँ के रूप में मान्यता देकर मातृत्व के अधिकार तो दिए – लेकिन यह "बहुत थोड़ा और बहुत देर से" दिया गया है, और इसलिए यह उसके लिए कोई खास अर्थ नहीं रखता। केवल स्तनपान, उन तमाम मुद्दों में से एक है जिन्हें तब तक नहीं सुलझाया जा सकता, जब तक "महिलाओं द्वारा देखभाल करने के अवैतनिक कार्य" के मुद्दे पर ध्यान नहीं दिया जाता, और उसका हल नहीं ढूँढा जाता।

4. दिन के दौरान देखभाल

चौथा मुद्दा परिवार के पार जाकर सभी माताओं को बच्चों की पर्याप्त देखभाल कर पाने के लिए जरूरी सेवाएँ मुहैया कराने के संस्थागत क्षेत्र में दाखिल हो जाता है। दो साल से कम उम्र के बच्चे को न सिर्फ लगातार स्तनपान तथा पर्याप्त मात्रा और अच्छी गुणवत्ता वाले भोजन की जरूरत होती है, बल्कि उसे दिन में नियमित अन्तरालों पर आहार देना जरूरी होता है। दिन में चार या पाँच बार का आहार (यदि इससे ज्यादा नहीं तो) करवाने, जिसमें हर बार तकरीबन 20 मिनिट का समय लगता है, तथा उस आहार को बनाने की तैयारी, उसके संग्रहण, और अगर जरूरी हो तो फिर से गर्म करने के समय को जोड़ लिया जाए तो इस काम में प्रतिदिन 2–3 घण्टे लगेंगे। एक गरीब कामकाजी महिला अपने व्यस्त दिन में से यह सब करने के लिए समय कहाँ से निकालेगी? कई गरीब कामकाजी महिलाएँ बहुत घण्टों के लिए अपने घर से बाहर रहती हैं, और अकसर छोटे बच्चों को उनके बड़े भाई–बहनों की देखरेख में छोड़ जाती हैं। माँ का यह अभाव न सिर्फ बच्चों के कुपोषण, बीमारी और मृत्यु का एक प्रमुख कारण है, बल्कि इसकी वजह से देखरेख करने वाला वह बड़ा बच्चा भी स्कूली शिक्षा से वंचित रह जाता है। और आहार, बच्चों की देखभाल के कई तत्वों में से एक तत्व मात्र है।

लेकिन बच्चों की देखभाल की हमारी सेवाएँ इस समस्या पर ध्यान देने में नाकाम रही हैं, और वे लगातार इसी बहस में लगे रहे हैं कि बच्चों के लिए भोजन की व्यवस्था कैसे की जाए, बजाय इसके कि बच्चों को खिलाया कैसे जाए और उनकी देखभाल कैसे की जाए "खाना घर ले जाना" बनाम "बच्चे को खिलाना" की बहस सालों से होती आ रही है। पहले तरीके में नुकसान यह हो सकता है कि वह खाना सारे घर वालों में बँट जाए, जबकि दूसरे तरीके में गड़बड़ी यह है कि बच्चा सारे दिन के आहार की मात्रा इतने से समय में ग्रहण नहीं कर सकता। इस गतिरोध के पीछे अन्तर्निहित कारण यह है कि, आई.सी.डी.एस. "सेवा–आधारित" है, न कि "देखभाल–आधारित", और इसमें छोटे बच्चों के लिए दिन के दौरान देखभाल की सम्भावना पर विचार नहीं किया गया है जिससे कि जब उनकी माताएँ काम पर गई हुई होंगी उस अवधि में उन्हें आहार भी मिल सकेगा और उनकी देखरेख भी हो सकेगी। जहाँ 11.5 करोड़ महिलाएँ कामगार शक्ति का हिस्सा हों, (जिनमें से 90 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में हैं), और इनमें से 3.5 करोड़ अनुमानित महिलाएँ ऐसी होती हैं जिनके छह साल से कम उम्र के बच्चे रहते हैं, तो वहाँ समाधान के रूप में दिन की देखभाल एक स्वाभाविक विकल्प प्रतीत होता है। इसके अलावा, दिन की देखभाल से इन छोटे बच्चों का ध्यान रखने वाले बड़े भाई–बहनों, खास तौर पर बहनों, को स्कूल जाने का अवसर मिलेगा।

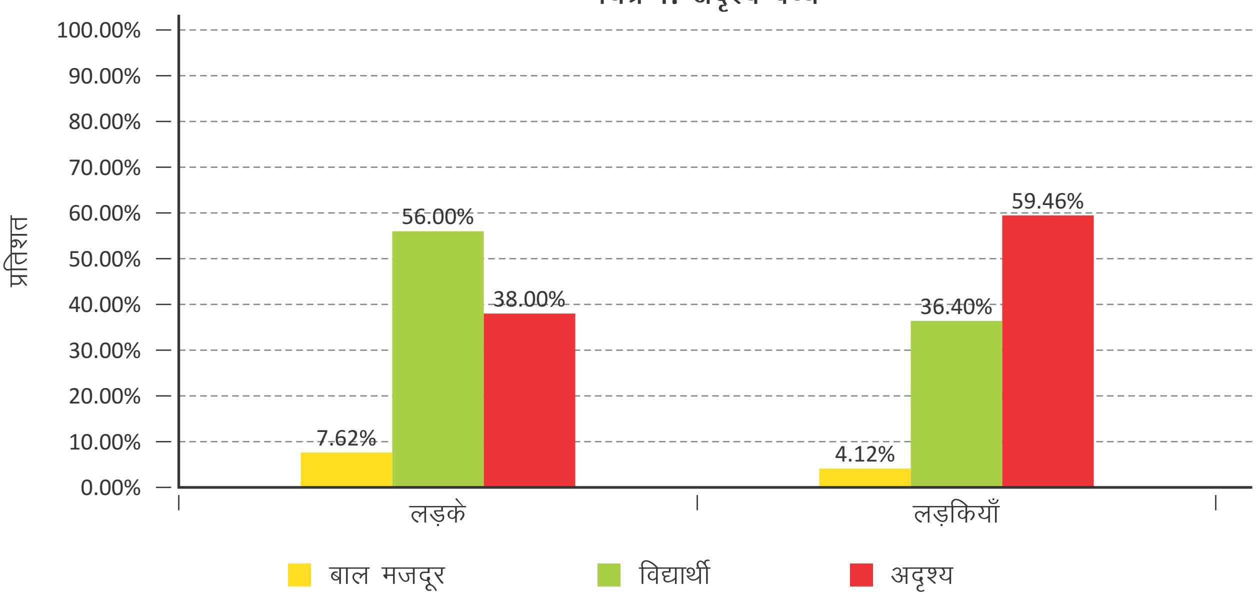
अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एक अध्ययन द्वारा यह आकलन किया गया कि करीब 38 प्रतिशत लड़कों तथा 60 प्रतिशत लड़कियों को "अदृश्य बच्चे" कहा जा सकता है, यानी वे न तो स्कूल जाते हैं और न ही काम करते हैं। इस श्रेणी में लड़कियों की संख्या लड़कों से तकरीबन दोगुनी है। एक सरल अनुमान यह होगा कि इनमें से कई बच्चे, खासकर लड़कियाँ, अपने छोटे भाई–बहनों की देखरेख में लगी रहती होंगी जिसकी वजह से उनकी शिक्षा बाधित होती है। अतः दिन की देखभाल ऐसे बच्चों के लिए भी सार्थक साबित होगी। पर ऐसी व्यवस्था न होने पर उसकी कीमत छोटे बच्चों, उनकी बड़ी बहनों और

माताओं को चुकाना पड़ती है – यहाँ भी हम लैंगिक भेदभाव को साफ तौर पर काम करता हुआ देख सकते हैं।

5. अपने काम की कद्र और उसके प्रतिफल का अधिकार

अन्त में, एक उभरती हुई समस्या है बच्चों की परवरिश से जुड़ी सेवाओं, जो अधिकांशतः महिलाओं के हवाले ही होती हैं, में लैंगिक भेदभाव, जबकि स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा से जुड़े पेशेवर लोगों में लैंगिक भेदभाव न के बराबर पाया जाता है। इस देश में तीस लाख से भी ज्यादा महिलाएँ/लड़कियाँ बच्चों की देखभाल के कार्य में लगी हुई हैं (और इतनी ही संख्या में वे सहायक के रूप में काम कर रही हैं) और समाज के प्रति उनके इतने बड़े योगदान को देखते हुए उनकी स्थिति किन्हीं भी मानदण्डों के हिसाब से देखें तो शोचनीय है। अभी भी उन्हें "कामगार" के बजाय सिर्फ "स्वयंसेवी" समझा जाता है और "मानदेय" के नाम पर उन्हें दिन में कई घण्टों तक बच्चों के लिए मशक्कत करने (झाड़ू–बुहारी और साफ–सफाई से लेकर खाना तैयार करना, बच्चों को खिलाना, उनकी उपस्थिति दर्ज करना, उनकी ऊँचाई, वजन व अन्य माप लेना, और बच्चों को सिखाना और उनकी देखरेख करना आदि कार्य) के लिए उन्हें "वेतन" देने के बजाय मामूली राशि खैरात की तरह दे दी जाती है। उनके कौशलों की न तो कोई कद्र है और न ही इसके लिए उन्हें कोई उचित पारिश्रमिक ही मिलता है, न ही उनके लिए कोई प्रशिक्षण जरूरी माना जाता है, क्योंकि महिलाओं को तो "स्वाभाविक" रूप से बच्चों की देखभाल करना आना ही चाहिए(!); इस सबके साथ उन पर बच्चों से जुड़े कई तरह के कामों का बोझ भी होता है जिससे उनके रोजाना काम की सीमा बढ़ जाती है। वे एक मूक शोषित समूह हैं, जिन्हें किसी कुशल कामगार बनने के लिए उचित प्रशिक्षण, वेतन या काम की दशाओं से वंचित रखा जाता है। पर यदि वे ऐसी ही परिस्थितियों में काम करती रहती हैं तो इसके पीछे कारण है विकल्पों की कमी। राष्ट्र की प्राथमिकताओं में बच्चों का स्थान इतना नीचे है, कि वे जो इन बच्चों की खातिर मेहनत–मशक्कत करती हैं, उन्हें भी नहीं बख्शा जाता। क्या अब, अपमानजनक रूप से उन्हें उनकी सेवाओं की मान्यता के रूप में यदा–कदा सम्मानित करके नहीं, बल्कि बेहतर वेतन और कार्य की दशाओं के माध्यम से उनके कार्य की कद्र करके और अधिक सार्थक क्षमता निर्माण और तरक्की के अवसर देने जैसे अर्थपूर्ण तरीकों से उनकी गरिमा उन्हें वापस देने का समय नहीं आ गया है? यही काम अगर पुरुष कर रहे होते तो क्या काम की परिस्थितियाँ ऐसी ही होतीं? यहाँ फिर लिंग का शैतान सामने आ जाता है!

चित्र 1: अदृश्य बच्चे



मैं डॉ. जिगिशा शास्त्री और डॉ. रमा नारायणन की बेहद आभारी हूँ कि उन्होंने इस लेख में उद्धृत आँकड़ों के संग्रहण में मेरी मदद की। इन आँकड़ों के उपयोग के लिए पूरी तरह से मैं जिम्मेदार हूँ।

References:

1. Barker, DJP, Eriksson, JG, Forsan, T and Osmond, C (2002) Fetal origins of adult disease : study of effects and biological basis International Journal of Epidemiology Vol 31, Issue 6, pp 1235 – 1239.
2. Bhat, Vishnu and Adhisivam, B (2013) Trends and Outcome of Low Birth Weight Infants in India The Indian Journal of Paediatrics, Vol 80, Issue 1.
3. Central Statistical Organisation Time Use Survey 1998-99
4. Chaudhuri, S Otiv, M Chitale, H Pandit, A and Hoge, M (2004) Pune Low birth weight study - cognitive abilities and educational performance at 12 years Indian Paediatrics, February 14 (2),pp121 - 8.
5. International Labour Organisation (1996) Invisible Children
6. National Institute for Population Sciences, Mumbai, 2006, National Family Health Survey III 2005 2006 (Low Birth Weight)
7. National Institute for Population Sciences, Mumbai, 2006, National Family Health Survey III 2005 2006 (Exclusive Breastfeeding)
8. Registrar General Census of India – IMR and CMR : **www.censusindia.gov.in/vital_statistics/srs/Chap_4_-_2010.pdf**
9. Registrar General Census of India Sex Ratio **www.censusindia.gov.in/Census_And_You/gender_composition.aspx**
10. UNICEF (2006). Progress for Children- a Report Card on Nutrition



मीना स्वामीनाथन 1960 के दशक से एक शिक्षक, शिक्षक–प्रशिक्षक, प्रयोगकर्ता, नीति–निर्धारक और लेखक के रूप में प्रारम्भिक बाल शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत रही हैं। आई.सी.डी.एस. को शुरू करने वाली मीना ने कई वर्षों तक मोबाइल क्रेशेज, आई.सी.डी.एस. और अन्य कई समूहों के साथ काम किया है। डे–केयर के क्षेत्र में कई दक्षिण–पूर्वी एशियाई देशों में, जिनमें वियतनाम, कम्बोडिया और फिलीपीन्स प्रमुख हैं, उनका गहरा अनुभव रहा है। वे इण्डियन एसोसिएशन फॉर प्री–स्कूल एजुकेशन की सम्पादिका, सचिव और अध्यक्ष रही हैं। उन्होंने आई.ए.पी.ई. द्वारा आयोजित वार्षिक महासभाओं में प्रमुख भूमिका निभाई है। देशभर में कार्यक्रमों की कई समीक्षाओं में शिरकत की है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा में खेल की भूमिका पर उनका अध्ययन देश में अपनी तरह का पहला अध्ययन था जिससे दीर्घकालिक (लौंजीट्यूडिनल) अध्ययनों की राह प्रशस्त हुई है, जिसके द्वारा ही खेल और गुणवत्ता के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। एक सफल लेखिका के रूप में प्रारम्भिक बचपन पर तीन बड़ी शिक्षक–मार्गदर्शक पुस्तिकाओं के अलावा उन्होंने कई किताबें और किताबों में सम्मिलित अध्याय, बड़ी संख्या में शोधपत्र और लोकप्रिय लेख लिखे हैं। उनसे mimams@dataone.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : भरत त्रिपाठी

खण्ड ब
बच्चों के साथ काम





पूर्व-स्कूलों को समावेशी बनाना

एस. आनन्दलक्ष्मी

समावेश आजकल का बहुत प्रचलित शब्द है। यह लोकप्रिय है और इसका भाव अच्छा लगता है। लेकिन समावेशी शिक्षा को संचालित करने की विधि अधिकांश रूप में अज्ञात बनी हुई है, बहुत कुछ बीजगणित के अज्ञात कारक एक्स की तरह!

मैं यहाँ एक सफल प्रयोग का विवरण प्रस्तुत कर रही हूँ जो विभिन्न आयु वर्गों तथा योग्यता के स्तरों के समावेश को निरूपित करता है।

राजकुमारी अमृत कौर चाइल्ड स्टडी सेण्टर एण्ड नर्सरी स्कूल की स्थापना 1959 में हुई थी, और इसने दिल्ली के लेडी इर्विन कालेज के चाइल्ड डेवेलपमेंट (बाल विकास) विभाग की सजीव प्रयोगशाला की तरह काम किया है। इसका स्थान बदला है, पर इसके सिद्धान्त स्थायी बने रहे हैं। जाहिर है कि एक स्नातकोत्तर विभाग से सम्बद्ध होना इसकी गतिविधियों के लिए कई प्रकार से लाभकारी है। 1980 के आसपास, हमें छोटे बच्चों के लिए एक सुन्दर केन्द्र बनाने के लिए धनराशि प्राप्त हुई। हमारे साथ चर्चा के बाद वास्तुकार स्टीन, दोशी एवं भल्ला (जो दिल्ली के सबसे प्रशंसित वास्तुकारों में से हैं) इसका भवन बनाने के लिए राजी हो गए। हम भाग्यशाली थे कि हमें स्टीन की एक बिलकुल मौलिक डिजाइन मिली! उसमें घास से ढँका खुला आँगन, बड़े कमरे, बाहर खेलने के स्थान, एक फैला हुआ लान और एक स्वागत करता हुआ छोटा फाटक था।

दाखिला नीति : बदलते हुए दृष्टिकोणों का आईना

प्रारम्भिक वर्षों में, जब नर्सरी स्कूल एक छोटी सी इकाई थी, उन सभी को दाखिला दिया गया जिन्होंने आवेदन किया। समय बीतने के साथ, जब संख्याएँ बढ़ती गईं, तो पालकों तथा बच्चे के साथ अनौपचारिक मुलाकातें आयोजित की गईं और यह सुनिश्चित करने के लिए कि बच्चे को स्कूल से लाभ होगा, त्वरित आकलन किए गए। बाद में, सभी बच्चों के दाखिले से पहले उनसे कुछ प्रश्न पूछे जाते थे और दी गई सामग्री के साथ उनके खेल का अवलोकन किया जाता था। धीरे–धीरे, हमारे देखते ही देखते, ये प्रवेश–पूर्व मुलाकातें दाखिला चाहने वाले बच्चों के लिए परीक्षण सत्र बन गईं, जिनमें बच्चों तथा उनके पालकों को कुछ प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता था। इसके अदृश्य मानदण्ड दो मुख्य श्रेणियों के अन्तर्गत आते थे : बच्चे के काम करने के संज्ञानात्मक तथा सामाजिक स्तर और पालकों की उनके बच्चे की प्रगति में सहभागिता। उस समय, जो बच्चे अच्छे अंक प्राप्त करते थे और जो पालक सबसे अधिक उत्सुक प्रतीत होते थे, वे चुन लिए जाते थे। हर छोटे बच्चे को दाखिला नहीं दिया जा सकता था, इसलिए कुछ परिवारों को निराश होकर वापस जाना पड़ता था।

उस समय, मैंने हस्तक्षेप किया। स्टाफ की एक बैठक में नर्सरी स्कूल के शिक्षकों से पूछा कि हमें केवल सक्षम पालकों वाले तेज बच्चों को ही क्यों दाखिला देना चाहिए। हमारे स्तर की विशेषज्ञता तथा प्रतिबद्धता को देखते हुए, क्या हमें सभी श्रेणियों के बच्चों को शिक्षित करने में समर्थ नहीं होना चाहिए? अनेक बच्चे ऐसे होंगे जो एक अच्छे पूर्व–स्कूल में तो उन्नति कर लेंगे, लेकिन हमारे जैसी क्षमता का सहयोग मिलने के बिना आगे नहीं बढ़ पाएँगे। इस पर बहुत गर्मागर्म बहस हुई, लेकिन अन्ततः हम दाखिला नीति के बारे में एक सहमति पर पहुँच गए : कि हम स्कूल में पहले से मौजूद बच्चों के भाई–बहिनों को और स्कूल के शिक्षकों तथा कालेज के शिक्षकों के बच्चों या उनके बच्चों के बच्चों को पहले वरीयता देंगे। चूँकि स्कूल बाल विकास के स्नातकोत्तर विभाग से सम्बद्ध था और उसके विद्यार्थियों के लिए एक प्रयोगशाला की तरह भी काम करता था, इसलिए हमने गोद लिए गए बच्चों तथा जुड़वाँ बच्चों को प्राथमिकता देने का निर्णय लिया। बचे हुए स्थान सबके लिए खुले थे।

यह निर्णय ले चुकने के कारण कि कोई परीक्षण नहीं किया जाएगा, हमने सीटों के लिए पहले आओ पहले पाओ की नीति तय कर ली। आवेदन पत्र मिलना शुरू होने के दिन सुबह 5.00 बजे से इसके लिए नियत खिड़की के बाहर कतार लगना प्रारम्भ हो गई। जो लोग अपनी जगह किसी को भेज सकते थे, उन्हें स्वाभाविक रूप से "आगे स्थान" मिल गया। उस कतार में अनेक चपरासी, ड्राइवर तथा क्लर्क थे। कुछ पालकों ने अपनी चतुराई तथा आर्थिक संसाधनों की अपनी सामर्थ्य, दोनों को प्रदर्शित किया था!

इस प्रक्रिया में एक दिलचस्प बात हुई थी। बच्चे योग्यताओं तथा प्रतिभाओं की विस्तृत श्रेणी से आए थे। हमने पाया कि चार या पाँच बच्चे अक्षमता (उदाहरण के लिए, डाउन सिंड्रोम, बहुत कमजोर नजर, स्पास्टिक बाधा) से ग्रस्त थे। निश्चित रूप से, हमने उन्हें लिया और तत्काल उनके लिए एक विशेष सेक्शन निर्मित किया। हमारी जिस शिक्षिका ने उसकी जिम्मेदारी ली उसके पास प्रशिक्षण, अनुभव और अद्‌भुत स्नेहपूर्ण उत्साह था। उसके अगले वर्ष हमने दाखिले में मामूली या मध्यम दर्जे की अक्षमता से बाधित बच्चों को वरीयता दी और ऐसे पाँच और बच्चों को लिया। अब वह दस बच्चों की कक्षा हो गई।

हमने प्रत्येक सेक्शन को एक नदी का नाम दिया था : कावेरी, यमुना, नर्मदा तथा अन्य। विशेष ध्यान की आवश्यकता वाले बच्चों की कक्षा को "संगम" नाम दिया गया।

हमें अभी भी एक समस्या का सामना करना था। हमें पता चला कि कुछ बच्चे मीलों दूर से आते थे और कभी–कभी वे स्कूल के घण्टों में उनींदे रहते थे। हमें लगता था कि घर पहुँचने तक वे निश्चित ही एकदम निढाल हो चुकते होंगे। हमारी समझ में उचित यही था कि किसी भी बच्चे को स्कूल बस में आते या जाते समय 30 मिनट से अधिक समय नहीं बिताना चाहिए। और यदि उन्हें निजी वाहन से भी छोड़ा जाता है तो उसमें भी बहुत समय नहीं लगना चाहिए। इसलिए, अगले वर्ष की दाखिला नीति में, हमने स्कूल से 5 किमी. के घेरे में आने वाले नए बच्चों को ही लेने का फैसला किया। इसका पालकों की ओर से कुछ विरोध हुआ और हमें एक या दो नए दाखिलों में दो–एक किमी. की ढील देना पड़ी। यह तो हमें केवल बाद में ज्ञात हुआ कि कुछ पालकों ने अपने बच्चों को सिर्फ भर्ती करवाने के लिए "इस जादुई घेरे" में रहने वाले किन्हीं मित्रों या परिवार के लोगों का पता दे दिया था। वे हमेशा हमसे एक कदम आगे रहते थे।

कार्यक्रम : संगम, क्षमता संवर्धन केन्द्र तथा डे–केयर

संगम

संगम में 3 से 7 साल की उम्र के दस बच्चे थे। उनमें से एक या दो बच्चे संगीत या मिट्टी के काम जैसी गतिविधियों के मुख्य समूह में आ जाते थे। इसे सभी बच्चों के पूरी तरह से स्कूल और उसकी दिनचर्या से तालमेल बिठा लेने के बाद किया गया। कभी–कभी बड़े बच्चों के किसी नृत्य को देखने के लिए संगम की पूरी कक्षा दर्शकों की तरह आ जाती थी। दूसरे मौकों पर, वे बस पास के सब्जियों के बगीचे में अपनी किसी एक शिक्षक के साथ चले जाते थे। हालाँकि वे सभी हो सकता था कि पढ़ना या लिखना न सीख रहे हों, पर वे परिवेश से परिचित हो गए थे और उन्हें वहाँ अपनेपन का एहसास होता था। वह उनका स्कूल था। मेरी दृष्टि में, यह सममुच का समावेश था, जैसा कि किसी भी परिवार में होता है।

यह बात फैल गई कि हम विशेष जरूरतों वाले बच्चों को वरीयता दे रहे थे, लेकिन हमारा तो फीस लेने वाला स्कूल था। कभी–कभी निम्न मध्यम वर्ग का कोई परिवार अपने बच्चे के साथ आ जाता था। यदि हम बच्चे को लेने की स्थिति में होते थे तो हम उसे ले लेते थे और फिर समृद्ध पालकों में से किसी से पूछते थे कि क्या वे एक और बच्चे को सहारा दे सकते थे। हमें शायद ही कभी कोई इनकार करता था। और भी बहुत सी जानकारी दी जा सकती हैं, लेकिन मैं यहीं इस बात को समाप्त करूँगी।

क्षमता संवर्धन केन्द्र

हमने 2 किलोमीटर के दायरे में एक सर्वेक्षण किया और यह पता लगाया कि क्या इस क्षेत्र में किसी प्रकार की संवेदी या शारीरिक अक्षमता से ग्रस्त प्राथमिक स्कूल की उम्र वाले कोई ऐसे बच्चे हैं जो इसलिए स्कूल छोड़ गए या कभी स्कूल गए ही नहीं , क्योंकि उन्हें ऐसी कोई उपयुक्त संस्था नहीं मिली थी जो उन्हें स्वीकारती। ऐसे बच्चों के सेक्शन का भार वहन करने के लिए, हमने मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अन्तर्गत आने वाले "प्राथमिक शिक्षा में नवाचारी एवं प्रायोगिक कार्यक्रमों" के लिए उपलब्ध अनुदान के लिए आवेदन दिया। अच्छी बात यह कि हमें

लगभग आठ वर्षों तक इसके लिए धनराशि मिलती रही। हमने एक वैन खरीदी जिसकी सभी सीटों में विशेष सीटबैल्ट लगी हुई थीं, ताकि ऐसे प्रत्येक बच्चे को घर से लाया और वापस दरवाजे पर सुरक्षित छोड़ा जा सके। उनके लिए विविध प्रकार की गतिविधियों की योजना बनाई गई। एक लोकप्रिय गतिविधि कठपुतली–कला की थी जिसे प्रतिभावान गायकों तथा कारीगरों के एक स्वैच्छिक समूह "जन माध्यम" द्वारा संचालित किया जाता था। हमने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से भी, उनकी विस्तारण गतिविधियों के लिए योजना के तहत, कुछ धनराशि जुटा ली थी। क्षमता संवर्धन केन्द्र का उद्देश्य यह प्रदर्शित करना था कि मामूली तथा मध्यम श्रेणी की अक्षमताओं से बाधित बच्चों के मिले–जुले समूह के लिए स्कूली गतिविधियाँ किस प्रकार नियोजित की जा सकती थीं। हमारे काम को देखने के लिए बहुत लोग आते थे।

डे–केयर

हमने पाया कि हमारे पूर्व–स्कूल के बच्चों की कुछ माताएँ पूर्ण कालिक नौकरी करती थीं और वे आसानी से दोपहर 12 बजे के बाद अपने बच्चों को वापस नहीं ले जा सकती थीं। हमने उन्हें दोपहर के सत्र में बच्चों को हमारे पास ही छोड़ देने के लिए आमंत्रित किया। इसके लिए हमने कुछ अतिरिक्त शुल्क लेना तय किया। हमने इन बच्चों के बड़े भाई–बहिनों को भी, उनका नियमित स्कूल समाप्त होने के बाद, उनके ही साथ बने रहने की अनुमति भी दे दी। कभी–कभी, ऐसे पालक, जिनके छोटे बच्चे हमारे स्कूल में नहीं थे, भी अपने बड़े बच्चों को हमारी देखरेख में रखने के लिए हमसे कहते थे। इसलिए डे–केयर केन्द्र में बच्चों का मिला–जुला आयु समूह था। सभी बच्चों को दोपहर में गरम खाना मिलता था। फिर छोटे बच्चों को सुला दिया जाता था, और अन्य बच्चों के लिए कलाएँ, शिल्प, खेल तथा संगीत, नाटक और कठपुतली की गतिविधियाँ होती थीं। यह सेक्शन 5.00 बजे तक खुला रहता था। यह सेवा पालकों के बीच बहुत लोकप्रिय थी जिन्हें पता था कि उनके बच्चे सुरक्षित देखरेख में थे, उन्हें अच्छी संगत मिली हुई थी और वे पेशेवर देखभाल करने वालों के हवाले थे। मुझे लगता है कि यह अनेक स्कूलों के लिए एक नमूना है। ऐसा कार्यक्रम समुदाय के लिए एक अमूल्य सुविधा बन जाएगा।

राजकुमारी अमृत कौर बाल अध्ययन केन्द्र के बारे में ताजा जानकारी

– सुधा पार्थसारथी के द्वारा

स्वर्णजयन्ती वर्ष 2005 में, अक्षमता विकसित करने के सम्भावित जोखिम वाले शिशुओं के लिए (जन्म तथा उसके उपरान्त) आरम्भ में ही सहायता प्रदान करने के लिए सेतु (सिस्टमेटिक अर्ली ट्रेनिंग यूनिट – व्यवस्थित प्रारम्भिक प्रशिक्षण इकाई) का शुभारम्भ हुआ।

केन्द्र द्वारा प्रदान की जा रही विभिन्न सेवाओं में निम्नलिखित शामिल हैं :

शिशुओं की देखरेख तथा डे–केयर कार्यक्रम
(6 माह – 12 वर्ष)

किलकारी : नन्हे बच्चों का क्लब
(6 माह – 2 वर्ष)

प्ले सेण्टर (2 – 3 वर्ष)

नर्सरी स्कूल (3 – 5 वर्ष)

सेतु : सम्भावित जोखिम वाले शिशुओं के लिए प्रारम्भिक प्रयास इकाई (जन्म – 3 वर्ष)

विशेष जरूरतों वाले बच्चों के लिए शैक्षिक तथा उपचारात्मक कार्यक्रम (3 – 12 वर्ष)

वाणी तथा व्यावसायिक चिकित्सा
(स्पीच एण्ड ऑकुपेशनल थेरेपी)

साथी : परामर्श प्रकोष्ठ (काउन्सिलिंग सैल)

विशेष जरूरतों/अक्षमताओं वाले बच्चों और युवाओं का व्यक्तित्व–विकास एवं प्रशिक्षण

वर्तमान (2013–2014) में केन्द्र में 9 कक्षाओं में बँटे हुए लगभग150 विद्यार्थी हैं। सभी कक्षाओं को नदियों के नाम दिए गए हैं : क्षिप्रा, नर्मदा, कावेरी, सरयू तथा संगम। हर कक्षा मानो एक नदी है जिसमें से बिना दबाव या अवरोध के जल प्रवाहित होता है। यही वह विचारधारा है जो बच्चों को पढ़ाने और उनकी देखरेख करने वाले केन्द्र के दृष्टिकोण का आधार है।

केन्द्र का समावेशी कार्यक्रम, "संगम", सभी जलप्रवाहों का मिलकर एक ही धारा निर्मित करना निरूपित करता है। हमारे कार्यक्रम भी विभिन्न योग्यताओं तथा विभिन्न पृष्ठभूमियों के बच्चों का संगम हैं जो साथ–साथ सीखते और फूलों की तरह विकसित होते हैं। प्रारम्भिक प्रयास

केन्द्र, सेतु, घर तथा स्कूल में सीखने के फासले को पुल की तरह जोड़ देता है।

जहाँ दो कक्षाएँ केवल विशेष जरूरतों वाले बच्चों के लिए समर्पित हैं, इन कक्षाओं के कमरे सामान्य कक्षाओं से लगे हुए हैं। नर्सरी स्कूल की दोनों सेक्शन समावेशी हैं। प्रार्थना का समय, खेल का समय, पाठ्येतर गतिविधियाँ, उत्सव मनाना, भ्रमण दौरे, इनमें सभी बच्चे मिलकर शामिल होते हैं। अतः यह वातावरण अपने साथियों का अवलोकन तथा अनुकरण करने के द्वारा सीखने में सहायता करता है, साथ ही उनमें पारस्परिक संवेदनशीलता को बेहतर बनाता है। हर बच्चे पर अलग–अलग ध्यान देने वाला शैक्षिक कार्यक्रम उन पहलुओं को समाहित करता है जिनमें अतिरिक्त तथा विशेष सहायता की आवश्यकता होती है।

एकीकरण तथा समावेश समुदाय में इन बच्चों की आवश्यकताओं और अधिकारों के प्रति संवेदनाएँ निर्मित करने में मदद करता है। यह ऐसे बच्चों के अपनी पूरी अन्तर्निहित क्षमता को हासिल करने और समुदाय के उत्पादक सदस्य बनने के लिए उनकी सहायता करने में खुद समुदाय को उसके कर्तव्य के प्रति जागरूक भी बनाता है। यहाँ इसका उल्लेख करना जरूरी है कि केवल बच्चे ही नहीं, बल्कि उनके पालक, टैक्सी चालक, कालेज के विद्यार्थी तथा स्टाफ के सदस्य भी सभी बच्चों के सम्पर्क में आते हैं। हमें याद आती है केन्द्र की एक पूर्व विद्यार्थी सारा सिंह के पिता श्री प्रकाश सिंह की यह टिप्पणी – "विशेष जरूरतों वाले बच्चों और उनकी चुनौतियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में, मैं व्यक्तिगत रूप से प्रभावित हुआ हूँ।" एक अन्य पूर्व विद्यार्थी शोहम खान की माँ सबीहा खान याद करती हैं कि कैसे पहले वे विभिन्न शारीरिक तथा मानसिक चुनौतियों से ग्रस्त बच्चों को ऐसे इकट्ठे समूह के रूप में देखती थीं जो कभी कुछ नहीं कर सकते। जब उनका बेटा नर्सरी सेक्शन में पढ़ता था, तो उनके अकसर केन्द्र आने और अन्य पालकों के सम्पर्क में आने से उन्हें विशेष बच्चों की भिन्न जरूरतों का एहसास हुआ और उनके प्रति उनका सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हुआ।

सेतु कार्यक्रम के अन्तर्गत, (जन्म उपरान्त) सम्भावित जोखिम वाले बच्चों का विशेषज्ञों के एक दल द्वारा आकलन किया जाता है और एक उपयुक्त कार्यक्रम निर्मित किया जाता है। बच्चे की तैयारी तथा आवश्यकता पर निर्भर करते हुए, उपचार का प्रयास हर बच्चे के लिए अलग–अलग सत्रों, सामूहिक सत्रों या समावेशी सत्रों के रूप में हो सकता है। सत्रों के दौरान परामर्श द्वारा पालकों, देखरेख करने वालों, परिवार के सदस्यों, साथियों तथा भाई–बहिनों को विशेष जरूरतों वाले बच्चे को बड़ा करने में सामने आने वाली चुनौतियों को पार करने के लिए सशक्त बनाया जाता है। साथ ही, प्रदान किए जा रहे कार्यक्रम का घर पर पालन करने के लिए पालकों को प्रोत्साहित किया जाता है ताकि बच्चे के साथ गुजरने वाले अपने समय का वे सार्थक ढंग से इस्तेमाल करें।

व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम के हिस्से की तरह, विशेष जरूरतों वाले युवा लोगों को हमारे विशेष शिक्षाविद द्वारा प्रशिक्षण दिया जा रहा है। ऐसे प्रशिक्षित व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त करने में सहायता भी प्रदान की जा रही है।

वित्तीय सहायता की जरूरत वाले बच्चों के लिए एक प्रायोजन कार्यक्रम द्वारा, समाज के कमजोर वर्गों के उन बच्चों का समावेश किया जा रहा है जिनकी गुणवत्तापूर्ण सेवाओं तक पहुँच नहीं है।

बच्चों से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान के लिए पालकों की कार्यशालाएँ भी समावेशी तरीके से संचालित की जाती हैं, जिनमें सभी पालक मिलते–जुड़ते हैं और बच्चों की देखभाल करने के अनुभवों और चुनौतियों को आपस में साझा करते हैं।









एस. आनन्द लक्ष्मी ने मेडिसन स्थित विश्वविद्यालय ऑफ विसकोंसिन से मानव विकास में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने चेन्नई के एक नवाचारी स्कूल, विद्या मन्दिर, के प्रारम्भिक वर्षों की जिम्मेदारी वहन की। बाद में वे लेडी इरविन कालेज में पढ़ाने लगीं और उन्होंने वहाँ बाल विकास का स्नातकोत्तर विभाग प्रारम्भ किया और उस समय तक उसकी प्रमुख रहीं जब उन्होंने कालेज के डायरेक्टर का पद–भार ग्रहण किया। अवकाश प्राप्त करने के बाद से, वे सेवा (एस.ई.डब्ल्यू.ए.) अहमदाबाद, एस.डब्ल्यू.आर.सी. (बेयरफुट कालेज) तिलोनिया तथा वोलोण्टेरिएट, पाण्डिचेरी और बाला मन्दिर, चेन्नई जैसे स्वैच्छिक कार्यक्रमों में सक्रिय रही हैं। संज्ञानात्मक विकास तथा सामाजीकरण, शोध पद्धतियाँ तथा भारतीय संस्कृति के पहलू उनके प्रकाशित लेखन के विषय हैं। उनसे anandalakshmy@vsnl.net पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : सत्येन्द्र त्रिपाठी



विशेष जरूरतें : प्रारम्भिक बाल्यावस्था में पहचान तथा सुधारात्मक प्रयास

अनुराधा नायडू

क्या आपको उस दिन की याद है जब आपने पहला कदम रखा था? सम्भावना यही है कि आपको याद नहीं होगा। प्रारम्भिक बचपन की एक धुंधली याद भर शेष रहती है : हमारी सबसे प्रारम्भिक स्मृतियाँ लगभग तीन साल की उम्र तक ही पीछे जाती हैं। जब आप इस बारे में सोचते हैं, तो प्रारम्भिक वर्षों में बढ़ना और विकास एक चमत्कार लगता है। जीवन के पहले तीन वर्षों में, मस्तिष्क का 90 प्रतिशत विकास पूरा हो जाता है।[1] छह साल की उम्र तक, हम चलना, बात करना, अपना पोषण करना, साथियों के साथ खेलना, जिज्ञासा प्रकट करना तथा भावनाओं को व्यक्त करना सीख चुके होते हैं।

प्रकृति में हर चीज एक संरचना के रूप में क्रमिक ढंग से प्रकट होने के लिए नियोजित है। उदाहरण के लिए, शिशु अपने शरीर पर एक क्रम में नियंत्रण हासिल करते हैं – गर्दन से नितम्ब तक और केन्द्र से बाहरी छोरों तक। जन्म के समय, शिशु के मस्तिष्क में 100 अरब न्यूरॉस तक होते हैं।[2] जीवन के पहले कुछ दिनों में प्रति न्यूरॉन 2,500 संवेदी सूत्र कड़ियाँ (सिनाप्टिक कनेक्शन) होती हैं।[3] तीन वर्ष की आयु तक ये छह गुना बढ़ जाती हैं।

जहाँ ज्याँ पियाज़े तथा लेव वायगॉट्स्की जैसे पथ प्रवर्तक विकासवादी मनोवैज्ञानिकों ने बाल विकास के सिद्धान्त प्रतिपादित किए, वहीं वर्तमान शोध आज उनके दावों की वैज्ञानिक आँकड़ों और प्रायोगिक जानकारी के द्वारा पुष्टि कर सकता है। क्या आप जानते हैं कि नवजात शिशु प्रसन्न तथा उदास चेहरों को पहचान सकते हैं? या कि, जन्म के समय, बच्चे 8–10 इंच की दूरी से चीजों तथा मनुष्यों के चेहरों को देख सकते हैं? छह साल की उम्र तक पहुँचने से पहले एक बच्चे में सीखने की विशाल सम्भावित क्षमता होती है।

प्रारम्भिक सुधारात्मक प्रयास की मेरे जैसी पक्षधर के लिए, तंत्रिका–सम्बन्धी विकास के ये शुरुआती वर्ष अति रोचक होने के साथ ही विनम्र बनाने वाले भी हैं। जिन बच्चों की विकास की संरचनाएँ अव्यवस्थित, बाधित या विलम्बित हो गई हैं, उनको सहारा देने के लिए उनके परिवार के साथ सक्रिय भागीदार बनने का यही समय होता है। एक व्यापक अर्थ में, हममें से हरेक एक बच्चे के जीवन में प्रारम्भिक सुधारात्मक हस्तक्षेप करने वाला होता है। इसके लिए केवल अच्छे अवलोकन कौशलों तथा विकासात्मक लक्ष्यों और पड़ावों की गहरी समझ की जरूरत होती है।

जन्म तथा प्रथम वर्ष

अभी हाल ही तक मैं हांगकांग में वहाँ की सरकारी स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं में भर्ती तीन साल तक के बच्चों के साथ सघन रूप से कार्य कर रही थी। भर्ती होने वाले बच्चों की प्रकृतियाँ हमें यह दर्शाती थीं कि प्रारम्भिक बाल्यावस्था के वर्षों में विकासात्मक अक्षमताओं को जल्दी पहचान लेने के तीन बड़े अवसर आते हैं।

वहाँ आने वाले सबसे छोटे बच्चे केवल कुछ दिन के होते हैं। वहाँ मानसिक आघात (ट्रॉमा) या आनुवांशिक विकार के कारण होने वाली गम्भीर अक्षमताओं को एकदम जन्म होते ही (या जन्म के पहले) अस्पताल में ही पहचाना जा सकता है। ऐसी ही एक बच्ची को जब पहली बार देखा तब वह केवल 18 दिन की थी। वह प्राडर–विल सिण्ड्रोम (पी.

[1]Engaging Families in the Early Childhood Development Story, Page 7, Para5 line9
http://www.mceecdya.edu.au/verve/_resources/ECD_Story-Neuroscience_and_early_childhood_dev.pdf
[2]Children and Brain Development: What We Know About How Children Learn , Bulletin #4356, Cooperative Extension Publications, The University of Maine , para 2 line 1. **http://umaine.edu/publications/4356e/**
[3]Children and Brain Development: What We Know About How Children Learn , Bulletin #4356, Cooperative Extension Publications, The University of Maine , para 3 line 2. **http://umaine.edu/publications/4356e/**

डब्ल्यू.एस.)[4] नामक एक विरले विकार से ग्रस्त थी। विकार की पहचान सरकारी अस्पताल में जन्म के समय ही हो गई थी। हर 12,000–15,000 बच्चों में पी.डब्ल्यू.एस. का केवल एक मामला होता है।

प्रकृति हमारे सामने हमेशा ऐसी चुनौतियाँ पेश करती रहती है जो हमें सामान्य स्थिति तथा विकास की अपनी धारणाओं पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर करती हैं। आनुवांशिक विकारों से ग्रस्त बच्चों की जरूरतों का समाधान करने के लिए सक्षम बनना ऐसी ही एक चुनौती है। आज प्राडर–विल सिण्ड्रोम, क्री–डु–शाट, रूबिन्सटीन–तायबी सिण्ड्रोम, मिटोकोण्ड्रियल रोगों (जिनकी पहचान जन्म के समय ही हो जाती है) जैसी विरली आनुवांशिक बीमारियों से ग्रस्त बच्चों के निदान के लिए जानकारी का भण्डार तथा उनके माता–पिताओं की सहायता के संजाल (सपोर्ट नैटवर्क) उपलब्ध हैं। प्रारम्भिक वर्षों में ऐसे बच्चों के माता–पिता को दुःख, निराशा और क्रोध का सामना करने के संघर्ष से गुजरना पड़ता है। जब ऐसी माएँ घर पर अपने को प्रोत्साहित करने वाले कार्यक्रमों में नहीं लगा पातीं तो वे कभी–कभी अवसाद में डूब जाती हैं। फिर भी, मैंने एक ऐसी माँ को जाना और उसके साथ काम किया है जिसने डाउन सिण्ड्रोम वाले बच्चे को चुना और उसे पूरे दिल से अपनाया।

मैंने हांगकांग और भारत में, दोनों जगह देखा है, ऐसे बच्चों के जीवन के प्रथम वर्ष में, सुधार के चिकित्सकीय प्रयासों (शल्य चिकित्साएँ तथा पोषण क्लीनिकों में जाना) पर ध्यान देना बेहद जरूरी होता है। तथापि, सुधारात्मक प्रारम्भिक प्रयास की भी गुंजाइश रहती है। इस अवस्था में इन्द्रियों को उत्प्रेरित करने और उनका निरीक्षण करते रहने तथा शारीरिक हरकत और सम्प्रेषण को प्रोत्साहित करने के लिए निम्न गतिविधियों की अनुशंसा की जाती है:

- विभिन्न शारीरिक स्थितियों में (पेट के बल लेटे हुए, बैठे हुए, खड़े हुए, झुकते हुए) खेलने को प्रोत्साहित करना।
- विकास की दृष्टि से उपयुक्त खिलौनों (झुनझुने, गेंदें, ब्लाक, घोंसले बनाने के कप, खूँटी और छल्ले तथा धक्का देकर चलने वाली गाड़ियाँ) का उपयोग करना।
- ऐसे खेल खेलना जो इन्द्रियों को उत्प्रेरित करें, जैसे वातावरण की ध्वनियों को सुनना, चीजों को खोजना, ध्वनियों की नकल करना, क्रियाओं की नकल करना, उदाहरण के लिए, ताली बजाना, हाथ हिलाना, थपथपाना आदि।
- चीजों की ओर इशारा करने, टिप्पणी करने, चीजों को नाम देने तथा पढ़ने, कहानी सुनाने और गाने में अपनी पसन्द का चुनाव करने को प्रोत्साहित करना।

दूसरा वर्ष : बात करने का समय

प्रारम्भिक सुधारात्मक प्रयास के लिए दूसरा अवसर जीवन के दूसरे वर्ष में आता है। एक बच्चे की शब्दावली पहले से दूसरे जन्मदिन तक चार गुना बढ़ जाती है।[5] यहाँ उस स्थिति का एक उपयुक्त उदाहरण है जब इस पड़ाव को हासिल करने में देर हो जाती है। जब जोशुआ ढाई साल का था तब उसके शिशु–चिकित्सक ने निदान किया कि उसकी बोली तथा भाषा का विकास देर से हो रहा है। शुरू से ही, जोशुआ को अपनी कारों के साथ खेलना ज्यादा पसन्द था। उसकी मुस्कुराहट बहुत सुन्दर थी, लेकिन उसे आपकी ओर देखने तथा बात करने में कठिनाई होती थी। ज्यादा करके वह लोगों के ध्यान से बचे रहना पसन्द करता था।

प्रारम्भिक सुधारात्मक प्रयास, एक अर्थ में प्रकृति (जो हमें निरन्तर कुछ करने के लिए आमंत्रित करती रहती है) के साथ बातचीत होती है। जोशुआ जैसे बच्चों के मामले में, सीखने की जरूरतें जटिल और एक न पहचाने गए विकासात्मक समन्वयन विकार से जुड़ी हुई होती हैं। इस समय, उसे उसकी उत्तेजना को सम्प्रेषित करने तथा साझा करने की जरूरत होती है और हमारे लिए उसका अनुसरण करना जरूरी होता है। उसकी देखभाल करने वाले जैसे लोगों को उसकी बोली तथा भाषा के विकास में मदद करने के तरीके नहीं मालूम होते। दुर्भाग्य से, शिशु संकेतों और चित्र संवाद जैसी सरल सम्प्रेषण रणनीतियों का उपयोग करने के प्रति इस डर से प्रतिरोध होता है कि वैसा करने से बोलने का विकास रुक जाएगा। लेकिन इस डर का कोई आधार नहीं है। ऐसे अवसर जब जोशुआ जैसे

[4] Prader- Willi Syndrome: a chromosomal disorder with a prevalence of: 1:12,000- 15,000 (both sexes, all races)
The major characteristics are low muscle tone, cognitive impairment, difficult behaviours, and an obsession for eating that leads to morbid obesity.
http://www.pwsausa.org/syndrome/

[5] Baby's brain begins now- Conception to age three **http://www.urbanchildinstitute.org/why-0-3/baby-and-brain**

बच्चे खाने की चीजों, खिलौनों, किताबों का चुनाव कर सकते हैं और 'हाँ/नहीं' कह सकते हैं, वास्तव में हताशा के स्तरों को कम करते हैं और भागीदारी को प्रोत्साहित करते हैं। स्वाभाविक रूप से, बच्चे ज्यादा सुरक्षित और आश्वस्त महसूस करने लगते हैं – जो खेल, सम्प्रेषण और भाषा विकास के लिए पूर्व शर्त होती है।

मैंने अनेक वर्षों तक माकाटन संकेत प्रणाली[6] पर आधारित शिशु संकेतों का उपयोग किया। यहाँ उदाहरण के रूप में तीन सफल कहानियाँ दी जा रही हैं :

- 2 वर्ष की आयु पार कर लेने के बाद, पीटर (डाउन सिण्ड्रोम से ग्रस्त) अपने पसन्दीदा संगीत, किताबों और खिलौनों के लिए संकेत कर सकता था।
- 24 माह की होने पर शिया (पी.डब्ल्यू.एस. से ग्रस्त), जो अभी खड़ी भी नहीं हो सकती, लेकिन इशारे कर सकती है। जैसे–जैसे उसका परिवार और उसके शिक्षक उसकी बात समझते जा रहे हैं, आँसू तथा हताशा धीरे–धीरे विदा होते जा रहे हैं।
- ऐन्थिया के निदान में उसके बोलने तथा भाषा के विकास में देरी होना पाया गया, लेकिन 3 साल की उम्र में उसका बोलना आरम्भ हो गया है, और दिलचस्प बात यह है कि उसका उंगलियों से सम्प्रेषण गायब होता जा रहा है।

बोलने तथा भाषा के विकास को घर पर तथा खेल समूहों में उत्प्रेरित करने के लिए निम्न अनुशंसाएँ की जाती हैं :

- अपने बच्चे का अनुसरण करें, जो वह कह रहा है उसे, वाक्यों को आगे बढ़ाते हुए और नकल करने को प्रोत्साहित करते हुए, दोहराएँ। उसके मनपसन्द खेलों, किताबों, गीतों का इस्तेमाल करें और दैनिक जीवन में उसे ढेर सारे विकल्प दें।
- हर सप्ताह अभ्यास करने के लिए कुछ शिशु संकेत चुनें। यह सुनिश्चित करने के लिए कि सम्प्रेषण का दायरा फैलता जाए, माता–पिताओं तथा देखभाल करने वालों को प्रशिक्षित करें। आप जब बात भी करें, पढ़ें और गाएँ, तब भी हमेशा संकेत सम्प्रेषण का इस्तेमाल करें।
- प्रतिदिन पढ़ने के लिए तीन किताबें चुनें और उन्हीं किताबों को 2–3 सप्ताह तक दोहराएँ। कहानी से मेल खाते हुए खिलौने तथा चित्रों वाले कार्डों का उपयोग करें। किताबें न होने पर, परिचित कहानियों तथा चित्रों वाले कार्डों का उपयोग करें।
- प्रतिदिन पाँच गीत गाएँ। गाते समय कुछ शब्द छोड़ दें और अपने बच्चे को उन पंक्तियों को समाप्त करने के लिए प्रोत्साहित करें।
- बारी–बारी से खेले जाने वाले खेल खेलें : चित्रों को अलग करना और आपस में मिलान करना, साथ मिलकर चित्र बनाना, गेंद के खेल आदि।

किण्डरगार्टन : 3–6 वर्ष

प्रारम्भिक सुधारात्मक प्रयास के लिए तीसरा बड़ा अवसर किण्डरगार्टन में प्रवेश के समय आता है। किण्डरगार्टन के शिक्षक ऐसे बच्चों की पहचान करने और उन्हें सहारा देने में मदद कर सकते हैं जो बेढंगेपन, आत्म–नियंत्रण, सामाजिक व्यग्रता या उत्साह की कमी की समस्याओं के साथ संघर्ष करते हैं। खेल तथा सामाजिक सम्प्रेषण, विकास के ऐसे क्षेत्र हैं जिन पर भविष्य में स्कूल में समावेशन तथा मित्रों का समूह बनाना सुनिश्चित करने के लिए विशेष ध्यान दिए जाने की जरूरत होती है। ड्रेक की कहानी इसकी एक मिसाल पेश करती है। अपनी किण्डरगार्टन कक्षा में ड्रेक चुपचाप बैठा रहता है। आमतौर पर वह अपने–आप खेलता रहता है, जबकि उसके साथी जोड़ों में खेलना आरम्भ कर रहे होते हैं। जब वह व्यथित होता है, तो बह बहुत जोर से फूट पड़ता है और अपने–आप को शान्त करने के लिए संघर्ष करता है। हालाँकि ड्रेक प्रवाहपूर्वक पढ़ने वाला बच्चा है, लेकिन वह अपनी बात को सरल वाक्यों में व्यक्त नहीं कर पाता।

प्रारम्भिक सुधार–प्रयास करने वाले को, यह सुनिश्चित करने के लिए कि बच्चे के विकास के सभी क्षेत्रों पर ध्यान दिया जा रहा है, एक सन्तुलन बनाते हुए आगे बढ़ना होता है। मेरे अनुभव से, बच्चे के किण्डरगार्टन शिक्षकों के साथ घनिष्ठ रूप से काम करने से खेल तथा सीखने का सहारा देने वाला वातावरण निर्मित करने में मदद मिलती है।

[6]Makaton is a language programme using signs and symbols to help people to communicate. It is designed to support spoken language and the signs and symbols are used with speech, in spoken word order. **http://www.makaton.org/aboutMakaton/**

किण्डरगार्टन शिक्षकों के लिए एक समावेशी कक्षा निर्मित करने के लिए निम्न रणनीतियों की अनुशंसा की जाती है :

- यदि बच्चे का व्यवहार भिन्न प्रतीत होता है तो उसे नाम देने से बचना। माता–पिता को अपने शिशु–चिकित्सक से परामर्श लेने की सलाह देना। अपने विद्यार्थियों की पसन्दों तथा नापसन्दों का आकलन करना। बच्चों की ऐन्द्रिक प्रवृत्तियाँ अलग–अलग प्रकार की होती हैं। कक्षा में उपलब्ध सामग्री की एक सूची बनाना और बच्चों की असामान्य प्रतिक्रियाओं को दर्ज करना।
- धैर्य रखना, बच्चों को आश्वस्त करना और प्रतिक्रिया करने के लिए उन्हें समय देना। कुछ बच्चों को जानकारी को समाहित करने के लिए ज्यादा समय की जरूरत होती है।
- दृश्य सहायता सामग्री का उपयोग करते हुए एक समावेशी कक्षा निर्मित करना। जैसे ठीक से नजर आने वाली समय सारणी, सामूहिक गतिविधि करवाते समय अच्छी तरह सुनने और देखने को प्रोत्साहित करने के वाले संकेत कार्ड तथा दृश्यात्मक क्रम कार्ड जो बच्चों को चरणबद्ध तरीके से कामों को करना बतलाते हैं।
- बोलने में देरी से ग्रस्त बच्चों के लिए अपनी सम्प्रेषण रणनीति विकसित करना। आप शिशु संकेतों तथा चित्र सम्प्रेषण और विकल्प बोर्डों का इस्तेमाल कर सकते हैं। हालिया दौर में, एप्स के अपने खजाने से लैस डिजिटल टैबलेट में सम्प्रेषण को सहारा देने वाले कुछ शानदार विकल्प उपलब्ध हो गए हैं। माता–पिताओं तथा उपचारकर्ताओं के साथ इन पर मिलकर काम करना।
- सुरक्षा और भरोसे के लिए अपनी फोटो वाला एक सहायता कार्ड बोर्ड पर लगाना, और बच्चों के लिए चार अनुभूतियों (प्रसन्न, उदास, क्रोधित तथा थका हुआ) वाला एक चार्ट रखना ताकि वे आपको बता सकें कि उन्हें कैसा लगता है।
- जो बच्चे शारीरिक हलचलों के लिए उत्साहित रहते हैं, उनका खेल के मैदान में समय बढ़ाना और ऐसी गतिविधियों को शामिल करना जैसे जिम की गेंद पर उछलना और संतुलन डण्डे पर चलना।
- चीजों की हेरा–फेरी करने वाले पुट्ठे के बक्से चन्चल उंगलियों वाले बच्चों को शान्त करने में मदद करते हैं। रबड़ की संख्याएँ और अक्षर, आकृतियाँ और सुरक्षित आकार के विशेष सतहों वाले खिलौने, और इसी तरह बुलबुले, खेलने की गूंथे हुए आटे की लोई और चपेटने के मुलायम खिलौने भी अशान्त बच्चों को शान्त कर सकते हैं और राहत दे सकते हैं।
- भावनात्मक रूप से संवेदनशील बच्चों को संगीत से सुख मिलता है। एक संवेदनशील शिक्षक एक माँ से उसके बच्चे की मनपसन्द सीडी छोड़ जाने के लिए कहेगा।
- कक्षा के ऐसे साथियों की पहचान करना जो खेलने के समय में भूमिकाओं वाले खेल (मोड–प्ले) खेल सकते हैं। इनमें कैसे शामिल होकर खेल सकते हैं, इसके बारे में बात करना तथा छोटे–छोटे समूहों में अभ्यास के लिए बारी–बारी से खेले जाने वाले सरल खेल आयोजित करना।

निष्कर्ष

जीवन के पहले तीन वर्षों में विकास की गति और उसका विस्तार आश्चर्यजनक होता है। यह जैविक अवस्था विशेष जरूरतों वाले बच्चों को भरपूर परिवेशगत उत्प्रेरण प्रदान करने के अवसर देती है। हम जो कुछ भी प्रारम्भिक वर्षों में करते हैं वह बच्चे के तंत्रिका सम्बन्धी विकास में योगदान देता है और परिवार को उसकी जरूरतों का समाधान करने के लिए तैयार करता है। इसमें निरन्तरता बनाए रखने के लिए दृढ़ संकल्प की आवश्यकता होती है। आनुवांशिक विकारों से ग्रस्त या जन्म के समय मानसिक आघात लगे बच्चों को अस्पतालों में ही पहचाना जा सकता है। विकास के विभिन्न पड़ाव आने के साथ अन्य प्रकार की विशेष जरूरतें प्रकट हो सकती हैं। दो साल की उम्र में भाषा की शब्दावली का विस्फोट होता है जिसका निश्चित रूप से लाभ उठाया जाना चाहिए । शिशु संकेतों को सीखने तथा चित्र सम्प्रेषण के साथ–साथ गेय तुकों, गीतों और कहानियों का उपयोग करने से बोलने और भाषा के विकास को सहारा मिलता है, जो इस आम धारणा के विपरीत है कि वैकल्पिक सम्प्रेषण से बोलना बाधित होता है। माता–पिताओं तथा पेशेवर लोगों के साथ मिलकर नियमित रूप से काम करके किण्डरगार्टन शिक्षक प्रारम्भिक सुधार–प्रयास में सहयोग कर सकते हैं। जैसा मैने अपने अनुभव से सीखा है, किसी बड़े महानगर में जहाँ

लोग बस मतलब का सम्बन्ध रखते हैं, प्रारम्भिक सुधार–प्रयास दल अकसर एक परिवार जैसा बन जाता है। इस तरह से मित्रता और आशा का एक दायरा उभरता है और आगे बढ़ता है।

उदाहरणस्वरूप उल्लेखित सभी मामले मेरे पेशेवर कार्य से लिए गए हैं, पर उनमें आए बच्चों के नाम उनकी निजता की रक्षा करने की दृष्टि से बदल दिए गए हैं।









अनुराधा नायडू हाल ही तक हांगकांग में 0–6 वर्ष के आयु समूह के विशेष जरूरत वाले बच्चों के साथ एक प्रारम्भिक सुधार–प्रयासकर्ता के रूप में काम करती थीं। वहाँ वे गैर–चीनी भाषी आबादी के लिए हांगकांग सरकार से वित्तीय सहायता पाने वाले एक कार्यक्रम के अन्तर्गत काम करती थीं। उन्होंने 20 वर्ष पहले विद्या सागर, चेन्नई से विशेष शिक्षक का प्रशिक्षण प्राप्त किया और वहाँ के अन्तर्विषयी दृष्टिकोण से परिचित हुईं। वे निरन्तर उपचार, शिक्षा तथा वैकल्पिक सम्प्रेषण को मिलाकर अपने विद्यार्थियों के लिए सीखने की एक सम्पूर्ण प्रक्रिया निर्मित करने का प्रयास करती रहती हैं। उनसे anuradha.naidu@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद : भरत त्रिपाठी



बाल्यावस्था शिक्षा में आकलन

रेखा शर्मा सेन और श्रुति भार्गव



भूमिका

आकलन शिक्षा प्रक्रिया का एक अभिन्न हिस्सा है। हममें से अधिकांश लोगों के मन में 'आकलन' शब्द से जो छवियाँ बनती हैं, वे परीक्षा कक्ष, अंकों और रिपोर्ट कार्ड, तथा बड़ों के चेहरों पर उभरने वाले असंतोष के भाव की होती हैं, क्योंकि हमारे अंक अकसर उनकी अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतरते थे। भय और असुरक्षा दो ऐसे भाव हैं जो 'आकलन' नाम के शब्द के साथ सर्वाधिक जुड़े रहते हैं। आकलन की यह तस्वीर शिक्षा के प्रति एक उत्पादोन्मुख पद्धति का नतीजा है जहाँ शिक्षा को बहुत सारे विद्यार्थियों को कुछ स्पष्ट श्रेणियों में विभाजित कर दिया जाता है – कुशाग्र, औसत, मंदबुद्धि या फिर बुद्धिमान, औसत, असफल। ये ठप्पे, जो विद्यार्थियों की यात्रा में बहुत जल्दी उन्हें दे दिए जाते हैं, उसके साथ उसकी बाकी पूरी जिन्दगी चिपके रहते हैं, और शिक्षा व्यवस्था से बाहर निकल आने के बाद भी उसके कार्य करने के ढंग को प्रभावित करते रहते हैं। सशक्तीकरण की प्रक्रिया बनने के बजाय शिक्षा विद्यार्थी से उसका आत्मविश्वास और आत्म–सम्मान भी छीन लेती है। और यह प्रक्रिया पूर्व–स्कूल के एकदम बाल्यावस्था से शुरू हो जाती है।

स्कूल के वर्षों को बच्चों के लिए सार्थक और आनन्ददायी बनाने के लिए जो कई चीजें करना जरूरी हैं उनमें से एक है आकलन की अवधारणा पर पुनर्विचार करना – इस प्रक्रिया में आकलन के उद्देश्य को फिर से परिभाषित करना और आकलन के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले तरीकों पर पुनर्विचार करना शामिल होगा।

आकलन का उद्देश्य

यदि आकलन की अवधारणा को संकुचित रूप से पेश किया जाए, तो आकलन यह पता लगाने का एक माध्यम है कि बच्चे ने क्या सीखा है और समय के एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक उसने कितनी प्रगति की है। हालाँकि किसी बच्चे की प्रगति का यह रिकार्ड आकलन का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है, पर यह उसका एकमात्र उद्देश्य नहीं है।

आकलन का उतना ही महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है पाठ्यक्रम को पढ़ाने में शिक्षक की प्रभावोत्पादकता को आँकना और यह देखना कि उसके द्वारा पढ़ाने के लिए जो तरीके इस्तेमाल किए गए हैं वे उपयुक्त हैं या नहीं। कक्षा में अध्ययन–अध्यापन की प्रक्रियाओं को बेहतर बनाने के तरीकों में से एक यह पता लगाना है कि बच्चों से जो सीखने की अपेक्षा की गई थी उसे उन्होंने कितने अच्छे से सीखा है। यह अवधारणात्मक सोच सीखने के दायित्व को सिर्फ बच्चे पर डालने के बजाय बच्चे और शिक्षक, दोनों पर डालती है। न सिर्फ बच्चे को सीखना चाहिए बल्कि शिक्षक को इस ढंग से पढ़ाना चाहिए कि बच्चा सीख सके। यदि आकलन से यह संकेत मिलता है कि बच्चे ने उतने अच्छे से नहीं सीखा है जितने अच्छे से उसे सीखना चाहिए था, तो इसका निहितार्थ यह हुआ कि इसके कारणों को बच्चे के भीतर तलाशने के जितना ही, अगर ज्यादा नहीं तो, जरूरी है शिक्षक का अपने पढ़ाने के ढंग को लेकर आत्मचिन्तन करना और अध्ययन–अध्यापन के तरीकों को ज्यादा उपयुक्त बनाने की योजना बनाना।

और जब आकलन बच्चे की प्रगति निर्धारित करने के उद्देश्य से किया जा रहा हो तब भी, उसे सिर्फ किसी समय विशेष पर बच्चे के प्रदर्शन का रिकार्ड दे देने भर से आगे जाने की जरूरत है। आकलन के नतीजों को हर बच्चे की शिक्षा और विकास को सहयोग देने तथा बेहतर बनाने के लिए उपयोग किया जाना होगा। उनका इस्तेमाल हर एक बच्चे की जरूरतों के मुताबिक शिक्षण को वैयक्तिक बनाने के लिए किया जाना चाहिए। कुछ बच्चों की विशेष माँगें और जरूरतें हो सकती हैं जिन्हें विशेष उपकरणों और शिक्षण की रणनीतियों का उपयोग करके पूरा करना होगा। इस प्रकार, आकलन सिर्फ किसी समूह के प्रदर्शन का रिकार्ड भर नहीं

है। शिक्षण, सीखने और आकलन के बीच का सम्बन्ध चक्रीय है – वे एक–दूसरे को पोषित करते हैं। जब हम पढ़ाते हैं तो हमें यह आकलन करने की जरूरत होती है कि बच्चे ने क्या सीखा है। फिर आकलन से हमें पता चलता है कि बच्चे के सीखने को और बेहतर बनाने के लिए किस प्रकार हमें अपने शिक्षण को उनकी जरूरतों के अनुकूल बनाने की आवश्यकता है।

बच्चे की शिक्षा की प्रक्रिया में उसके माता–पिता भी भागीदार होते हैं। आकलन उन्हें अपने बच्चे की प्रगति से अवगत कराने का एक माध्यम है, और साथ ही इसके द्वारा उन्हें उसके सीखने की प्रक्रिया में भागीदार बनाने के लिए प्रेरित किया जा सकता है ताकि वे बच्चों को खुद भी घर में सिखाएँ जिससे स्कूल में दी जाने वाली शिक्षा में वे भी कुछ और जोड़ सकें।

बच्चों के दृष्टिकोण से, आकलन को ऐसा होना जरूरी है जिससे उनके भीतर भय, तनाव और अयोग्यता की भावनाओं के बजाय खुद के मूल्य की, आत्मविश्वास की और उपलब्धि की भावना जगे। वह ऐसा होना चाहिए जो बच्चे को उसकी खुद की आँखों में ऊँचा उठाए और उसे आत्म–सुधार की तलाश में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता रहे। एक छोटा बच्चा इस विचार को स्पष्ट ढंग से व्यक्त नहीं कर सकेगा, या हो सकता है कि उसे वास्तव में इसका बोध ही न हो – लेकिन जो आकलन बच्चे के सशक्तीकरण में मदद करता है उसकी झलक रोज स्कूल जाने के लिए उसकी तत्परता में, उसकी आँखों में दिखने वाली चमक में और नए तथा चुनौतीपूर्ण कार्यों को करने की उत्सुकता में साफ दिखाई देती है ।

आकलन हर शैक्षिक कार्यक्रम का अभिन्न हिस्सा होना चाहिए, उससे बच्चों को लाभ होना चाहिए, उसका उपयोग पाठ्यक्रम व पढ़ाने के ढंग में उपयुक्त बदलाव करने के लिए और किसी कार्यक्रम के महत्त्व का मूल्यांकन करने के लिए होना चाहिए।

आकलन की प्रकृति

भारतीय शिक्षा प्रणाली में पूरा जोर शैक्षिक उपलब्धियों के आकलन पर होता है। ऐसा आकलन बच्चे के पूरे व्यक्तित्व के एक अंश मात्र को महत्त्व देता है। वास्तव में तो यह तो बच्चे की संज्ञानात्मक क्षमताओं का पूर्णरूपेण आकलन भी नहीं है। शिक्षा यात्रा के हर दौर में, और खासतौर पर प्रारम्भिक वर्षों में, आकलन का सरोकार बच्चे के व्यक्तित्व से जुड़े हर पक्ष (शारीरिक, अंग–संचालन, संज्ञानात्मक, भाषाई और सामाजिक–भावनात्मक) के विकास से होना चाहिए। कोई बच्चा दूसरे बच्चे द्वारा उसका खिलौना छीन लेने पर किस प्रकार प्रतिक्रिया करता है, इस पर ध्यान देना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना इस पर कि क्या वह रंगों के नाम जानता है। इसके अलावा, आकलन से बच्चे की पसन्दों, नापसन्दों और रुचि के क्षेत्रों का पता लगना चाहिए। ऐसा आकलन ही समग्र आकलन होगा।

आकलन के स्वरूप को तय करते वक्त उसका केन्द्र बिन्दु बच्चे होना चाहिए, न कि शिक्षक। कागज और पेंसिल के साथ एक सीमित समय–सीमा के भीतर दी जाने वाली परीक्षाओं का संचालन और मूल्यांकन करना शायद शिक्षकों के लिए सहूलियत भरा होता है, पर ऐसी परीक्षाएँ बच्चे की क्षमताओं के विस्तार के साथ न्याय नहीं करतीं। अपने संचालन के ढंग की वजह से अकसर भयपूर्ण बना दी जाने वाली स्थिति में, बस एक दफा होने वाली आकलन प्रक्रिया शायद ही बच्चे को अपना सर्वश्रेष्ठ देने के लिए प्रेरित कर पाए। इसके बजाय, आकलन को एक कालखण्ड में फैला हुआ होना चाहिए ताकि बच्चे की प्रगति के सर्वांगीण रिकार्ड को दर्ज किया जा सके। इसे बच्चे के व्यक्तित्व और उसके विकास के विभिन्न आयामों पर ध्यान देना चाहिए, और हर एक बच्चे की सीखने की जरूरतों, उसकी गति तथा शैली के मुताबिक इसे वैयक्तिक आधार देना चाहिए। आकलन ऐसी सतत प्रक्रिया होना चाहिए जिसके दैनिक, तथा हर 3–4 महीनों के अन्तराल के रिकार्ड रखे जाना चाहिए।

आकलन के स्रोत, पद्धतियाँ और तकनीकें

चूँकि सीखना, बच्चे के स्कूल में बिताए जाने वाले घण्टों तक ही सीमित नहीं होता, अतः आकलन को भी बच्चे के बारे में विविध स्रोतों से हासिल जानकारियों पर आधारित होना चाहिए। जब हम आकलन के बारे में सोचते हैं तो सूचना के स्रोत के रूप में सबसे पहले शिक्षक का ध्यान आता है, लेकिन शिक्षकों के अलावा, बच्चे के माता–पिता, समुदाय के सदस्य/पड़ोस में रहने वाले लोग, बच्चे के मित्र और साथी तथा खुद बच्चा भी उसके विकास और सीखने के बारे में मूल्यवान जानकारी दे सकते हैं। जब

आकलन इन तमाम लोगों को शामिल करके किया जाता है तो हमें बच्चे के बारे में एक समग्र तस्वीर मिल जाती है।

आकलन चार पद्धतियों – व्यक्तिगत आकलन, समूह में आकलन, बच्चे द्वारा आकलन और साथियों द्वारा आकलन – में से एक के द्वारा या उनके संयोजन के द्वारा किया जा सकता है। छोटे बच्चे के मामले में, सम्भवतः आखिरी दो तरीके व्यावहारिक न हों। व्यक्तिगत आकलन के दौरान, शिक्षक एक बच्चे द्वारा किए जा रहे कार्य पर ध्यान केन्द्रित करता है और उस बच्चे की उपलब्धियों को दर्ज करता है। हम आकलन के रूप में इस तरीके से खूब परिचित हैं क्योंकि सबसे ज्यादा उपयोग किया जाने वाला तरीका यही है। सामूहिक आकलन में शिक्षक यह देखता है कि किसी कार्य को पूरा करने के लिए कुछ बच्चों का समूह कैसे एक साथ मिलकर काम करता है। जब हमें सामाजिक कौशलों, मूल्यों और प्रवृत्तियों का आकलन करना हो तो उसके लिए यह तरीका उपयुक्त है। आत्म–आकलन के दौरान बच्चा अपनी प्रगति की जानकारी देता है, जबकि साथियों द्वारा आकलन करने पर दूसरे बच्चे उसकी क्षमताओं, रुचियों और उसके ज्ञान के बारे में अपनी जानकारी देते हैं।

आकलन के लिए स्कूलों में इस्तेमाल की जाने वाली सबसे आम तकनीक है कागज और पेंसिल के साथ किए जाने काम और मौखिक परीक्षाएँ। ये तरीके बहुत छोटे बच्चों के साथ भी उपयोग किए जाते हैं। कई नर्सरी स्कूलों में बच्चे लिखित परीक्षाएँ देते हैं जिसमें उन्हें 'A से Z' तक या '1 से 20' तक लिखना होता है। मौखिक परीक्षा में कोई कविता, या वर्णमाला या फिर संख्याओं को बोलकर सुनाना होता है। इस पद्धति में कई खामियाँ होती हैं, खासतौर पर तब जब इसे छोटे बच्चों के आकलन के लिए इस्तेमाल किया जा रहा हो। परीक्षा जैसा वातावरण एक कृत्रिम माहौल बना देता है, जिससे बच्चे में घबराहट पैदा हो जाती है जो उसके प्रदर्शन पर बुरा असर डाल सकती है। ऐसा आकलन बच्चों के अनुकूल नहीं है। खासतौर से छोटे बच्चे के सीखने और उसके विकास का आकलन करने के लिए यह पसन्दीदा विकल्प नहीं है। इसके बजाय, बच्चों को उनके स्वाभाविक वातावरण में अपनी रोजमर्रा की गतिविधियाँ करते हुए देखने से, और बच्चों द्वारा कक्षा में या घर पर किए जाने वाले रोज के कार्य, जैसे उनके द्वारा बनाए गए चित्रों या चीजों (जैसे मिट्टी की बनाई गई चीजों) की समीक्षा करने से, बच्चे के बारे में कहीं ज्यादा समग्र जानकारी मिलती है। जब बच्चे का आकलन करने के लिए ऐसी तकनीकों का इस्तेमाल किया जाता है तो हमें बच्चे के स्वाभाविक विकास की झलक देखने को मिलती है। एक बार ली जाने वाली परीक्षाओं की तुलना में शिक्षकों के अवलोकन और पोर्टफोलिओ (कार्यों की फाइल) पद्धति कम हस्तक्षेप करने वाली और ज्यादा व्यापक दायरे वाली है। यह जरूरी है कि आकलन प्रामाणिक हो, बच्चे के व्यक्तित्व के हर पहलू को समेटने वाला हो, निरन्तर चलने वाला हो और विविध तरीके इस्तेमाल करता हो।

अवलोकन : एक महत्त्वपूर्ण सहायक पद्धति

बच्चों के बारे में जानकारी इकट्ठा करने का सबसे सामान्य तरीका है उन्हें देखना और सुनना। सभी शिक्षक उन बच्चों का अवलोकन करते हैं जिनके साथ वे काम करते हैं। ये अवलोकन अनौपचारिक हो सकते हैं या सहज प्रवृत्त हो सकते हैं या व्यवस्थित, सुनियोजित और विषय–केन्द्रित हो सकते हैं। बच्चों का अवलोकन करने के कई तरीके हैं जो प्रामाणिक और सार्थक जानकारियाँ इकट्ठी करने में मदद करते हैं।

आकलन की एक पद्धति के रूप में अवलोकन कई उद्देश्य पूरे करता है –

- शिक्षकों को बच्चों की रुचियाँ पहचानने में मदद मिलती है जिससे शिक्षक ऐसे शैक्षिक अनुभवों की योजना बना सकते हैं जो बच्चों की रुचियों के अनुरूप हों, और इस प्रकार हो सकता है कि वे उनके व्यापक रूप से सीखने को प्रेरित करें।
- सीखने के हर पहलू में हर बच्चे के विकास के स्तर को पहचानने में मदद मिलती है – किसी समूह के बच्चे विकास के अलग–अलग क्षेत्रों में विभिन्न स्तरों पर होते हैं। अलग–अलग समय और अलग–अलग माहौल में अवलोकन की अलग–अलग तकनीकों का इस्तेमाल करते हुए किए गए अवलोकनों में हर बच्चे के विकास की एक समग्र तस्वीर देने की सम्भावना होती है। यह जानकारी शिक्षक को अपने शिक्षण के तथा बच्चों की देखरेख के तरीके को अलग–अलग बच्चे के मुताबिक बनाने में मदद करेगी।
- समय–समय पर होने वाले अवलोकन बच्चों की प्रगति की जानकारी रखने में मदद करते हैं – अवलोकनों का एक व्यवस्थित कार्यक्रम बच्चे या बच्चों के व्यवहार में आने वाले बदलावों को लिखित रूप से दर्ज करने में मदद करता है।

- अवलोकन शिक्षकों के लिए उनकी खुद की शिक्षण प्रक्रियाओं का मूल्यांकन करने की एक प्रभावी तकनीक है, और यह उन्हें अपने शिक्षक–दल के सशक्त और कमजोर पहलुओं के बारे में गहरी समझ प्रदान कर सकता है। इससे उन्हें अपने पेशेवर विकास के लिए कार्यक्रमों की योजना बनाने में मदद मिलती है।
- अवलोकन सामान्य कार्यक्रम के लिए भी और कक्षा में सामने आने वाले खास मसलों के बारे में भी गहरी समझ पैदा करता है। माता–पिता और प्रशासकों के साथ बाँटी जाने वाली जानकारी में प्रत्येक बच्चे के बारे में लिखित अवलोकन भी जोड़े जा सकते हैं।

बाल्यावस्था के परिवेश में अवलोकन कैसे किए जाएँ

जब पर्यवेक्षक किसी भी परिवेश में प्रवेश करते हैं तो उनकी उपस्थिति मात्र से वहाँ सामान्य रूप से चल रही गतिविधि में बदलाव आ जाता है। छोटे बच्चे काफी जल्दी खुद को नए परिवेश में ढाल लेते हैं और यदि उनके सामने कोई परिचित व्यक्ति हो तो वे अपने सामान्य व्यवहार पर लौट आते हैं और पर्यवेक्षक को अनदेखा कर देते हैं। हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि अवलोकन की स्थिति में हम दखलन्दाजी करने से बचें। यह तभी सम्भव है जब –

- अवलोकन की योजना पहले से बना ली गई हो,
- अवलोकन के अलग–अलग तरीके ज्ञात हों और स्थिति विशेष के लिए उसके उपयुक्त तरीके इस्तेमाल किए जाएँ,
- अवलोकन के लक्ष्यों और जरूरी जानकारी की प्रकृति के बारे में दृष्टि बिलकुल साफ हो,
- एक कार्यक्रम बना लिया गया हो कि कब किसका अवलोकन करना है,
- रिकार्डर, विराम घड़ी, टेप रिकार्डर, कैमरा, वीडियो कैमरा आदि सामान उपलब्ध हों,
- पर्यवेक्षक ऐसी जगह तलाश कर ले जहाँ से बच्चों की गतिविधि में कोई दखल न पड़े। ऐसी जगह चुनें जहाँ से पूरा नजारा दिखता हो और हर बात सुनाई देती हो पर आप जिस बात का अवलोकन करने आए हों उसमें दखल न पड़ता हो।
- अवलोकन करते और आँकड़ों को दर्ज करते वक्त, जितना हो सके तटस्थ रहने की कोशिश करें। अपने फैसलों, निष्कर्षों और बातों के अर्थ की अन्य व्याख्याओं को अवलोकन होने तक एक तरफ रख दें। बच्चे के किसी खास आचरण, खास स्थिति, और सम्बन्धित लक्ष्य के अवलोकन पर ध्यान केन्द्रित करें – हर चीज को एक ही बार में देख लेना सम्भव नहीं होता। अवलोकन के सन्दर्भ को दर्ज करें और मौखिक तथा अमौखिक, दोनों तरह के व्यवहारों का अवलोकन करें।

छोटे बच्चों के अवलोकनों को दर्ज करने के तरीके

अवलोकनों को हाथ से दर्ज करना या टेप रिकार्डर से रिकार्ड करना जरूरी होता है ताकि कोई भी जानकारी न छूट पाए। सिर्फ बच्चों को देखते रहना काफी नहीं है, जो कुछ भी देखा जा रहा हो उसे दर्ज करने के कुछ तरीके होना चाहिए। जो भी देखा गया हो उसे याद रखना और उसका विश्लेषण करना मुश्किल हो सकता है अतः अवलोकनों के दस्तावेजीकरण के लिए कई प्रकार के तरीकों की जरूरत होगी।

- एक विचारपरक डायरी / जर्नल / लॉग : यह किसी बच्चे / बच्चों के विकास के बारे में एक लिखित वर्णन होगा जिसमें ध्यान किसी खास व्यवहार पर या फिर विकास के सभी पक्षों पर होगा। इस तरह का लिखित रिकार्ड किसी समयावधि के दौरान बच्चे के विकास को जानने में मदद करता है। हालाँकि यह काफी समय लेता है, पर इससे बहुत गहरी और सूक्ष्म जानकारियाँ हासिल होती हैं। जहाँ एक डायरी किसी भी समय और कहीं भी लिखी जा सकती है, किसी अवलोकन को लिखने का सबसे बढ़िया वक्त तभी होता है जब वह आचरण घटित होता हो।
- ऑडियो (श्रव्य) रिकार्डिंग : बच्चों की मौखिक कुशलताओं का आकलन करने के लिए, बच्चों के आपसी संवादों की ऑडियो रिकार्डिंग की जा सकती है। यह तरीका शिक्षक और बच्चे के बीच या बच्चों के बीच होने वाले संवादों को दर्ज करने और उनका विश्लेषण करने के लिए भी उपयोगी है।
- वीडियो रिकार्डिंग : यह किसी समूह या कक्षा में होने वाले पारस्परिक आचरणों और संवादों को देखने और दर्ज करने के सबसे सटीक तरीकों में से एक है। यद्यपि यह महँगा होता है, पर साथ ही यह सचमुच में घटे वाकयों का दृश्य और श्रव्य रिकार्ड होता है।

- किस्सा रूपी रिकार्ड : किस्से का मतलब किसी महत्त्वपूर्ण विकासात्मक घटना का संक्षिप्त वर्णन होता है। खेलते हुए या काम करते हुए बच्चों के बारे में किस्सा लिखना बच्चे के सीखने से जुड़े अनेक पहलुओं में उनके विकास के स्तर को निरूपित कर सकता हैं। यह बहुत उपयोगी होता है क्योंकि यह किसी परिस्थिति के सन्दर्भ में उनके व्यवहार को दर्ज करता है, लेकिन यह व्यवहार की पूरी तस्वीर नहीं देता।
- मूल्यांकन पैमाना/जाँच सूचियाँ : जाँच सूची जानकारी को दर्ज करने का तेज और आसान तरीका है। जाँच सूची या मूल्यांकन पैमाना ऐसे कौशलों/ क्षमताओं या आचरणों की सूची होती है जो अवलोकन की दृष्टि से जरूरी माने जाते हैं। जब कोई बच्चा किसी खास आचरण को दर्शाता है तो जाँच सूची में उस पर निशान लगा दिया जाता है। अवलोकन के अपरिष्कृत आँकड़ों को जाँच–सूचियों में समाहित किया जा सकता है। इनके द्वारा बहुत से बच्चों के आचरणों की तुलना भी की जा सकती है।
- पोर्टफोलिओ (जानकारी बस्ता) : यह हर बच्चे के बारे में जानकारियाँ इकट्ठी करने का प्रभावशाली तरीका है। इसमें चुनिन्दा नमूने जैसे चित्र, तस्वीरें, टेप रिकार्डिंग, लेखन के नमूने, शिक्षकों द्वारा रिकार्ड किए गए अवलोकन, जाँच–सूचियाँ, मूल्यांकन पैमाने आदि शामिल रहते हैं। पोर्टफोलिओ के माध्यम से पाठ्यचर्या के विभिन्न क्षेत्रों में बच्चे की क्षमताओं की समग्र तस्वीर मिल जाती है।

अवलोकन और बच्चे की निजता

बच्चों के निजता के अधिकार को हर वक्त बनाए रखना जरूरी है। किसी माता–पिता को उनके बच्चे के बारे में रिपोर्ट देते हुए सिर्फ उनके बच्चे की ही चर्चा की जाना चाहिए। इसी प्रकार बच्चों की और उनके समूहों की पहचान को प्रशासकों तथा स्कूल के कर्मचारियों के साथ चर्चाओं में गोपनीय रखना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो लिखित रिपोर्टों से नामों को हटा दिया जाना चाहिए।

References

1. National Council of Educational Research and Training, (2008). Source Book on assessment for classes I-V.
2. Billman, J., & Sherman, J. A. (1997). Observation and participation in early childhood settings- A practicum guide, birth to age five Boston: Allyn and Bacon.
3. McAfee, O., & Leong, D. (1997). Assessing and guiding young children's development and learning (3rd ed.). Boston: Allyn and Bacon.

रेखा शर्मा सेन इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू) से प्रतिनियुक्ति पर, नई दिल्ली से जामिया मिलिया इस्लामिया के प्रारम्भिक बाल्यावस्था विकास और शोध केन्द्र में प्रमुख (चेयर) प्राध्यापक हैं। उन्होंने प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखभाल और शिक्षा, शिक्षक प्रशिक्षण, सृजनात्मकता, गुणात्मक शोध पद्धतियों, अक्षमता और लिंगभेद जैसे विषयों पर लेखन किया है। उनसे rekha_s_sen@hotmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

श्रुति भार्गव लर्निंग इम्प्रिंट्स प्राइवेट लिमिटेड, वड़ोदरा में निदेशक हैं। उनकी विशेषज्ञता विशेष बच्चों के क्षेत्र में है जिन्हें विकासात्मक, मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक समस्याओं के लिए, तथा प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखभाल और शिक्षा के कार्यक्रमों में शामिल होने के लिए, विशेष देखरेख और जरूरतों पर आधारित कार्यक्रमों की आवश्यकता होती है। वे पिछले 18 वर्षों से इस कार्य में सक्रिय रूप से लगी हुई हैं। उनके कार्यक्षेत्र में शिशुओं का आकलन, छोटे बच्चों का आकलन और माता–पिता को परामर्श देना, भाषा, पाठ्यक्रम और शिक्षक प्रशिक्षण शामिल है, जिनमें समस्याओं वाले बच्चों को पहचानने पर जोर होता है। उनसे shrutib20@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी



जिज्ञासा और सीखना

शर्मिला गोवंदे माण्डलिक

"सीखने की तुलना में शिक्षण ज्यादा कठिन है क्योंकि शिक्षण के लिए जरूरी हैः सीखने देना।"

मार्टिन हाईडगर (1889–1976)

एक नन्हा बच्चा रेत के गड्ढे में पहली बार खेल रहा था और उसकी माँ उस पर ध्यान से नजर रखे हुए थी। सैलफोन बजने से उसका ध्यान बच्चे से हट गया। बच्चा जो अपने परिवेश से बेखबर था, रेत को अपने हाथ में लिए हुए पूरी तरह से मग्न था। ऐसा लगता था कि रेत के अपनी मुट्ठी में से फिसलते जाने का अनुभव उसे बहुत रोमांचित कर रहा था और वह बार–बार रेत को अपनी मुट्ठी में भर रहा था। धीरे–धीरे जिज्ञासा हावी हो गई और इस बार वह अपनी मुट्ठी मुँह तक ले गया और रेत का स्वाद चखने ही वाला था कि उसकी माँ ने उसे गोदी में उठा लिया और चिल्लाई, "नहीं...खाते नहीं, रेत गन्दी होती है, गन्दे लड़के"। अगले कुछ हफ्ते तक उस बच्चे को रेत में खेलने की इजाजत नहीं दी गई, और उसे उसकी स्ट्रोलर (बच्चों को टहलाने वाली गाड़ी) में ही सीमित रहना पड़ा।

मेरी एक मित्र की लगभग तीन वर्षीय बच्ची फलों के कटोरे तक पहुँची और उसमें से उसने एक सन्तरा निकाल लिया। कुछ ही मिनटों में उसने सन्तरा छीलने के अपने प्रयास में उसे कुचल दिया। वह सन्तरे को दबाने में इतनी मग्न थी कि जल्दी ही सन्तरे का चिपचिपा रस उसके पूरे कपड़ों पर, हाथों पर और जमीन पर लग चुका था। उसे रस का स्वाद भी बहुत मजेदार लगा। वह जमीन पर फैल गए रस से कुछ देर खेलती रही और फिर जोर–जोर से रोना शुरू कर दिया। स्पष्टतः उसे चिपचिपा होने से और उसके कारण आकर्षित हो रही मक्खियों से बहुत परेशानी हो रही थी। उसकी माँ उसे बड़े आराम से बाथरूम ले गई, उसकी सफाई की और उसके कपड़े बदल दिए। बच्ची फिर से खुशी–खुशी खेलने लग गई। पर इस बार, वह फलों के कटोरे के पास नहीं गई। मेरी इस मित्र ने अपनी बच्ची को इस अनुभव से गुजरने दिया। यह ठीक–ठीक बता पाना कठिन होगा कि इस अनुभव से उस बच्ची ने क्या सीखा, पर यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसने खोज करने के आनन्द को जाना और सीखा।

अपने नन्हे बच्चे को स्ट्रोलर में सीमित कर देने से माँ को लगा कि वह अपने बेटे को बीमार पड़ने से बचा रही थी। माँ का ऐसा करना ठीक भी था क्योंकि दूषित रेत खाने से गम्भीर बीमारी हो सकती है और दम तक घुट सकता है। यह सब चुपचाप देखने के बाद, मैं सोच में पड़ गई, "पता नहीं यह बच्चा क्या सोच रहा होगा?", "अपने परिवेश और अपनी माँ से उसे जो भी उत्प्रेरणा मिली, उससे वह क्या सीख रहा है?", "क्या होता अगर उसने रेत मुँह में डाल ली होती – क्या उसे वह अच्छी लगती, या वह उसे थूक देता?", "क्या उसका दम घुट जाता?" दूसरी तरफ मैंने यह भी सोचा कि तब क्या होता अगर उस छोटी बच्ची को सन्तरे की खोजबीन करने से दूर रखा जाता? अगर उसकी माँ ने उससे सन्तरा छीन लिया होता तो क्या मुझे उसके चेहरे पर आए खोज के आनन्द से भरे भाव, उसकी आँखों में अचरज का भाव, सन्तरे के रस को चखने के बाद उसका चटखारे लेना, और जगह–जगह चिपचिपा हो जाने के कारण से होने वाली परेशानी, ये सब देखने को मिलते?

किसी शिक्षक की इस तरह की स्थितियों में क्या प्रतिक्रिया होगी, इससे सम्बन्धित प्रश्न मेरे दिमाग में उभरने लगे। क्या शिक्षिका बच्चे को खोजबीन करने से रोकेगी? या, क्या वह भी खोजबीन की प्रक्रिया में शामिल हो जाएगी? क्या वह बच्चे द्वारा की जाने वाली गन्दगी से घृणा दर्शाएगी? क्या वह बच्चों की सुरक्षा को लेकर चिन्तित होगी?

मैरीलैण्ड विश्वविद्यालय में कायनीसिऑलॉजी की प्राध्यापक जेन क्लार्क ने 'घेरों में सीमित कर दिए गए' बच्चों के बारे में बात की है। उनके अनुसार ज्यादा से ज्यादा बच्चों को छोटी जगहों पर सीमित कर दिए जाने से लम्बे समय में उनके स्वास्थ्य पर खराब असर पड़ता है। सुरक्षा के कारणों से बच्चे ज्यादा से ज्यादा समय ऊँची कुर्सियों, स्ट्रोलरों, बेबी सीटों तथा कार की सीटों पर बिताते हैं (लूव, 2005)। भारत में भी, हम विभिन्न रूपों में यह देखते हैं। शहरी समृद्ध परिवारों में, बच्चे स्ट्रोलरों, कुर्सियों और सीटों पर सीमित कर दिए जाते हैं, और शहरी गरीब परिवारों में वे छोटे–छोटे घरों में सीमित रहते हैं। बच्चे सुरक्षा कारणों जैसे दुर्घटना, चोट, अन्य व्यक्तियों और जीवों से होने वाले नुकसान की वजह से अपने परिवेश की खोजबीन करने और उसे अनुभव करने में उत्तरोत्तर असमर्थ होते जा रहे हैं।

शिक्षक भी बच्चों को उनकी मेजों तक ही सीमित कर देते हैं। बच्चों को यहाँ–वहाँ घूमने की स्वतंत्रता नहीं होती और खोजबीन करने, चीजों को अनुभव करने की स्वतंत्रता भी नहीं होती। प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के अधिकांश कार्यक्रम न सिर्फ बच्चों की जगह को सीमित कर देते हैं बल्कि उनके अनुभवों को भी सीमित कर देते हैं। तयशुदा कार्यपद्धति और तयशुदा गतिविधियों वाला एक तयशुदा पाठ्यक्रम बच्चों को जिज्ञासु और सृजनशील होने का मौका नहीं देते। शिक्षक न सिर्फ पाठ्यक्रम के कारण मजबूर रहते हैं, बल्कि 'कक्षा को संचालित' करने की जरूरत के कारण भी मजबूर रहते हैं। ऐसा करने के लिए वे सुनिश्चित करते हैं कि कक्षा में बिलकुल शान्ति रहे, बच्चे अपनी मेजों पर बैठे रहें, और शिक्षक द्वारा दी जाने वाली सारी उत्प्रेरक जानकारियों को चुपचाप सोखते रहें। ऐसे में उन्हें लगभग कोई गुंजाइश नहीं मिलती कि वे अपनी प्रतिक्रियाएँ दे सकें जिनके माध्यम से वे अपने भीतर उठते किसी भाव को व्यक्त कर सकते हैं, पहले से ज्ञात जानकारी को सबके साथ साझा कर सकते हैं या और अधिक सवाल ही पूछ सकते हैं।

हम चीजों के साथ क्या करते हैं और उसके परिणामस्वरूप हमें उन चीजों से क्या आनन्द मिलता है या क्या नुकसान उठाना पड़ता है, इन दोनों पहलुओं के बीच पीछे और आगे, दोनों ओर जाने वाला एक सम्बन्ध निर्मित करना ही 'अनुभव से सीखना' है (ड्यूई, 2003)। एक बच्चे द्वारा लौ में उँगली दे देने के उदाहरण का उल्लेख करते हुए ड्यूई कहते हैं कि, 'अनुभव तभी बनता है जब उसकी गतिविधि उसके परिणामस्वरूप होने वाली परेशानी से जुड़ जाती है।' बच्चा इस प्रकार अनुभव से यह सीख जाता है कि लौ में उँगली रखने से वह जल जाती है और इस जलने से दर्द होता है। जैसे उस छोटी बच्ची ने सन्तरे के साथ हुए अपने अनुभव से सन्तरे के रस से होने वाली चिपचिपाहट के चलते होने वाली परेशानी और तकलीफ के परिणाम को अनुभव किया और इस प्रकार यह सीखा कि अपने हाथ से सन्तरों को दबाने से हाथ चिपचिपे हो जाएँगे। उसने सन्तरे के स्वाद को भी अनुभव किया। जल्दी ही वह इस स्वाद को 'तीखे' स्वाद (दूसरे खाद्य पदार्थों से अलग स्वाद) के रूप में पहचानने लगेगी।

यह सीखना कैसे होता है इसके बारे में पियाज़े हमें अपनी सूक्ष्म दृष्टि से वाकिफ कराते हैं। वह कहते हैं कि बच्चे खुद अपना ज्ञान बनाते हैं और सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। वे उनको दी जाने वाली जानकारी को निष्क्रिय होकर नहीं सोखते जाते, बल्कि खुद को हासिल होने वाले ज्ञान से ही आगे की सीढ़ियाँ बनाते जाते हैं। पियाज़े के अनुसार, किसी नए अनुभव के सामने आने पर, बच्चा पहले तो उसे अपनी वर्तमान कल्पनाओं और संरचनाओं के माध्यम से समझने की कोशिश करता है। असन्तुलन वहाँ सामने आता है जब बच्चे को लगता है कि उसकी पहले की समझ सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे पा रही है। यह असन्तुलन, सामंजस्य की प्रक्रिया द्वारा दूर हो जाता है जब बच्चे की मौजूदा कल्पनाओं और संरचनाओं की जगह नई कल्पनाएँ और संरचनाएँ ले लेती हैं। बच्चा सभी संरचनाओं (नई और पुरानी) को आत्मसात, और संगठित कर लेता है और एक नई समझ पैदा कर लेता है। एक बार जब यह असन्तुलन दूर हो जाता है, तो बच्चा फिर एक सन्तुलन की स्थिति हासिल कर लेता है और इस प्रक्रिया को साम्यावस्था स्थापित करना कहते हैं।

छोटी बच्ची ने अपने स्पर्श, स्वाद, सूँघने और देखने की इन्द्रियों का इस्तेमाल यह समझने के लिए किया कि सन्तरा कैसा होता है और सन्तरे के बारे में उसे क्या पसन्द है और क्या नहीं। लेकिन छोटे लड़के को यह अनुभव नहीं लेने दिया गया। उसने अपनी माँ की अप्रिय बातों का अनुभव किया और थोड़ी–सी रेत चखने के

जोखिम के परिणामस्वरूप उसके रेत के गड्ढे में जाने की मनाही भी हो गई, छोटी लड़की ने सन्तरे के चिपचिपे रस की असुविधा झेली। पर साथ ही उसने सन्तरे के मीठे स्वाद से मिलने वाले आनन्द को भी अनुभव किया। लड़की द्वारा झेला गया परिणाम एक स्वाभाविक परिणाम था। जबकि दूसरे मामले में यह लड़के की माँ द्वारा पैदा किया गया था। यह बच्चा, अगली बार रेत के गड्ढे में खेलते हुए सम्भवतः एक बार फिर रेत खाने की कोशिश करेगा और अपनी माँ से फिर उसी तरह की प्रतिक्रिया मिलने के बाद वह रुक जाएगा क्योंकि उसे इसका परिणाम अच्छा नहीं लगा था या फिर डर की वजह से।

क्या इस बच्चे का अनुभव अलग होता यदि उसकी माँ ने इस समस्या का सामना अलग ढंग से किया होता? जिस ढंग से हम सवाल पूछते हैं या बच्चों को मार्गदर्शन देते हैं वह उनके सीखने के अनुभव को प्रभावित करता है। अडेल फेबर और एलेन मैजलिशिन ने अपनी किताब, 'हाऊ टू टॉक टू किड्स सो दैट दे लर्न (बच्चों से कैसे बात की जाए ताकि वे सीखें)', में बच्चों के साथ होने वाली बातचीत के महत्त्व को सामने रखा है। उनके अनुसार, जिस ढंग से हम अपने बच्चों से बात करते हैं, वह उनके सीखने को प्रभावित करता है। बच्चों की भावनाओं और उनकी जिज्ञासा को नकार देने के बजाय हमें उनके अनुभव को पूरी तरह खोलने में बच्चों की मदद करना चाहिए ताकि उससे सामने आने वाले परिणामों से वे स्वयं सीख सकें। बच्चे को रोकने का कठोर कदम उठाने के बजाय माँ अपने बच्चे को यह समझाने के लिए, कि रेत खाना अच्छा नहीं होता, कोई ऐसा तरीका अपना सकती थी जिसमें बच्चे को डराने की जरूरत न पड़ती। पहले, वायगॉट्स्की ने भी समझाया था कि किस तरह सामाजिक मेलजोल और संवाद बच्चे को उसकी समझ और ज्ञान विकसित करने में मदद करते हैं। उन्होंने सहायक ढाँचा खड़ा करने (स्कैफोल्डिंग) की एक प्रक्रिया का जिक्र किया है जिसमें कोई बड़ा व्यक्ति या बड़ा साथी बच्चे के साथ संवाद करके उसे अपना ज्ञान निर्मित करने में मदद करता है। सामाजिक रचनावाद का उनका सिद्धान्त कहता है कि सीखना बच्चे के सामाजिक मेलजोल और सांस्कृतिक परिवेश के माध्यम से होता है।

दोनों ही बच्चे खोजबीन करने और अनुभव करने की अपनी जिज्ञासा से प्रेरित थे। लेकिन, जहाँ बच्ची को अपनी जिज्ञासा पूरी करने की आजादी मिली वहीं बच्चे के अनुभव में उसकी माँ ने बाधा डाल दी। थेरेसा विलिंघम ने टेड टाक्स (विशेषज्ञों की वार्ता का एक प्रसिद्ध कार्यक्रम) में अपने प्रारम्भिक वाक्य में ही जिज्ञासा में अड़ंगा लगाने के गहरे प्रभाव को सामने रखा, "लेकिन जिज्ञासा के बिना, खोजने या छानबीन करने की कोई प्रेरणा नहीं होती। जिज्ञासा के बिना, बच्चे के मन में उदासीनता और अरुचि पैदा हो जाती है और बिना जाँच–पड़ताल और खोजबीन की जिन्दगी के परिणामी प्रभाव (जो राजनीतिक भागीदारी, वैज्ञानिक, साहित्यिक, कला, आर्थिक तथा सामाजिक उपलब्धियों और विकास को प्रभावित कर सकते हैं) सांस्कृतिक रूप से दूरगामी हो सकते हैं।"

प्रारम्भिक बाल्यावस्था के शिक्षकों के रूप में, हम इस जिज्ञासा को बनाए रखने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं और बच्चों को अनुभव करने तथा खोज करने के मौके देकर उसके स्वाभाविक परिणामों के माध्यम से सीखने का अवसर देते हैं। यह तभी सम्भव होता है जब बच्चा छूने, स्वाद लेने, देखने, सूँघने और सुनने की अपने पाँचों इन्द्रियों का उपयोग करके बाहर से प्राप्त होने वाली उत्प्रेरक जानकारियों को व्यवस्थित रूप से आत्मसात करे और उनसे अर्थ निर्मित करे। मारिया मॉन्टेसरी जैसे प्रारम्भिक बाल्यावस्था के शिक्षकों ने पहले इन्द्रियों की शिक्षा पर और उसके बाद बुद्धि की शिक्षा पर जोर दिया। उन्होंने बच्चे के आत्मबोध पर ध्यान केन्द्रित किया और वे मानती थीं कि शिक्षक बच्चे के परिवेश का रक्षक होता है जो उसे परिधि पर से देखता है और उसकी सहायता के लिए हस्तक्षेप करता है। अन्त में, जैसा कि मारिया मॉन्टेसरी ने कहा है 'चुनौती बच्चों में ऐसी रुचि जगाने की है कि वह उनके पूरे व्यक्तित्व को उसमें संलग्न कर ले।' (मॉन्टेसरी, 1949)।

[i]Theresa Willingham, USA, ‘Celebrating and Inspiring Curiosity as a Key Component in Learning’, TED Conversations
http://www.ted.com/conversations/145/celebrating_and_inspiring_curi.html

References

1. Dewey, J. (2003). Democracy and Education. New Delhi: Aakar Books.
2. Louv, R. (2005). Last Child in the Woods. Newyork: Atlantic Books.
3. Palmer, J. A. (2004). Fifty Great Modern Thinkers on Education - From Piaget to the Present. London and Newyork: Routledge, Taylor and Francis Group.
4. Siegler, R. S., & Alibali, M. W. (2005). Children's Thinking (4th Edition). NJ: Prentice-Hall.
5. Cook & Cook. (2005) Child Development, Principles and Perspectives. Boston: Allyn & Bacon/Longman.
6. Miller, P. (2011). Theories of Developmental Psychology (5th Edition). USA: Worth Publishers.
7. Wertch James V. (1985) Vygotsky and the social formation of mind, Harvard University Press, USA.
8. Crain, Wlliam C. (2011) Theories of development: concepts and application, 6th edition, Pearson Education Inc.
9. Maria Montessori. (1949). The Absorbent Mind. Madras India: The Theosophical Publishing house.
10. Faber A. Mazlish E. (1996) How to talk so kids can learn.

शर्मिला गोवंदे माण्डलिक सामाजिक विकास की एक सक्रिय विशेषज्ञ हैं जिन्हें बच्चों और किशोरों के साथ काम करने का तेरह सालों से भी ज्यादा का अनुभव है। 2010 में एक दुर्घटना के बाद उन्होंने पढ़ाना शुरू किया। उन्होंने अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के एम.ए. (ऐजुकेशन) कार्यक्रम में शामिल होने से पहले मैसूर के एक प्राथमिक स्कूल में तीन साल तक गणित और सामाजिक अध्ययन पढ़ाया। वर्तमान में वे एक विद्यार्थी होने के साथ–साथ वे अध्ययन, शिक्षक प्रशिक्षण, सीखने में कठिनाई महसूस करने वाले बच्चों की मदद करने, तथा अपने बच्चों की देखभाल करने जैसे कार्यों में भी व्यस्त रहती हैं। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी



सृजनशीलता : प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा में कलाओं की भूमिका

आशा सिंह

"कलाएँ ही शिक्षा का आधार होती हैं।"

देवी प्रसाद
(मूर्तिकार एवं शांति कार्यकर्ता)

छोटे बच्चे ऐसे संवादों की शृंखला प्रदान करते हैं जो सम्बन्धों को निर्मित करने के प्रति गहरा लगाव दर्शाते हैं, जो तुलना करते हैं और अपने आसपास के संसार का मतलब समझने के लिए अपने स्वयं के निहितार्थ निकालते हैं। उनके संवादों के दायरे में ऐसी बातें हो सकती हैं कि 'बारिश इसलिए होती है कि शिक्षिका बाल्टियाँ भर–भर के पानी को ऊपर, और उससे भी ऊपर फेंकती हैं'। अपने प्ले–स्कूल को थोड़ा जल्दी छोड़कर आने के लिए मजबूर हुए तीन साल के एक रुष्ट बच्चे ने शिकायत की, 'माँ आप जल्दी क्यों आ जाती हैं?' एक चार साल का बच्चा खीझ जाता है जब बेतरतीबी से रखी गई गद्दियों को माँ व्यवस्थित कर देती है और वह चीखकर कहता है, "आपने शेर की गुफा खराब कर दी, अब हिरण पकड़ा जाएगा!" बचपन के ऐसे किस्से बच्चों की सोच तथा सोचने की प्रक्रियाओं की जीवन्तता व्यक्त करते हैं। वे अभिनव तरीकों से सोचने की और भौतिक–सामाजिक यथार्थ का अर्थ निकालने की उनकी क्षमता दर्शाते हैं। उनके वक्तव्य बड़े लोगों के हस्तक्षेपों द्वारा निर्मित होने के बजाय उनके अपने अनुभवों और अन्वेषणों से बने ताजे दृष्टिकोणों की ओर इशारा करते हैं। बच्चे सृजनात्मक दिमागों और विविध परिकल्पनाओं को प्रतिबिम्बित करते हैं।

शब्दकोष सृजनशीलता को अभिनव और प्रवर्तनकारी सोच की तरह परिभाषित करता है। सृजनशीलता अन्वेषण और खोज के द्वारा मौलिक धारणाएँ निर्मित करने की प्रक्रिया है। सिखाने–सीखने की प्रक्रिया में इस बात को समझना महत्त्वपूर्ण है कि सृजनशीलता प्रक्रिया के अनुभव से, न कि अन्तिम उत्पाद की चिन्ता करने से, विकसित होती है। सृजनशीलता प्रतिभा, कौशल या बुद्धिमत्ता से कुछ अधिक है। सृजनशीलता स्पर्धा से, या दूसरों की अपेक्षा कुछ बेहतर करने से, ऊपर होती है; इसका सम्बन्ध सोचने, अन्वेषण करने, खोजने, तथा कल्पना करने से होता है। हम बच्चों में किस तरह संसार से ऐसे सक्रिय जुड़ाव को बढ़ावा दे सकते हैं ताकि वे उसकी अनोखी सम्भावनाओं का आनन्द ले सकें और प्रवर्तनकारी सोच विकसित कर सकें? अकसर माना जाता है कि कलाकार सृजनशील होते हैं और कलाओं में उत्कृष्टता ही सृजनशीलता होती है।

हालाँकि, यह सही है कि व्यावसायिक संस्थान भी अपना उत्पाद बेचने में सृजनशील हो सकते हैं, जैसे कि अमूल के विनोदपूर्ण तथा समसामयिक विज्ञापन होते हैं। एक किसान भी सृजनशील हो सकता है यदि वह पौधों को इस तरह रोपता है कि वे जटिल संरचनाएँ निर्मित करते हैं, और एक माँ अपने गृहिणी होने पर गर्व करते हुए अपने घर में रुचिकर स्थानों का सृजन कर सकती है। इसी प्रकार अनेक माता–पिता अपने बच्चों के लिए आश्चर्यजनक कहानियाँ गढ़ते हैं जो आनन्द देती हैं और लगाव के गहरे सम्बन्ध रचती हैं। तथापि, यह भी सही है कि विविध विचारों को प्रोत्साहित करने में और प्रवर्तनकारी सोच को बढ़ावा देने में कलाएँ विशेष रूप से उपयोगी होती हैं। सृजनशीलता एक रवैया है, सोचने के ऐसे तरीके हैं जो रोजमर्रा के अनेक सिलसिलेवार उबाऊ कामों को ऊर्जा दे सकते हैं, और अनुभव हैं जो हमें स्वतंत्र रूप से सोचना सिखाते हैं। अन्वेषण, प्रयोग तथा अनुभव, ये तीनों ही एक सृजनात्मक वयस्क व्यक्ति बनने की ओर बढ़ने के लिए छोटे बच्चों में सुदृढ़ आधार निर्मित करते हैं। 'तोत्तोचान' एक ऐसी जापानी टेलीविजन एंकर द्वारा लिखी गई किताब है जो अपनी गतिमान सफलता के लिए अपने स्कूल के रोमांचक अनुभव और अवसर को श्रेय देती है। करने की स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, और सबसे बढ़कर गलतियाँ करने की स्वतंत्रता तथा विकल्पों के बारे

में सोचने के लिए मार्गदर्शन दिया जाना, ये सभी समस्याओं को सुलझाने के कौशल, आत्मविश्वास और स्वतंत्र सोच को विकसित करने में सहायक होते हैं। रोजमर्रा के साधारण कामों को कौतुकपूर्ण प्रयोगों की तरह करने के जटिल संजाल में ही सृजनशीलता गुँथी हुई रहती है।

सृजनशीलता का पोषण करना

स्कूली पढ़ाई में निश्चित रूप से ऐसी पद्धतियों द्वारा संचालित होने की प्रवृत्ति होती है जो अलग–अलग व्यक्तियों में योग्यताओं तथा रुचियों की विविधता पर ध्यान केन्द्रित करने के बजाय समूह को ही सम्बोधित करती हैं। स्कूली पढ़ाई का आरम्भ मुख्य रूप से छपे हुए ज्ञान को हासिल करने पर आधारित होता है जो जरूरी नहीं कि सीखने वाले को प्रोत्साहन प्रदान करे, क्योंकि हो सकता है कि उसकी विशेष योग्यता दृश्यात्मक स्मरणशक्ति या आकार और स्थान की समझ हो। सीखने के आधार के रूप में कला, कक्षाओं की एकरस जड़ता को तोड़ते हुए, अनेक जादुई आश्चर्यों को उघाड़ती है क्योंकि इसकी विधियाँ गतिसंवेदी और दृश्यात्मक स्मृति से सम्पन्न सीखनेवालों को भी शामिल करती हैं।

ऐसा लगता है कि कलाएँ विविध प्रकार के सीखनेवालों के समूह को सम्बोधित करती हैं क्योंकि वे सम्प्रेषण के अधिक रास्ते खोल देती हैं। जिन बच्चों को पाठ्यसामग्री नहीं रुचती और जिनकी क्रमिक स्मरणशक्ति कम होती है, उनका रुझान ऐसे माध्यम की ओर होता है जिसमें ढाँचे में न बँधी हुई अभिव्यक्ति के लिए कुछ गुंजाइश होती है। कलाओं की बँधी हुई परिभाषाएँ नहीं होतीं, और वे जमीन के नीचे जड़ों वाले पेड़ और साथ ही ऊपर आकाश में लटक रही जड़ों वाले पेड़, दोनों को सराहती हैं। समय के साथ स्कूली व्यवस्थाओं को शिक्षा में कलाओं के पूरे परिमाण और उनके सकारात्मक योगदान को समझना जरूरी है।

बीसवीं सदी के भारतीय चिन्तकों रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा श्री अरविन्द ने प्राथमिक रूप से कलाओं को आधार बनाते हुए समेकीकृत शिक्षा का प्रतिपादन किया है। उन्होंने शिक्षा में ऐसी संवेदनशीलता पर जोर दिया जो कक्षा में सांस्कृतिक जड़ों वाली तकनीकों के माध्यम से भावनाओं और अध्यात्मिकता का पोषण करती है। कलाएँ ऐसी भाषाएँ हैं जिन्हें अधिकांश लोग बोलते हैं, भले ही उनकी संस्कृतियाँ, भाषाएँ, भौगोलिक स्थितियाँ, शैक्षणिक पृष्ठभूमियाँ और यहाँ तक कि योग्यताएँ भिन्न–भिन्न हों। संगीत तथा गति जीवन की लयों का आधार होती है, यही कारण है कि एक बेचैन बच्चे को भी पुनरुक्तिपूर्ण ध्वनियों की लय से क्षणिक आराम मिलता है। अनेक अध्ययनों के द्वारा यह देखा गया है कि अक्षमताओं से ग्रस्त बच्चों के बढ़ने और विकास में कलाएँ योगदान देती हैं। इस बात पर गौर किया जाना समान रूप से महत्त्वपूर्ण है कि विभिन्न प्रकार के कौशल समूहों वाले समुदायों में कलाएँ उन्हें जोड़े रखने का काम भी करती हैं।

पश्चिम के अकादमिक संसार में, "समेकित दृष्टिकोण" की अनुगूँज हॉवर्ड गार्डनर के बहु–बुद्धियों के सिद्धान्त में सुनाई देती है जो सुझाता है कि हमारी स्कूली व्यवस्थाएँ हमारी संस्कृति को प्रतिबिम्बित करती हैं। वे मुख्य रूप से दो प्रकार की बुद्धियों – शाब्दिक तथा तार्किक–गणितीय – को ही सिखाती, परीक्षण करती और पुरस्कृत करती हैं। इन्हें अकसर बुनियादी कौशलों का आधार माना जाता है। परन्तु, उनका सुझाव है कि कम से कम पाँच अन्य प्रकार की बुद्धियाँ भी होती हैं जो उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं। वे भी "भाषाएँ" हैं जिनकी अपनी संकेत व्यवस्थाएँ होती हैं जिन्हें अधिकांश लोग बोलते हैं और जो व्यक्तिगत भिन्नताओं के व्यापक दायरे तक पहुँचती हैं। इनमें दृश्यात्मक/स्थानिक, शारीरिक/गतिसंवेदी, संगीतात्मक, अन्तर्वैयक्तिक, तथा अन्तर्चेतना की बुद्धियाँ शामिल हैं। ये बुद्धियाँ दृश्य कलाओं, संगीत, नृत्य तथा नाटक को आधार प्रदान करती हैं, और इन कला रूपों के माध्यम से अधिकांश विद्यार्थियों को न केवल सम्प्रेषण और आत्म–अभिव्यक्ति के साधन मिलते हैं, बल्कि अर्थ निर्मित करने और तकरीबन किसी भी विषय को कारगर ढंग से समझने के औजार भी प्राप्त होते हैं। यह बात तब विशेष रूप से सच होती है जब कलाओं को न केवल अलग विषयों की तरह पढ़ाया जाता है बल्कि उन्हें प्रत्येक स्तर पर समूचे पाठ्यक्रम में समाहित कर दिया जाता है। कलाएँ अनेक विषयों को जीवन्त बना सकती हैं और अमूर्त कल्पनाओं को अनुभूत यथार्थ बन जाने का अवसर प्रदान कर सकती हैं।

चित्रांकनों से बच्चों की सोच के बारे में महत्त्वपूर्ण अन्तर्दृष्टियाँ प्राप्त होती हैं। बच्चों के चित्रांकनों को संवाद के आधार के रूप में लेना महत्त्वपूर्ण होता है। जब बच्चे उसे रचते हैं जो हमें वक्रों, रेखाओं या टेढ़े–मेढ़े चिन्हों का समूह प्रतीत होता है, तो उनके बीच सम्बन्धों का एक पूरा सिलसिला होता है जो बच्चे के मन की 'आँख' द्वारा रचा

जाता है। कक्षा में कला बच्चे को खोजबीन करने तथा अपने को अभिव्यक्त करने की सुविधा देती है। सटीकता के साथ निरूपित करने की कला उसके बाद आएगी, प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा (ई.सी.ई.) की कक्षा को विशेज्ञता पर ध्यान केन्द्रित करने की नहीं, बल्कि अनुभवों के लिए अवसर उपलब्ध करवाने की जरूरत होती है।

अनुभव के रूप में कलाएँ तीन प्रकार से प्रारम्भिक बाल्यावस्था कार्यक्रमों का हिस्सा हो सकती हैं। एक वह तरीका है जिसका वर्णन वार्षिक आयोजनों के दौरान प्रदर्शनों के रूप में किया जाता है। दूसरा रोजमर्रा के कक्षा के क्रियाकलापों में कलाओं का उपयोग करना है। अधिकांश शिक्षक, विशेष रूप से ज्यादा प्रगतिशील परिवेशों में, वार्षिक उत्सवों को आयोजित करने से परिचित होते हैं, और रोजमर्रा की दिनचर्या में कला का इस्तेमाल करने का भी प्रयास करते हैं। इनके अलावा, एक तीसरा दृष्टिकोण किसी कलाकार से मिलने का है जो बच्चों के साथ एक दिन बिताता है।

दैनिक कामकाज की लयों में कला : क्रीड़ामय क्रियाकलाप

हाल के वर्षों में, 'बाल केन्द्रित शिक्षा' की वकालत करने वालों ने बच्चों के सीखने की शैलियों में विविधता को लेकर एक विमर्श उत्पन्न किया है। बच्चों की सामाजिक, संज्ञानात्मक तथा भावनात्मक क्षमताओं की विविधता के बारे में और साथ ही उनमें भाषायी परिवर्तनशीलता के बारे में जागरूकता बढ़ती जा रही है। ई.सी.ई. के शिक्षक की तरह हमारे दिमागों को कक्षा की विविधता के प्रति सचेत रहने की, और ऐसे तरीके खोजने की जरूरत है जिनसे सीखने के औपचारिक परिवेशों के भीतर बच्चे अपने लिए निजी जगह बना सकें। एक साधारण–सा गुड़ियों का कोना विभिन्न भूमिकाएँ खेलने के लिए, तथा भावनाओं और दृष्टियों को व्यक्त करने वाले संवादों के लिए ढेर सारे अवसर उपलब्ध करा सकता है। सब्जियों से चित्र बनाना और प्रकृति की सैर के दौरान इकट्ठी की गई पत्तियों को जमाना मजेदार होता है तथा प्रकृति, कक्षा और सीखने के सम्बन्धों को पोषित करता है। संगीत, कहानी सुनाना, कठपुतलियों का तमाशा देखना और दौड़भाग, इन सबमें कई कौशल शामिल रहते हैं, और वे बहु–क्षेत्रीय सीखने को निर्मित करते हैं। उन अधिकांश गतिविधियों में, जो ई.सी.ई. के पाठ्यक्रम का हिस्सा होती हैं, सृजनात्मकता निहित होती है; बच्चे की खेलप्रियता तथा उसकी क्रियाशीलता और संलग्नता का पोषण करना ही वह तरीका है जिससे अभिव्यक्ति को अवसर मिलता है।

वार्षिक आयोजनों के रूप में कला : सम्बन्धों का सृजन करना

अकसर वार्षिक आयोजनों का बहुत दुरुपयोग होता है, क्योंकि वे एक जल्दबाजी का कैलेण्डर और समय सारणियों की भागमभाग निर्मित करते हैं। पर, हममें से प्रत्येक को स्कूल के उत्सवों की चहल–पहल की भिन्न–भिन्न स्मृतियों की याद जरूर आती है। तब स्कूल शान्त अनुशासित स्थानों के बजाय चित्रकारी, दस्तकारी या नृत्य और संगीत से भरे गुंजायमान क्षेत्रों में रूपान्तरित हो जाते हैं। स्कूल के गलियारों में जगह–जगह बच्चों की कलाकृतियाँ दिखाई देती हैं; वार्षिक आयोजनों में बच्चों के प्रदर्शन ही आकर्षण का केन्द्र होते हैं। मूल रूप से ये प्रदर्शन कलाओं में निहित अधिगम से बच्चों के सम्बन्धों को भी रेखांकित करते हैं।

पौराणिक चरित्रों की वेशभूषा में सजे हुए बच्चे सांस्कृतिक चिन्हों को समझते हैं, वहीं एक नागा की वेशभूषा में होना या एक सन्थाली साड़ी में सजना भी स्मरणीय अनुभव बन जाते हैं। अलग–अलग राज्यों की अपरिचित पोशाकें पहनने से एक तात्कालिक रूपान्तरण हो जाता है जो बच्चों को भौगोलिक परिवेश से दूरदराज के संसार में ले जाता है। यह पहनावे के अनुभवों के माध्यम से बच्चों को लोगों के जीवनों की विविधता के बारे में सोचने के लिए मजबूर करते हुए उनकी कल्पना को उकसाता है। जब बच्चे किसी अलग पहनावे को धारण करते हैं या किसी प्रकार के नृत्य में भाग लेते हैं, तो वे स्वयं से भिन्न किसी रूप में सोचते और कार्य करते हैं। प्रदर्शन के रूप में कला सामाजिक–सांस्कृतिक बहुलता से जुड़ने की योग्यता को पनपाती है। बच्चे नवीनता को अनुभव कर पाते है, और नए दृष्टिकोणों की सम्भावना से अवगत होते हैं।

संगीत तथा गीतों के बोल भाषाओं की लयों और ध्वनियों को उद्घाटित करते हैं। अंग–संचालन के द्वारा कला रूपों का अनुभव या मंचों की रचना करना ऐसे रंगों या आभाओं के प्रति संवेदनशील बनाता है जो विभिन्न भौगोलिक स्थितियों में महत्त्वपूर्ण होते हैं, इसके अलावा यह उनसे जुड़ी कहानियों, रीति–रिवाजों और परम्पराओं के प्रति उत्सुकता का भाव भी जगाता है।

निष्णात गुरुओं के माध्यम से कला

बच्चों के स्कूली जीवन में कलाओं के लिए अवसर निर्मित करने के लिए कुछ स्कूलों के पास दूसरे तरीके होते हैं। वे पेशेवर लोगों के साथ शिविर लगाने तथा नामचीन कलाकारों के साथ काम करने के अनुभवों को उपलब्ध करवाने के प्रयास करते हैं। यह केवल उनकी ख्याति और चमक–दमक से परिचय होने से कहीं बढ़कर होता है, क्योंकि निकट सम्पर्क उनकी विशेषज्ञता और कौशल के प्रति विस्मय तथा प्रेरणा जगाता है। कुछ स्कूलों ने ऐसे उपायों का प्रयास करके बच्चों को बहुत आनन्द दिया है।

स्पिक मैके भी इसी दिशा में एक कदम है। कला गतिविधियों को प्रमुखता देने से कई छिपी हुई निधियाँ प्रकट होती हैं, क्योंकि उनके अनेक आयाम होते हैं, जैसे :

- प्रेरणादायक,
- विविध प्रकार की प्रतिभाओं के मूल्य को स्थापित करना,
- विभिन्न पेशेवर कार्यों (वाद्य बजाना, मिट्टी की कलाकृतियाँ बनाना, गणितज्ञ – सभी साझा रूप से उसी मंच का उपयोग करते हैं) के प्रति आदर का भाव निर्मित करना,
- परिपूर्णता हासिल करने के लिए अभ्यास का महत्त्व समझना,
- अलग–अलग प्रतिभाओं वाले बच्चों को अपनी बात सम्प्रेषित करने और व्यक्त करने के लिए अवसरों को सुलभ कराना।
- जॉन डुई ने आर्ट एज एक्सपीरियंस (अनुभव के रूप में कला) में कलाओं की "परिपाटियों के बन्धनों और दिनचर्या के दोहराव की पपड़ी को तोड़कर चेतना को मुक्त करने" की इस अनोखी क्षमता के बारे में लिखा है। उनको लगता था कि कलाकार "हमेशा से ही समाचारों के असली वाहक रहे हैं, क्योंकि जो बात नई है, वह अपने–आप में बाहर घट रही घटना नहीं है, बल्कि उसके द्वारा प्रज्वलित की गई भावना, बोध तथा सराहना है"। जब हम स्वयं कलाओं का सृजन करना और उन पर प्रतिक्रिया करना शुरू करते हैं, तो हम भी भावना, बोध तथा सराहना की अग्नि को प्रज्वलित करते हैं। हम संसार के सतही यथार्थ के नीचे झाँकते हैं। हम अपनी कल्पना को आजाद कर देते हैं।

कलाएँ महत्त्वपूर्ण क्यों हैं?

1. वे ऐसी भाषाएँ होती हैं जिन्हें सभी लोग बोलते हैं, और जो नस्लीय, सांस्कृतिक, सामाजिक, शैक्षिक तथा आर्थिक अवरोधों को पार करती हुई सांस्कृतिक सराहना और जागरूकता को समृद्ध बनाती हैं।
2. वे उतनी ही महत्त्वपूर्ण सांकेतिक व्यवस्थाएँ होती हैं जितनी अक्षर तथा संख्याएँ होती हैं।
3. वे मन, शरीर तथा आत्मा का एकीकरण करती हैं।
4. वे आन्तरिक संसार को बाहर के स्थूल यथार्थ वाले संसार में लाकर आत्म–अभिव्यक्ति के लिए अवसर प्रदान करती हैं।
5. वे "प्रवाही अवस्थाओं" तथा चरम अनुभवों में प्रवेश करने के मार्ग प्रस्तुत करती हैं।
6. वे प्रेरणा, शिक्षण, आकलन और व्यावहारिक उपयोग के बीच अखण्ड सम्बन्ध निर्मित करती हैं जिसके परिणामस्वरूप गहरी समझ बनती है।
7. वे प्रक्रियाओं को शुरू से आखिर तक अनुभव करने का अवसर होती हैं।
8. वे स्वतंत्रता तथा सहयोग, दोनों का विकास करती हैं।
9. वे उत्तर के रूप में तत्काल प्रतिक्रिया और मनन करने के लिए अवसर प्रदान करती हैं।
10. वे व्यक्तिगत ताकतों को सार्थक तरीकों से उपयोग करना और इन ताकतों के द्वारा कभी–कभी कठिन अमूर्त अनुभूतियों तक समझ के पुल निर्मित करना सम्भव बनाती हैं।
11. वे प्रक्रिया तथा विषयवस्तु, दोनों के सीखने को मिला देती हैं।
12. वे परीक्षाओं के अंकों, रवैयों, सामाजिक कौशलों, समालोचनात्मक और सृजनात्मक सोच का संवर्धन करके अकादमिक उपलब्धियों को सुधारती हैं।
13. वे उच्च स्तर के सोचने के कौशलों (जिनमें विश्लेषण, संश्लेषण, मूल्यांकन और "समस्या–खोज लेना" शामिल रहते हैं) का अभ्यास करवाती और विकास करती हैं।
14. वे किसी भी वैकल्पिक आकलन कार्यक्रम के अनिवार्य रूप से आवश्यक अंग होती हैं।
15. वे हर विद्यार्थी को सीखने के साधन प्रदान करती हैं।

निष्कर्ष तथा कक्षा की सरल रणनीतियाँ :

हमारे स्कूलों में हमने कलाओं के लिए कुछ न्यूनतम प्रावधान किए हैं, परन्तु यदि विद्यार्थियों की विविधता पर गौर करते हुए विभिन्न विकल्प प्रदान करने पर विचारपूर्वक अधिक ध्यान दिया जाए तो वह मानवीय विकास के लिए सृजनशीलता और शिक्षा की ओर ले जाएगा। कलाओं के अभिव्यक्ति–सहायक तथा गैर–एकल स्वरूप में अक्षमता से ग्रस्त बच्चों को भी उपयुक्त वातावरण मिलने का अवसर रहता है। स्कूलों को निम्न बातों पर ध्यान केन्द्रित करने की जरूरत है :

- विभिन्न रूपों को और अधिक शामिल करना : प्रतिक्रियाओं को एक ही प्रकार में ढालने के बजाय विभिन्न प्रकारों के लिए अवसर देना।
- स्कूल के भिन्न–भिन्न परिवेशों की सर्वोत्तम पद्धतियों का अन्वेषण करना : दिन के लिए संगीत।
- क्षेत्रीय दिवस : ड्रमों, मुखौटों, वेशभूषाओं के संग्रहालयों का उपयोग करना।
- क्षेत्रीय कलाएँ एवं उत्सव : विभिन्न कलाकारों से सम्बन्ध जोड़ना।
- बच्चों के प्रति उन्मुख प्रायोजनाओं के लिए कलाकारों से सम्पर्क करना।

कक्षा की गतिकी के लिए कुछ विचार

- कहानियाँ पढ़ें, साथ–साथ हँसें, बच्चों को पात्रों का अभिनय करने को प्रोत्साहित करें, आवाजों के उतार–चढ़ावों का उपयोग करें।
- काल्पनिक खेल के दौरान घर–गृहस्थी के या गुड़ियों के कोने में होने वाली चाय–पार्टियों में शामिल हों।
- घर–गृहस्थी/पोशाक धारण करने के कोने में परिवर्तन करके उसे बच्चों की अलग–अलग संख्या वाले घरों में बदल दें, या उसे तीन भालुओं की कहानी के पात्रों का मंच बना दें। गृहस्थी के उसी कोने को एक राकेट, पानी के जहाज या डाक्टर के दवाखाने में बदल दें।
- लकड़ी के ब्लॉक्स से मीनारें या पुल निर्मित करने के लिए बच्चों के साथ खेलें। उनके विभिन्न भूदृश्यों को रचने के लिए छोटी–छोटी पत्तियों या पुराने गत्ते के डिब्बों को जोड़ दें।
- बच्चों से बात करने के लिए और उन्हें नए गीत तथा उंगलियों के संचालन का खेल सीखने में मदद करने के लिए कठपुतलियों को आमंत्रित करें।
- नए प्रयोजनों तथा नए कार्यों के लिए स्थान बनाने को प्रोत्साहित करने के लिए कक्षा के फर्नीचर की व्यवस्था में बदलाव करें।
- साथ मिलकर खाना खाने के लिए या कहानियाँ सुनने के लिए सामान्य मेज के बजाय फर्श का इस्तेमाल करें।
- बच्चों को समय बिताने के लिए या पहेलियाँ हल करने के लिए छोटे–छोटे कोने बनाएँ।
- रोजमर्रा की आम वस्तुओं को नए उपयोगों के लिए इस्तेमाल करें। उदाहरण के लिए, एक रबड़ की गेंद को रंग में डुबोकर उससे चित्र बनाएँ या एक किताब को एक बात करने वाली कठपुतली में बदल दें, या एक मेज को उलट कर उसकी नाव बना दें।







आशा सिंह दिल्ली के लेडी इरविन कालेज में प्रोफेसर हैं। वे वहाँ मानवीय विकास पढ़ाती हैं। शिक्षा में कलाओं का उपयोग करना उनकी रुचियों का प्रमुख क्षेत्र है। उन्होंने शिक्षा में नाट्यकला (थिएटर) के क्षेत्र में काम किया है। पढ़ाने के अलावा, शिक्षा के उपकरण की तरह नाट्यकला का उपयोग करने के लिए, साथ ही आत्म–चिंतन प्रक्रिया को आरम्भ करने के लिए, वे शिक्षकों तथा बच्चों के साथ काम करती हैं। नाट्यकला में उनकी रुचि तथा नृत्य में प्रशिक्षण ने कक्षा की अभिनव शिक्षण तकनीकों को बढ़ावा दिया है। वे प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के मुद्दों को भी समय देती हैं। वे प्रारम्भिक बाल्यावस्था के स्तर से लेकर प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा पर शिक्षकों के साथ घनिष्ठ रूप से काम करती हैं। उनसे asha.singh903@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : सत्येन्द्र त्रिपाठी



प्रारम्भिक शिक्षा में मातृभाषा बनाम अँग्रेजी

अजीत मोहन्ती

उड़ीसा के गजपति जिले के तुमूलो गाँव की साओरा जनजाति की पिंकी जब पैदा हुई थी, तो उसके माता–पिता खुश थे। "हमारी पिंकी स्कूल जाएगी", पिता ने कहा। पिंकी की माँ यह सुनकर खुश हुई थी। "यह तो बहुत अच्छा होगा। हम तो इतने सौभाग्यवान नहीं थे, लेकिन पिंकी जरूर शिक्षा पाएगी", उसने कहा। पिंकी बड़ी हुई, उसने चलना शुरू किया और जल्दी ही वह अपने पिता की उँगली पकड़कर गाँव के बाजार जाने लगी। अपने खेलने–कूदने के पूरे समय के दौरान वह हँसती रहती और कुछ शब्द बोलती, बहुत स्पष्ट तो नहीं लेकिन आसपास के सभी लोग उसकी तुतलाहट से खुश प्रतीत होते। जल्दी ही उसने अपने माता–पिता, गाँव वालों और दूसरे बच्चों से बात करने के लिए साओरा भाषा में टूटे–फूटे वाक्य बोलना शुरू कर दिए। वह अपने माता–पिता को साओरा में सम्बोधित करती, गाँव के पेड़–पौधों, फलों, फूलों और जानवरों को भी साओरा नामों से ही बुलाती थी। अपने पिता के कन्धों पर घूमते हुए, वह उनके साथ बगाडा(उड़ीसा में आदिवासी जनजातियों के खेतों का एक प्रकार) जाते वक्त रास्ते में दिखने वाली सभी तितलियों को बड़ी प्रसन्नता से गिनती जाती। गाँव वाले पिंकी से बड़े प्रभावित थे; "यह बड़ी होशियार लड़की है!" वे कहते थे।

एक दिन गाँव के शिक्षक ने कहा, "वह छह साल की हो चुकी है। उसे स्कूल भेजो।" पिंकी के माता–पिता उसे दाखिले के लिए स्कूल ले जाते हुए बड़े खुश थे। पिंकी भी बहुत खुश थी। उसे अपने स्कूल से नई किताबें और कॉपियाँ मिलीं और उसने बड़े गर्व से उन्हें अपनी माँ को दिखाया माँ बोली, "तुम्हारे शिक्षक तुम्हें इन किताबों को पढ़ना सिखाएँगे। मुझे तो पढ़ना आता ही नहीं।"

पिंकी रोज स्कूल जाती थी। लेकिन, धीरे–धीरे वह चुप होती चली गई। "तुमने स्कूल में क्या किया?" एक दिन उसकी माँ ने पूछा। पिंकी ने कोई जवाब नहीं दिया उसके पिता ने कहा, "क्या तुम्हारे शिक्षक ने तुम्हें यह किताब पढ़ना सिखाई? मुझे एक कहानी पढ़कर सुनाओ।" पिंकी चुप रही। धीरे–धीरे वह और ज्यादा चुप होती गई और उदास रहने लगी। वह स्कूल जाने में भी नियमित नहीं रह गई।

एक दिन पिंकी के शिक्षक बाजार में उसके पिता से टकरा गए, "पिंकी नियमित रूप से स्कूल नहीं आती। और जब भी मैं उससे कोई सवाल पूछता हूँ, वह अपना सिर झुका लेती है और कुछ बोलती नहीं।" उसके पिता को यह सुनकर अच्छा नहीं लगा। "तुम स्कूल क्यों नहीं जाती हो? शिक्षक को जवाब भी नहीं देती, ऐसा क्यों?" पिता ने घर आकर पिंकी से पूछा। "शिक्षक जो कुछ भी कहते हैं वह मुझे समझ नहीं आता। मैं तो किताबों में सिर्फ चित्र देखती हूँ, शिक्षक जो भी किताब में से पढ़ते हैं, वह मुझे समझ नहीं आता।" उसके पिता उसकी बात समझ गए। स्कूल के शिक्षक उड़िया में बोलते हैं जो पिंकी को समझ नहीं आती। पिता को खुद अपना बचपन याद आ गया; उन्होंने भी भाषा की इसी कठिनाई के चलते स्कूल छोड़ दिया था। वह भाषा साओरा नहीं थी। जल्दी ही पिंकी ने भी स्कूल जाना बन्द कर दिया।

पिंकी और उसके पिता अकेले नहीं हैं। लाखों बच्चे ऐसे स्कूल छोड़ने के लिए मजबूर हो जाते हैं जो बच्चों पर कोई भाषा थोप देते हैं और उस भाषा की अनदेखी करते हैं जिसमें उन्होंने बोलना, अपने माता–पिता को सम्बोधित करना, पेड़–पौधों, फलों, फूलों, जानवरों, पर्यावरण और अपने परिवार तथा सदस्यों को जानना सीखा हो। किसी

[1] Bagada is a special cultivation site for the tribal people in Odisha.

बच्चे की प्रारम्भिक भाषा उसकी पहली पहचान की, उसके सभी शुरुआती अनुभवों और सीखों की, अपने दोस्तों व बड़ों के साथ उसके सम्बन्धों, और अपनी समझ और समाधानों को तलाशने की उसकी कोशिशों की भाषा होती है। यह भाषा उसके घर, परिवार, समुदाय और गाँव के लिए पर्याप्त होती है, और वह उसे अपनी सामाजिक दुनिया के साथ प्रभावशाली ढंग से तालमेल बनाकर चलने की ताकत देती है। लेकिन, जब एक बच्चा स्कूल में दाखिल होता है, तो सब कुछ बदल जाता है। स्कूल उसके लिए अपने दरवाजे खोल तो देता है पर उसके और उसकी कक्षा के बीच एक अदृश्य और मजबूत दीवार होती है। स्कूल की प्रबल भाषा के आगे अचानक उसकी अपनी भाषा बेकार और छोटी बन जाती है। उसकी सारी समझ, उसके अनुभव और उसके स्रोतों का मोल अचानक से घट जाता है। उसकी भाषा अब उसका सबल पक्ष नहीं रह जाती बल्कि वह एक बोझ बन जाती है। स्कूल की भाषा उसके लिए अनजान होती है और उसका उसके बचपन, उसके अनुभवों, उसकी रचनाओं और उसके ज्ञान से कोई वास्ता नहीं होता। वह एक ऐसी भाषा के बोझ को कैसे सम्भालेगा जो उसकी पहचान का अवमूल्यन कर देता हो और उसे अपने ही अनुभवों से दूर कर देता हो? इसलिए कोई अचरज की बात नहीं कि कई बच्चे इस अपरिचित भाषा के बोझ तले स्कूल छोड़ने को मजबूर हो जाते हैं।

यह जरूर सच है कि आज की दुनिया में, खासतौर पर हमारे जैसे बहुभाषाई देश में, एक भाषा पर्याप्त नहीं हो सकती, स्कूल की पढ़ाई में कई भाषाओं का शामिल होना जरूरी है – मातृभाषा, उस क्षेत्र की भाषा जैसे तमिल, पंजाबी या बंगाली, राष्ट्रीय स्तर की भाषाएँ जैसे हिन्दी और अन्तर्राष्ट्रीय भाषा जैसे अँग्रेजी। पर, बच्चों को स्कूल में ऐसी भाषा क्यों सीखना चाहिए जो उन्हें पहले से ही आती हो? हम किसी दूसरी बड़ी भाषा को सिखाने की शुरुआत कुछ जल्दी क्यों नहीं कर सकते? मातृभाषा तो जरूरी है क्योंकि बच्चों की प्रभावी स्कूली शिक्षा के लिए आधारभूत ज्ञान का शाब्दिक संकेतों में निरूपण (एनकोडिंग) उनको समझ में आने वाली और उनकी अभिव्यक्ति की भाषा में ही किया जाता है। यह भाषा उन्हें स्कूल के लिए तैयार कर देती है, पर इसके साथ ही, उन्हें भी अपने भाषा कौशलों को और निखारना चाहिए। भले ही बच्चे अपनी शुरुआती भाषा में दक्ष प्रतीत हों, उसका प्रमुख उपयोग उनके घर और समुदाय के एकदम निकट के परिवेश में सन्निहित सामाजिक और अन्तर्वैयक्तिक संवादों में ही होता है। दूसरी तरफ, स्कूल के सीखने में जटिल और गूढ़ अवधारणाओं को समझने, तथा इन अवधारणाओं में महारत हासिल करने, प्रश्नों को सुलझाने, खुद की सोच को नियंत्रित करने और स्वयं भाषा (सोच के विषय के रूप में) के बारे में सोचने के लिए भाषा का उपयोग करना शामिल रहता है। स्कूली शिक्षा और प्रारम्भिक साक्षरता शिक्षा बच्चों को भाषा के सामाजिक और प्रासंगिक उपयोग के परे जाकर व्यवस्थित सोच, संज्ञान और अकादमिक शिक्षा के लिए उपयोग के ऊँचे स्तरों तक पहुँचने में समर्थ बनाती है। बच्चों की प्रारम्भिक भाषा इस संज्ञानात्मक और अकादमिक स्तर के मुताबिक विकसित होना चाहिए। उनके पास शैक्षिक उपलब्धि के लिए भाषा के उपयोग के बारे में सोचने के लिए तथा दूसरी भाषाएँ सीखने के लिए योग्यता होना चाहिए।

स्कूल में दाखिले होने पर, भाषाई अल्पसंख्यक और जनजातीय समुदायों के बच्चों पर एक ऐसी प्रबल स्कूली भाषा लाद दी जाती है जिससे उनका बहुत मामूली परिचय होता है या कोई परिचय नहीं होता। समझ न आने के बोझ और उसके परिणामस्वरूप सामने आने वाली स्कूली असफलता के अलावा स्कूली भाषा इन बच्चों के भाषाई कौशलों को सामान्य अन्तर्वैयक्तिक संवाद से आगे नहीं ले जा पाती, और इसका उनकी मातृभाषा पर नकारात्मक या ऋणात्मक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि प्रधान स्कूली भाषा को सीखने के चक्कर में उनके मातृभाषा कौशल क्षीण हो जाते हैं। जहाँ किसी भाषा में बुनियादी अन्तर्वैयक्तिक संवाद कौशल के विकास में दो से तीन साल लग जाते हैं, वहीं संज्ञानात्मक और अकादमिक भाषा कौशल कहीं अधिक धीरे विकसित होते हैं और उसमें करीब छह से आठ साल लगते हैं। इस प्रकार, मातृभाषा को कम से कम छह सालों तक प्रारम्भिक शिक्षा तथा औपचारिक स्कूली शिक्षा की भाषा के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए, ताकि बच्चे शैक्षणिक सफलता को सुनिश्चित करने के साथ ही ऊँचे दर्जे की सोच के लिए, प्रश्नों व समस्याओं को हल करने के लिए और बहुभाषाई दक्षता के लिए भाषा का इस्तेमाल करने की क्षमता विकसित करें। दरअसल, मातृभाषा में प्रारम्भिक शिक्षा होने से बाद में अन्य भाषाएँ सीखने में कोई अड़चन नहीं आती।

यद्यपि बच्चे उनके विकास के प्रारम्भ में कई भाषाओं में संवादात्मक और सामाजिक अभिव्यक्ति की योग्यता विकसित कर सकते हैं, पर वे दूसरी भाषाओं में ऊँचे दर्जे की साक्षरता और अकादमिक कौशल तब कहीं ज्यादा तेजी से हासिल करते हैं जब उनके मातृभाषा सम्बन्धी कौशल प्रारम्भिक सामाजिक उपयोग से कहीं ज्यादा विकसित होते हैं। यही मातृभाषा पर आधारित बहुभाषाई शिक्षा का बुनियादी सिद्धान्त है।

बच्चे जब स्कूल जाना शुरू करते हैं तो वे कोरी स्लेट नहीं होते, बल्कि उनके पास ज्ञान का अच्छा–खासा भण्डार होता है। उनकी भाषा, अनुभव और समझ वे संसाधन होते हैं जिनके आधार पर वे प्राथमिक स्कूलों में भाषा और साक्षरता, गणितीय सिद्धान्तों, पर्यावरण सम्बन्धी जागरूकता के क्षेत्रों में आगे विकास करते हैं। प्रारम्भिक बाल्यावस्था और अनौपचारिक सांस्कृतिक अनुभव से औपचारिक स्कूली शिक्षा की तरफ बढ़ना हर बच्चे के लिए एक महती चुनौती होती है। घर से स्कूल की दूरी केवल भौतिक नहीं होती, बल्कि यह स्कूली शिक्षा के लिए संज्ञानात्मक, क्रियात्मक और सामाजिक तैयारी की मनोवैज्ञानिक दूरी भी होती है। इसलिए, स्कूल में दाखिला लेने से पहले, 2 से 6 साल की उम्र के बीच, बच्चों का मनोवैज्ञानिक, शारीरिक, सामाजिक और बौद्धिक रूप से तैयार होना जरूरी है ताकि वे औपचारिक स्कूली शिक्षा का लाभ ले सकें। प्रारम्भिक बाल्यावस्था की शिक्षा ऐसी ही तैयारी के विकास के लिए होती है, जिसमें भाषा एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था की शिक्षा, सामाजिक संवादों के कौशलों से निर्मित हुई बच्चों की भाषा के विकसित होकर उसका सोचने और कक्षा में प्रभावी ढंग से सीखने के लिए उपयोग करने के बीच सेतु बनाने का काम करती है। 20 सितम्बर, 2013 को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखभाल और शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) की राष्ट्रीय नीति को स्वीकार किया जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को सुनिश्चित करने के लिए सम्पूर्ण विकास और समान मौके देने वाली स्कूली शिक्षा के लिए जरूरी तैयारी के रूप में बच्चे की मातृभाषा में शिक्षा दिए जाने को अनिवार्य बनाती है। छह साल से कम उम्र के लगभग 16 करोड़ बच्चों में से 4.5 करोड़ बच्चे प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के निजी कार्यक्रमों में भाग लेते हैं, जिनका शुल्क देने के लिए उनके माता–पिता के पास साधन होते हैं। करीब 7.5 करोड़ बच्चे सरकार की समेकित बाल विकास योजना के ई.सी.सी.ई. कार्यक्रमों (जैसे आँगनवाड़ी) में हैं। बाकी 4 करोड़ बच्चों के लिए ई.सी.सी.ई. का कोई मौका नहीं है।

इस प्रकार, प्रारम्भिक बाल्यावस्था वाले वर्षों के दौरान मानव संसाधनों और सम्भावनाओं के विकास के अवसरों में एक अन्यायपूर्ण भेदभाव मौजूद है। आशा है कि यह नीति पत्र जो न्यूनतम ई.सी.सी.ई. मानकों को निर्धारित करता है, ऐसे भेदभाव से प्रभावशाली ढंग से निपट सकेगा। नीति पत्र का खण्ड 5.2.4 कहता है कि, "बच्चे की मातृभाषा या घर की भाषा ही ई.सी.सी.ई. कार्यक्रमों के क्रियाकलापों की प्राथमिक भाषा होगी"। नीति पत्र में यह भी कहा गया है कि इस उम्र में छोटे बच्चों की कई भाषाएँ सीखने की क्षमता को देखते हुए, मौखिक रूप में राष्ट्रीय, क्षेत्रीय भाषा या अँग्रेजी से भी जरूरत के मुताबिक परिचय कराने की सम्भावना को टटोला जा सकता है। इस प्रकार, ई.सी.सी.ई. नीति बच्चे के सोचने और तर्क करने के कौशलों को व्यवस्थित रूप देने के लिए तथा संज्ञानात्मक और शैक्षिक विकास के लिए मातृभाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करती है, और साथ ही शोध से प्राप्त इन सशक्त जानकारियों को भी स्वीकार करती है कि बहुभाषाई बच्चे अपने एकभाषाई साथियों की तुलना में ज्यादा बुद्धिमान और सृजनशील होते हैं। समस्या बहुभाषावाद के विकास के साथ नहीं है; समस्या गैर मातृभाषा में प्रारम्भिक शिक्षा देने से खड़ी होती है।

दुर्भाग्यवश, माता–पिता अधीर होते हैं – वे अपने बच्चे की शिक्षा में अँग्रेजी को बहुत जल्दी ले आना चाहते हैं। अँग्रेजी सत्ता, प्रगति और आर्थिक अवसरों की भाषा प्रतीत होती है, और इसलिए लोगों को घरों में तथा प्रारम्भिक बाल्यावस्था की शिक्षा तथा स्कूली शिक्षा में अँग्रेजी को जल्दी से जल्दी लाने की सनक है। बहुत छोटे और मासूम/अविकसित बच्चों को अँग्रेजी पढ़ाने की लालसा इस कदर व्याप्त है कि अगर कोई माँ के गर्भ में पल रहे शिशुओं के लिए भी जन्म–पूर्व अँग्रेजी शिक्षा देने का प्रस्ताव रखे, जैसा कि पौराणिक अभिमन्यु ने युद्धकला सीखी थी, तो इसे लेने के लिए भी लम्बी कतारें लग जाएँगी। अँग्रेजी के लिए यह मौजूदा पागलपन कोरी नासमझी है और शिक्षा के इस

जाने–पहचाने सिद्धान्त के विपरीत भी है कि मातृभाषा ही गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तथा अँग्रेजी सहित कई भाषाओं की प्रभावी शिक्षा का राजसी मार्ग है। आधुनिक अभिमन्युओं को इतनी जल्दी अँग्रेजी की जरूरत नहीं है; उन्हें अच्छी देखभाल, संस्कार और मातृभाषा–आधारित गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की आवश्यकता है।







अजीत मोहन्ती एन.एम.आर.सी. के मुख्य सलाहकार हैं। पूर्व में वे जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली में प्राध्यापक एवं आई.सी.एस.एस.आर. के राष्ट्रीय फैलो थे। वे फुलब्राइट अतिथि प्राध्यापक (कोलम्बिया विश्वविद्यालय), फुलब्राइट सीनियर स्कॉलर (विस्कॉन्सिन), किलम स्कॉलर (अलबर्टा) भी रह चुके हैं। बहुभाषाई शिक्षा पर अपने काम के लिए प्रसिद्ध मोहंती ने नेपाल और उड़ीसा (भारत) के लिए एम.एल.ई. नीति तैयार की। वे भारत की राष्ट्रीय मनोविज्ञान अकादमी तथा अमेरिका की एसोसिएशन ऑफ साइकलॉजिकल साइंस के फैलो हैं। उनसे ajitmohanty@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी



प्रारम्भिक वर्षों में भाषा एवं साक्षरता सीखना:कैसे होना चाहिए?

शैलजा मेनन

एक 6 साल का लड़का राजू[1] शिक्षिका द्वारा दिखाए गए हाथी के चित्र को बहुत ध्यान से देखता है।

"इस चित्र में क्या है?", शिक्षिका कन्नड़ में पूछती है।

"अन्ने" (हाथी), राजू अपनी स्थानीय कन्नड़ भाषा में उत्तर देता है।

शिक्षिका एक क्षण के लिए परेशान दिखती है, उसे पता है कि वह सही कह रहा है, ; लेकिन शब्द "अन्ने" अक्षरों की उस शृंखला में नहीं बैठता जिसे पढ़ाने की उससे अपेक्षा की गई है।

"हाँ, तुम्हारी बात सही है", वह कहती है, "परन्तु इसके लिए एक और शब्द है – सलग (बड़े दाँतों वाला हाथी)। क्या शब्द है?"

राजू उत्तर नहीं देता।

"सलग", शिक्षिका जोर देकर कहती है, और फिर, अगली तस्वीर पर जाने से पहले, राजू से उसे दुहराने को कहती है। तीन और चित्रों को पूरा करने के बाद, शिक्षिका फिर से पहले कार्ड पर लौटती है।

"यह क्या है?", वह पूछती है।

"अन्ने" , राजू कहता है।

"हाँ, सही है, लेकिन याद करो मैंने तुम्हें उसके लिए एक दूसरा शब्द बताया था – सलग? कहो सलग। "

राजू आज्ञाकारी ढंग से दोहराता है।

तस्वीरों के तीन और कार्डों के बाद, जब राजू से फिर पूछा जाता है तो वह लौटकर फिर "अन्ने" पर ही टिका रहता है।

शिक्षिका और ज्यादा अधीर होती जाती है।

अन्तिम दौर के सवाल–जबाव में, राजू उस चित्र कार्ड के उत्तर में कहता है, "मुझे मालूम नहीं।"

यह संक्षिप्त वर्णन फरवरी 2013 में लिरिल (LiRIL) परियोजना पर किए गए क्षेत्र कार्य से लिया गया है।[2]

यह उदाहरण भारतीय भाषाओं में साक्षरता शोध परियोजना (Literacy Research in Indian Languages (LiRIL) project)[3]–जो वर्तमान में यादगीर (यादगीर जिला), कर्नाटक, तथा सोनाले (थाणे जिला)



महाराष्ट्र में चलाई जा रही है – के दौरान दर्ज किए गए एक वार्तालाप से लिया गया है। यह प्रारम्भिक भाषा सीखने के बारे में ऐसे महत्त्वपूर्ण और रोचक प्रश्न उठाता है जिन पर इस क्षेत्र में काम करने वाले लोगों तथा विद्वानों के द्वारा समान रूप से अधिक ध्यान देना जरूरी है।

हम प्रारम्भिक भाषा तथा साक्षरता सीखने के बारे में क्या जानते हैं?

भारतीय कक्षाओं में राजू जैसे अनेक बच्चे पहली पीढ़ी के सीखने वाले होते हैं या सामाजिक–आर्थिक रूप से पिछड़े हुए क्षेत्रों से आते हैं। हो सकता है कि ऐसे बच्चों का स्कूल जाने के पहले छपे हुए शब्द से बहुत सीमित सम्पर्क हुआ

[1]The name been changed to protect identity of the student.
[2]This vignette is drawn from the work of BinduThirumalai, who completed an internship on the LiRIL project from Feb-April 2013.
[3]This is a longitudinal project that is funded jointly by Sir Ratan Tata Trust and AzimPremji University; and includes field partner organizations, QUEST (Sonale, Maharashtra) and Kalike (Yadgir, Karnataka). The detailed field observations conducted by Research Associate, Neela Apte, are foundational to this paper.

हो। हो सकता है कि उनके पास घरों में या उनके समुदायों में ऐसे लोग न हों जो अपने स्वयं के जीवन में छपे हुए शब्द को कारगर ढंग से उपयोग करते हों। सामाजिक–आर्थिक रूप से अधिक उन्नत पृष्ठभूमियों से आने वाले उनके साथियों की तुलना में हो सकता है कि उनकी शब्दावली तथा अन्य मौखिक कौशल भी काफी सीमित हों।

किसी भी प्रारम्भिक भाषा सीखने के कार्यक्रम के सन्दर्भ में (विशेष रूप से उनमें जो वंचित आबादियों की सहायता के लिए हों) शुरुआती कक्षाओं में शिक्षकों के प्रमुख कार्यों में से एक उन मौखिक भाषा(ओं) को मजबूत बनाना और उनका विस्तार करना होता है जिन्हें बच्चे अपने घरों तथा समुदायों से लेकर स्कूल आते हैं। साथ ही पाठ्यक्रमों की लिखित व्यवस्था की समझ निर्मित करने में बच्चों की मदद करना भी इस जिम्मेदारी का हिस्सा है। यहाँ दी गई तालिका 1 उन तीन केन्द्रीय कार्यों का संक्षिप्त विवरण देती है जिनमें भाषा तथा साक्षरता सीखने वाले छोटे बच्चे संलग्न रहते हैं। यह उन सिद्धान्तों का भी उल्लेख करती है जो उन्हें इन कार्यों को सफलतापूर्वक करने में मदद कर सकते हैं।

तालिका 1
भाषा सीखने के सिद्धान्त

बच्चा क्या कर रहा है?	**ई.सी.सी.ई. के सिद्धान्तों पर आधारित कार्यक्रम को जैसा होना चाहिए :**
घर से स्कूल के वातावरण में स्थानांतरित हो रहा है	• घर से स्कूल के बीच पाठ्यक्रमिक तथा शैक्षिक पुल निर्मित करना चाहिए। • भाषा तथा साक्षरता सीखने के बड़े लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए; इस प्रक्रिया को अर्थपूर्ण तथा उद्देश्यपूर्ण बनाना चाहिए।
मौखिक भाषा विकसित कर रहा है	• मौखिक भाषा सीखने, शब्दावली हासिल करने तथा अर्थ निर्मित करने का विस्तार करने के लिए समृद्ध अवसर प्रदान करना चाहिए। • ऐसी भाषा का उपयोग करना चाहिए जो ज्ञात से नए की ओर बढ़ती हो।
लिखित भाषा से परिचित हो रहा है	• बच्चों को मौखिक तथा लिखित भाषा के बीच के सम्बन्धों (समानताओं तथा अन्तरों) से परिचित कराना चाहिए। • लिखित भाषा के उपयोग के लिए अर्थपूर्ण सन्दर्भों को स्थापित करना चाहिए। • ध्वनि–संकेत सम्बन्धों से बच्चों को परिचित कराना चाहिए।

सिद्धान्त 1: घर से स्कूल के वातावरण में सफल स्थानांतरण सम्भव बनाएँ

पहला सिद्धान्त सुझाता है कि प्रारम्भिक वर्षों की अपनी स्कूली शिक्षा के दौरान छोटे बच्चे घर से निकलकर स्कूल के वातावरण से तालमेल बिठाने में लगे रहते हैं; यह एक महत्त्वपूर्ण स्थानांतरण होता है, और सीखने वालों के लिए इसे करना अकसर आसान नहीं होता। जिन विद्वानों ने विभिन्न सामाजिक–आर्थिक सन्दर्भों में प्रारम्भिक साक्षरता सीखने पर शोध किया है, उन्होंने पाया है कि समाज के अत्यधिक वंचित सामाजिक–आर्थिक तबकों से आने वाले बच्चों की अपेक्षा मध्यम वर्ग की आबादियों के लिए स्कूल की भाषा उनके घर की भाषा से अधिक मिलती–जुलती है (उदाहरण के लिए, हीथ, 1982; पर्सेल–गेट्स, 1997)। भारत जैसे बहुभाषी समाज में, अकसर स्कूल जाने में बच्चों से भाषा तथा बोली के अवरोधों को पार करने की अपेक्षा की जाती है। जब स्कूल तथा घर की भाषाएँ समान होती हैं, तब भी बच्चों को स्कूल में उपयोग की जाने वाली शब्दावली तथा वार्तालाप में चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है (जैसा कि राजू के मामले में जो कन्नड़–माध्यम के स्कूल में पढ़ने वाला एक देशज कन्नड़–भाषी बच्चा है)। प्रसिद्ध ब्राजीली शिक्षाविद पाउलो फ्रेयर मानते थे कि शब्द को पढ़ना संसार को पढ़ने से

जुड़ा रहता है; सच्चे सीखने तथा सशक्तीकरण के लिए, लोगों के संसार और उनके शब्दों को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना जरूरी है (फ्रेयर एवं मेकदेव, 1987)।

यदि हम इस आलेख के आरम्भ में दिए गए उदाहरण पर लौटें, तो हम देखते हैं कि उस बच्चे ने शुरुआत यह सोचने से की थी कि उसे मालूम था कि वह चित्र क्या था, लेकिन अन्त में वह कहता है कि, "मैं नहीं जानता"। यह "मैं नहीं जानता" अतीत और भविष्य के ऐसे अनेक वार्तालापों की ओर इशारा करता है, ऐसे वार्तालाप जो स्कूल और पाठ्यपुस्तकों के संसार से अलगाव पैदा करने की ओर ले जा सकते हैं। इस बात पर गौर किया जाना जरूरी है कि यह बच्चे के शब्दों को पाठ्यपुस्तकों के अधिक औपचारिक और अपरिचित शब्दों के द्वारा विस्थापित किए जाने के हमारी परियोजना में दर्ज किए गए कई ऐसे उदाहरणों में से सिर्फ एक है। हम पूछ सकते हैं कि एक छह साल के बच्चे को क्यों ऐसी स्कूली पढ़ाई में रुचि बनाए रखना और जुटे रहना चाहिए जो लगातार अपने शब्दों से उसके शब्दों को हटाती जाती है, और उसे "जानने" की स्थिति से "मैं नहीं जानता" की स्थिति में ले जाती है?

सिद्धान्त 2 : मौखिक भाषा का विकास तथा विस्तार करें

सभी स्कूल–आधारित सीखना मजबूत मौखिक भाषा कौशलों की बुनियाद पर निर्मित होता है। स्कूल में इस्तेमाल की जाने वाली मौखिक भाषा में निपुणता के बिना, बच्चा शब्दावली और उसका अर्थ समझने के साथ संघर्ष करता रहेगा। यह समझ को विकसित करने के लिए और लिखने को सुगम बनाने के लिए बेहद जरूरी है। जिन बच्चों की घर की भाषा वही है जो स्कूल की है, उनके लिए भी मौखिक भाषा का विस्तार करने के नियोजित और सतत अवसर महत्त्वपूर्ण होते हैं। यह बच्चे की (ज्ञात) शब्दावली को अज्ञात (अधिक औपचारिक) शब्दों द्वारा विस्थापित करने भर से नहीं होगा। मौखिक भाषा का विकास विभिन्न प्रकार के ऐसे तरीकों से घटित होता है जिनमें विस्तृत वार्तालाप, चर्चाएँ, कहानी सुनाने, और किताबें पढ़ने के अवसर, तथा लिखने के अवसर, आदि शामिल रहते हैं। मौखिक भाषा तथा समझने को विकसित करने के लिए बातचीत को अकसर "औजारों का औजार" कहा गया है। इसलिए प्रारम्भिक भाषा सीखने के वातावरणों को ऐसे स्थान होना चाहिए जहाँ मौखिक भाषा को निरन्तर गढ़ा जाए, उसका अभ्यास किया जाए और मजबूत बनाया जाए।

लिरिल परियोजना में हमने गौर किया है कि जिन प्रारम्भिक भाषा कक्षाओं का हमने निरीक्षण किया है, उनमें मौखिक भाषा विकसित करने के अवसर बहुत नहीं होते, न ही वे पाठ्यक्रम में व्यवस्थित रूप से नियोजित किए गए होते हैं। जहाँ इसे शामिल किया गया है, वहाँ वह प्रतिदिन एक समूह गीत के गाकर पढ़े जाने के रूप में (उदाहरण के लिए यादगीर में) या गतिविधियों के बीच के समय को "भरने" के अनियोजित अंशों के रूप में (उदाहरण के लिए सोनाले में) प्रकट हुई है। जिन दो स्थानों पर हम काम कर रहे हैं, उनमें से कोई भी, समृद्ध चर्चा को सुगम बनाने के लिए, बच्चों के साहित्य को जोर से पढ़ने का या अनुभवों को आपस में साझा करने का उपयोग नहीं करते। इसके बजाय, ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों स्थानों पर लिपि पर अधिकार करने में निपुणता विकसित करने पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाता है।

सिद्धान्त 3 : लिखित भाषा से परिचय बनाने में सीखनेवालों की सहायता करें

यह सही है कि भाषा और साक्षरता सीखने वाले छोटे बच्चों को लिपि पर अधिकार करने में निपुणता हासिल करने के लिए व्यवस्थित अवसरों की जरूरत होती है। चूँकि, जिन प्रारम्भिक कक्षाओं में हमने काम किया हैं उनमें से अनेक में, यही पाठ्यक्रम के ध्यान का केन्द्र होता है, इसलिए हम पूछ सकते हैं कि क्या बच्चे लिपि में निपुणता विकसित कर रहे हैं? हमारे आँकड़े कुछ और दर्शाते हैं – यादगीर में तीसरी कक्षा के 33% बच्चे, और सोनाले में तीसरी कक्षा के तकरीबन 28% बच्चे दो अक्षरों के सरल शब्दों वाली एक शब्द–सूची को प्रवाहपूर्वक पढ़ने में असमर्थ थे। इससे भी अधिक संख्या में तीसरी कक्षा के बच्चे बहुत सरल, परिचित शब्दों वाले एक छोटे से गद्यांश का अर्थ निकालने में असमर्थ थे। ऐसा क्यों है?

इस असफलता के कारण जटिल हैं। इसके मुद्दों के विश्लेषण में ऐसा प्रतीत होता है कि इन कारणों में से एक यह हो सकता है कि जब लिखित भाषा को ऐसे अमूर्त संकेतों के समूहों में तोड़ा जाता है जिनका अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं होता, और उन्हें बच्चे को हर दिन नकल करके लिखने और याद करने के लिए दिया जाता है, तो इन संकेतों को सीखने के प्रति बच्चे का उत्साह निम्न स्तर पर पहुँच जाता है। जिम जी (2003) ने लिखा है कि अमेरिकी शहरों के भीतरी भागों में रहने वाले गरीबी से ग्रस्त परिवारों के बच्चों (जो साल दर साल अँग्रेजी वर्णमाला के 26 अक्षरों

को हासिल करने में असफल रहते हैं) को अमेरिका में लोकप्रिय पोकेमान कार्डों तथा खेलों से सम्बन्धित कहीं अधिक विस्तृत और जटिल अमूर्त संकेतों को हासिल करने में कोई समस्या लगती हुई प्रतीत नहीं होती। लगता है कि सीखने की प्रेरणा ही सफलता की कुंजी होती है। सिल्विया ऐश्टन–वार्नर ने न्यूजीलैंड की माओरी जनजातियों को पढ़ना सिखाने की अपनी नैसर्गिक पद्धति में इस सिद्धान्त का उपयोग किया। उन्होंने बच्चों से ऐसे शब्द चुनने को कहा जो उनके लिए महत्त्वपूर्ण थे। कोई भी शब्द निषिद्ध नहीं थे – भय, कामुकता, हताशा आदि सभी के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले शब्दों का उनकी कक्षाओं में स्वागत था। उनकी मौलिक पुस्तक 'टीचर' में वे लिखती हैं कि किस प्रकार बच्चे तुरन्त ऐसे शब्दों को सीख लेते थे जो नैसर्गिक रूप से उनके जीवन का हिस्सा होते थे।

इसकी तुलना हमारे देश के अनेक भागों में व्याप्त स्थिति से कीजिए, जहाँ अक्षरों को क्रम में सिखाया जाता है, या तो उन्हें एक प्रकार के तर्क के अनुसार (पारम्परिक वर्णमाला) या किसी दूसरे के अनुसार (अक्षरों के समूह बनाने के ज्यादा प्रायोगिक स्वरूप) व्यवस्थित किया जाता है। इनमें से अनेक, उदाहरण के लिए वे जिनका हमने यादगीर में निकट से निरीक्षण और दस्तावेजीकरण किया है, मात्राओं (गुणिताओं) – वे द्वितीयक संकेत जिनका उपयोग भारतीय भाषाओं में स्वर ध्वनियों को निरूपित करने के लिए किया जाता है – को तब तक बाहर रखती हैं जब तक बच्चे पहली कक्षा में काफी आगे तक नहीं पहुँच जाते। इसके परिणामस्वरूप, पहली पीढ़ी के सीखने वाले बच्चे स्कूली शिक्षा के पहले चार–पाँच महीनों तक ऐसी भाषा के सम्पर्क में लाए जाने के लिए स्कूल आते हैं जिसमें अधिकांश स्वर ध्वनियाँ नहीं होतीं। बगैर स्वरों के किस प्रकार के शब्द तथा विचार व्यक्त किए जा सकते हैं? किसी छह साल के बच्चे के लिए, स्वाभाविक रूप से सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण शब्द – मुझे, अम्मा, खाना, दोस्त, पेड़, स्कूल, भाई, बहिन, पिता, गाय, कुत्ता – पाठ्यक्रम से हटा दिए जाते हैं क्योंकि इनमें से प्रत्येक में या तो मात्राएँ होती हैं, या संयुक्ताक्षर – जुड़ी हुई व्यंजन ध्वनियाँ (उदाहरण के लिए, "अम्मा" में 'म्म' की ध्वनि – होती है। इसी कारण से बच्चे को "अन्ने" कहने की इजाजत नहीं दी जाती क्योंकि इस शब्द में एक संयुक्ताक्षर ('न्न') तथा एक मात्रा ('ए') है। सलग (बड़े दाँतों वाला हाथी) केवल इसलिए चुना जाता है क्योंकि वह उस समय पढ़ाए जा रहे अक्षरों के अनुमत संयोजन के अनुरूप है।

यह इस बारे में एक बड़ी भ्रान्ति को दर्शाता है कि भाषा सीखने वाले छोटे बच्चों को लिखित भाषा से परिचय प्राप्त करने का क्या मतलब है। लिखित भाषा से इस ढंग से परिचय करवाया जाना चाहिए कि वह मौखिक बोली से सहज रूप से जुड़ती हो, न कि उससे अलग हो। मौखिक भाषा तथा लिखित भाषा किस तरह काम करती हैं, उनमें समानताओं तथा अन्तरों को छोटे बच्चों को दिखाया जा सकता है – उदाहरण के लिए, हम अकसर वाक्यांशों में बात करते हैं, लेकिन हम लिखते पूरे वाक्यों में हैं। हमारी भाषा के नियमों का पालन भी बदल जाता है – जोर से पढ़ने, सामूहिक लेखन के अवसरों, तथा अन्य गतिविधियों के दौरान, बच्चों को ये बातें स्पष्ट रूप से दिखाई जा सकती हैं और उन पर चर्चा की जा सकती है। मारी क्ले ने 1970 के दशक में भाषा सीखने वाले छोटे बच्चों को "छपी हुई भाषा की अवधारणाएँ" – जैसे कि किताब को कैसे पकड़ा जाता है, लिपि को किस दिशा में पढ़ा जाता है, यह कि छपे हुए शब्दों में सन्देश निहित होते हैं (छोटे बच्चों में ज्यादातर सिर्फ चित्रों पर ध्यान देने की प्रवृत्ति होती है), इत्यादि – पढ़ाने के महत्त्व की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

स्वयं लिपि का परिचय और अभ्यास व्यवस्थित रूप से करवाया जाना बहुत जरूरी है – लेकिन आदर्श स्थिति में इस पर लगाया जाने वाला समय उस कुल समय का कुछ प्रतिशत ही होना चाहिए जो कक्षा में भाषा के शिक्षण में बिताया जाता है, यह प्रारम्भिक भाषा तथा साक्षरता सीखने के पाठ्यक्रम का मुख्य आधार नहीं होना चाहिए। हमारे शोध में हमने इस तथ्य को दर्ज किया है कि पहली और दूसरी कक्षाओं में भाषा शिक्षण के लिए दिए गए कुल समय का 73–81% तक निम्न–स्तरीय अर्थ करने तथा नकल करके लिखने में लग जाता है।

निष्कर्ष

इस आलेख में, मैंने उन कार्यों की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जिनमें भाषा सीखने वाले छोटे बच्चे उस दौर में संलग्न रहते हैं जिसमें वे घर से स्कूल के माहौल में स्थानांतरण करते हैं। साथ ही मैंने इन कार्यों में सफल होने के लिए बच्चों की मदद करने वाले कुछ शैक्षिक सिद्धान्तों को स्पष्ट किया है। ये सिद्धान्त उदाहरण के तौर

पर दिए गए हैं। वे कतई इसका सम्पूर्ण विवरण नहीं देते कि अच्छे भाषा तथा साक्षरता शिक्षण में क्या–क्या निहित हो सकता है। मैंने वास्तविक जमीनी मुद्दों का उदाहरण देने के लिए हमारी शोध परियोजना से मिली कुछ अन्तर्दृष्टियों का वर्णन करने का भी प्रयास किया है। हालाँकि ये मुद्दे जटिल हैं। इन्हें पूरी तरह समझने के लिए कहीं अधिक समय, चिन्तन और शोध की जरूरत है। फिर भी इस आलेख से कम से कम यह निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि प्रारम्भिक भाषा सीखने में पाठ्यक्रम को सीखने वाले से और सीखने वाले को पाठ्यक्रम से जोड़ने का महत्त्व केन्द्रीय और निर्णायक होता है।

References

1. Ashton-Warner, S. (1963/1986). Teacher. NT: Simon and Schuster.
2. Clay, M. M. (2000). Concepts about print: What have children learned about the way we print language? Birkenhead, Auckland, New Zealand: Heinemann.
3. Friere, P. &Macdeo, D. (1987). Literacy: Reading the Word and Reading the World. Santa Barbara, CA: Praeger.
4. Gee, J. P. (2003). What video games have to teach us about learning and literacy.NewYork: Macmillan.
5. Heath, S. B. (1982). What no bedtime story means: Narrative skills at home and school. Language in Society, 11, 49-76.
   Purcell-Gates, V. (1997).Other People's Words: The Cycle of Low Literacy.NY: Harvard University Press.

शैलजा मेनन वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु के स्कूल ऑफ ऐजुकेशन के भाषा तथा साक्षरता विभाग में शिक्षिका के रूप में कार्यरत हैं। उन्होंने यूनीवर्स्टी ऑफ मिशिगन, एन आर्बर से भाषा, साक्षरता तथा संस्कृति में पीएच.डी की उपाधि तथा मानवीय विकास और मनोविज्ञान में क्रमशः एम.एस.यू., बड़ोदा और दिल्ली विश्वविद्यालय से उपाधियाँ प्राप्त की हैं। शैलजा ने अमेरिका तथा भारत में विभिन्न शैक्षिक परिवेशों में काम किया है। बच्चों, शिक्षकों तथा शिक्षार्थी शिक्षकों में भाषा, साहित्य तथा साक्षरता के प्रति प्रेम जगाने में उनकी स्थाई रुचि है और वे इनको बढ़ावा देने के विभिन्न प्रयासों में संलग्न रहती हैं। वर्तमान में वे प्रारम्भिक साक्षरता पर कर्नाटक तथा महाराष्ट्र में संचालित की जा रही एक परियोजना में प्रमुख अन्वेषक हैं। उनसे shailaja.menon@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद : सत्येन्द्र त्रिपाठी



पढ़ने के प्रारम्भिक कौशलों को सिखाना

रिया बाजेली

भूमिका

पढ़ना सीखने की प्रक्रिया के बारे में अनेक अध्ययन तथा प्रकाशित पुस्तकें उपलब्ध हैं। पर, उनमें इस्तेमाल की जाने वाली भाषा का एक मतलब यह होता है कि केवल प्रारम्भिक वर्षों पर काम करने वाले पेशेवर लोगों की ही ऐसे ज्ञान तक पहुँच हो सकती है, जबकि वास्तव में बच्चों को सफल पढ़ने वाले बनने के लिए तैयार करने में अनेक व्यक्ति शामिल रहते हैं, चाहे वे यह जानते हों या नहीं।

शिक्षण के अपने कार्यकाल के दौरान एक समय मेरे स्कूल में प्रारम्भिक वर्षों की शिक्षा की जिम्मेदारी मेरे ऊपर थी और मैं प्रवेशिका–प्रथम वर्ष की कक्षा को पढ़ा रही थी। उस समय मैं एक ऐसे प्रधान शिक्षक की सहायक भी थी जिन्हें बहुत छोटे बच्चों के पढ़ाने का कोई अनुभव नहीं था। मुझे याद है कि हमारे साथ काम करना आरम्भ करने के थोड़े समय बाद ही उन्होंने मुझसे पूछा, 'छोटे बच्चे पढ़ना कैसे सीखते हैं?' मैं किसी प्रकार उन्हें यह समझाने में सफल हुई। अन्त में उन्होंने कहा, 'मेरा ख्याल है कि यदि माता–पिता यह सुन सकें तो वह काफी उपयोगी होगा।'

इसके परिणामस्वरूप हम एक वार्षिक 'पढ़ने की बैठक' विशेष रूप से उन माता–पिताओं के लिए आयोजित करने लगे जिनके बच्चों ने पहली बार स्कूल आना शुरू ही किया था। जैसे–जैसे वर्ष बीतते गए इन बैठकों में मेरा प्रस्तुतिकरण थोड़ा बदल गया, क्योंकि सिर्फ नवागत कक्षा के बच्चों के माता–पिता ही इन बैठकों में शामिल होना नहीं चाहते थे, बल्कि उन बच्चों के भी माता–पिता शामिल होना चाहते थे जो स्कूल की आगे की कक्षाओं में थे। उनसे मिलने वाली प्रतिक्रिया अत्यन्त सकारात्मक थी। अनेक माता–पिता साल दर साल इन बैठकों में आते रहे। उन्हें वह रोचक, समझने में आसान तथा प्रेरक लगता था, क्योंकि उन्हें इस बारे में स्पष्ट विचार दिए जाते थे कि उनके बच्चों के पढ़ना आरम्भ करने में मदद करने के लिए और एकबारगी बच्चों के स्वतंत्र पढ़ने वाले बन जाने के बाद उनको सहारा देने के लिए वे क्या कर सकते थे।

जन्म से लेकर स्वतंत्र रूप से पढ़ने की अवस्था तक पढ़ने के कौशलों को विकसित करने के लिए यहाँ दी जा रही सलाह, इन्हीं बैठकों की सामग्री का संकलन है। मैं आशा करती हूँ कि यह इस तरह लिखा गया है कि हर उस व्यक्ति को, जो बच्चों को पढ़ने के लिए तैयार करने में सहायता करने की कोशिश कर रहा है (जैसे कि माता–पिता, परिवार के सदस्य, नर्सरी में काम करने वाले, शिक्षण सहायक और साथ ही शिक्षक) यह समझने में आसान, तर्कपूर्ण और उपयोगी लगेगा।

पढ़ने के लिए आवश्यक कौशलों (पढ़ने के पूर्व–कौशलों) को बढ़ावा देना

प्रारम्भिक भाषा कौशल

जब कोई बच्चा पैदा होता है तो उसे प्रेम, पोषण और चाहत तथा सुरक्षित होने के बोध की जरूरत होती है। शिशुओं तथा बहुत छोटे बच्चों की देखभाल में संलग्न लोग इन सभी चीजों को प्रदान करने का भरसक प्रयास करते हैं, चाहे उनकी परिस्थितियाँ कितनी भी कठिन हों और चाहे वे संसार में कहीं भी हों।

जो परिवार अपने बच्चों से कोमल स्वर में और स्नेहपूर्वक बात करते हैं, उनकी आँखों से आँखें मिलाते हैं और प्रसन्न मुखमुद्राओं का उपयोग करते हैं, वे शिशुओं को सिखा रहे होते हैं कि सम्प्रेषण आसपास के संसार से पारस्परिक क्रियाकलाप का एक सुखद और उपयोगी साधन है।

ये वे पहली महत्त्वपूर्ण बातें हैं जिन्हें अपने प्रिय लोगों से जुड़ने के लिए सीखने की एक बच्चे को आवश्यकता होती है। उपयुक्त भाषा का उपयोग करते हुए सम्प्रेषण करने की योग्यता के बिना पढ़ना असम्भव और अर्थहीन होगा।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में, गीत, तुकान्त कविताएँ(राइम्स) और धुनें, ये सभी पढ़ने के लिए कौशलों को निर्मित करने में उपयोगी होते हैं। शैशव की पारम्परिक तुकान्त कविताओं की प्रकृति एक ऐसे माध्यम की होती है जिसके द्वारा छोटे बच्चे समान ध्वनियाँ सुनते हैं। इन कविताओं को याद करने में वे ऐसे श्रवण कौशल निर्मित करते हैं जो भविष्य में ध्वनि–आधारित सीखने में उनकी मदद करेंगे। मेरे अनुभव में, जो बच्चे ऐसी कविताओं से अपरिचित होते हैं, उनकी अपेक्षा अकसर वे बच्चे ज्यादा जल्दी पढ़ना सीखते हैं जो ऐसी कविताओं से स्कूल आने के पहले से परिचित होते हैं।



प्रारम्भिक बाल्यावस्था का एक अन्य नितान्त आवश्यक अंग खेल है। खेल उन तरीकों में से एक है जिनसे बच्चे आपस में मिलते–जुलते हैं और विभिन्न पात्रों का स्वांग करने में संलग्न रहते हैं। इन स्थितियों में जो भाषा विकसित होती है, वह बातचीत का अनुभव निर्मित करती है।

सभी छोटे बच्चों को रंग–बिरंगी तस्वीरें बहुत अच्छी लगती हैं। किसी चित्र को देखकर मुग्ध हुए बच्चे से बात करने जैसा सुखद अनुभव बहुत कम होता है। बच्चे के बोलना शुरू करने से भी पहले उससे किसी चित्र के भागों के बारे में बात की जा सकती है और बच्चा उसको समझेगा। अकसर वह सुने हुए शब्दों को दोहराने तथा उन भागों की ओर इशारा करने की कोशिश भी करेगा। चित्रों की व्याख्या करना, पढ़ने के प्रारम्भिक संकेतों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जब बच्चे बहुत छोटे होते हैं, तब पढ़ने के पूर्व–अनुभवों का नितान्त आवश्यक अंग कहानियाँ होती हैं। जो बच्चे परिवार के भीतर किताबों का अनुभव करते हैं, वे यह सीखते हैं कि किस प्रकार एक किताब में तस्वीरें और पाठ मिलकर एक कहानी बयान करते हैं। वे ध्यान केन्द्रित करने और सुनने का ढंग सीखते हैं, क्योंकि कहानियाँ आनन्ददायक होती हैं और बच्चों को आनन्द प्रिय होता है। वे आगे की घटनाओं की बात करने के कौशल सीखते हैं और क्रमिक वर्णन तथा पुनरुक्ति का अनुभव प्राप्त करते हैं।

कभी–कभी मेरे पास प्रवेशिका कक्षा के विद्यार्थियों का कोई चुनौतीपूर्ण समूह होता था। ऐसा तब होता था जब कुछ बच्चे जो कहानियों के बारे में नहीं जानते थे या सुनने का तरीका जाने बगैर स्कूल आ जाते थे। मैंने पाया कि ऐसे में बिना किताब के कहानी सुनाने से, या केवल तस्वीरों का इस्तेमाल करने से मैं बच्चों के साथ आँखों का सम्पर्क बनाए रखने में कामयाब रहती थी। बहुत से हाव–भाव, हास्यमय चेहरे और यहाँ तक कि गाने भी उनकी दिलचस्पी बनाए रखते हैं और इनसे उनके ध्यान केन्द्रित करने के कौशलों को निर्मित करने में मदद मिली।

आनन्द का महत्त्व

पढ़ने के पूर्व की सभी गतिविधियों का बच्चों के लिए आनन्ददायक होना बहुत जरूरी है। हम जिन मौखिक और व्यावहारिक अनुभवों को बच्चों के लिए सुगम बनाने में उनकी मदद करते हैं, उन सभी से जुड़ा आनन्द पढ़ने के कौशलों को हासिल करने के लिए सकारात्मक और मजबूत आधार प्रदान करेगा।

बच्चे आमतौर पर आसानी से और सहज रूप से हँसते हैं। यदि वे तब ऐसा करते हैं जब वे किन्हीं पढ़ने से पूर्व की गतिविधियों में लगे हों तो हमें बहुत खुश होना चाहिए। मैंने हमेशा कहा है कि आप जितना अधिक आनन्द पैदा कर सकते हैं, सीखना भी उतना ही बेहतर होगा!

विकासात्मक मुद्दों के प्रति सचेत रहना

जैसा कि सभी माता–पिता और शिक्षक जानते हैं, भावनात्मक और शारीरिक, दोनों प्रकार से बच्चे अलग–अलग रफ्तार से बढ़ते हैं।

मेरे अनुभव के अनुसार केवल यही सामान्यीकरण सम्भव है कि छोटे लड़कों की तुलना में छोटी लड़कियाँ अकसर जल्दी पढ़ने के लिए तैयार हो जाती हैं। परन्तु, इसके अपवाद हमेशा मिलते हैं।

लड़कियों तथा लड़कों के बीच भावनात्मक और शारीरिक विकास के भेदों में लगभग 6 माह या उससे थोड़ा अधिक अन्तर हो सकता है।

यहाँ एक सावधानी बरतने का उल्लेख करना बहुत जरूरी है। यदि किसी बच्चे के पढ़ने के लिए तैयार होने के पहले यदि उसे पढ़ने की किसी औपचारिक स्थिति में ठेला जाता है तो वह सफलता के आनन्द का अनुभव नहीं करेगा। इसमें यह वास्तविक खतरा है कि वह इस महत्त्वपूर्ण कौशल को सीखने की प्रक्रिया के साथ असफलता और हताशा के भावों को जोड़ लेगा।

मैं यहाँ अपने एक विद्यार्थी का उदाहरण देती हूँ।

वह मेरी प्रवेशिका कक्षा में केवल 4 साल की उम्र में आया था। वह बहुत छोटा, अपरिपक्व, मीठे स्वभाव वाला लड़का था। उसे खिलौना बनाने वाली सामग्री से खेलना और खेल घर में पोशाकें पहनकर पात्रों के स्वांग करना बहुत अच्छा लगता था। स्कूल के पूरे पहले साल में उसका सारा सीखना पढ़ने के पूर्व की गतिविधियों पर आधारित था। वह खुश रहता था और उसका आत्मविश्वास बढ़ा था। जब वह अगले वर्ष के लिए स्कूल लौटा, तो वह पढ़ने के लिए तैयार था और उसने लगभग तुरन्त ही बहुत अच्छी शुरुआत की। प्राथमिक शिक्षा पूरी करके जाने तक, वह अच्छा औसत आत्मविश्वास वाला और काम के प्रति बहुत बढिया रवैया रखने वाला विद्यार्थी बन गया था। उसके अन्तिम वर्ष में उसने हमारी एक बड़ी नाट्य प्रस्तुति की प्रमुख भूमिकाओं में से एक को निभाया। उसने हाईस्कूल में भी बहुत अच्छा प्रदर्शन किया और उसके बाद वह एक बहुत प्रतिष्ठित कालेज में गया। मुझे अकसर ख्याल आता है कि यदि शुरुआत में उसे एक साल पहले ही जल्दबाजी करते हुए औपचारिक पढ़ने में ठेल दिया गया होता तो शायद उसका आगे का जीवन भिन्न प्रकार से घटित हुआ होता।

शारीरिक विकास

शारीरिक विकास का सम्बन्ध हाथों–आँखों के संयोजन से होता है और इसका प्रारम्भिक वर्ष की शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा होना बहुत जरूरी है। हाथों तथा आँखों के अच्छे संयोजन के बिना कोई बच्चा सफलतापूर्वक लिख नहीं सकेगा। ध्वनि–आधारित सीखने तथा हिज्जे करने को सशक्त बनाने के लिए लिखने की प्रारम्भिक गतिविधियों का उपयोग किया जा सकता है।

सभी छोटे बच्चों को शारीरिक गतिविधि अच्छी लगती है और वे निरन्तर अपने लिए शारीरिक चुनौतियाँ रचते रहते



हैं। जब वे बहुत छोटे होते हैं तब उनको शारीरिक कौशलों को आजमाने और पक्का करने के द्वारा अपनी योग्यताओं का विस्तार करने की कोशिश करते हुए देखा जा सकता है, उदाहरण के लिए : बार–बार पलटी खाना, चीजों को यह देखने के लिए फेंकना कि वे कितनी दूर जाती हैं। बच्चों के मुक्त खेल में काफी सहज ढंग से ऐसी अनेक गतिविधियाँ देखी जाती हैं।

जब बच्चे स्कूल के वातावरण में प्रवेश करते हैं, तब भी अपने शारीरिक कौशलों को विकसित करना जारी रखने के लिए उन्हें दिन के खासे हिस्से में खेल सकने की जरूरत होती है। ज्यादा व्यवस्थित शारीरिक सीखना तब स्पष्ट दिखाई देता है जब वे अपने साथियों के साथ सामूहिक शारीरिक गतिविधियों का आनन्द लेने लगते हैं। ऐसा बहुत कुछ उनके खेल में साफ दिखाई देता रहता है, उदाहरण के लिए : किसी बीम या शाखा पर सन्तुलन बनाए रखते हुए चलना, सभी गेंद के खेल, तुकान्त कविताओं के साथ ताली बजाने वाले खेल, सभी प्रकार का नृत्य, लाँघना, तैरना और साइकिल या स्कूटर की सवारी करना।

कुछ कुछ बनाने की गतिविधियाँ

बच्चों को सफलतापूर्वक पढ़ना सीखने के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि वे आकारों की कल्पना करने और उनको याद रखने की योग्यता विकसित कर चुके हों। आखिरकार, शब्द भी पेज पर बनी हुई संरचनाएँ ही हैं, जिनमें से अधिकांश को उनके सभी अंगों के ध्वन्यात्मक अर्थों को जानने के द्वारा समझा जा सकता है। हालाँकि, बहुत से ऐसे शब्द भी होते हैं जिनके अर्थ को इस तरह नहीं खोला जा सकता। ऐसे शब्दों के 'आकार' को सीखना पड़ता है।

छोटे बच्चों के लिए निर्माण की विभिन्न तकनीकों का इस्तेमाल करके आकारों और संरचनाओं को रचने के अवसर के द्वारा द्वि और त्रि–आयामी आकारों की कल्पना करने की उनकी क्षमता बहुत बढ़ जाती है। लकड़ी के साधारण टुकड़े (ब्लाक) अकसर उनके मनपसन्द होते हैं और उन्हें अद्भुत संरचनाओं में रूपान्तरित किया जा सकता है! वे एक रेलगाड़ी, पुल, किला, महल, ट्रैक्टर, कार, मकान, पलंग – यह सूची अन्तहीन है – सभी कुछ बन सकते हैं। प्रत्येक रूपान्तरण में बच्चे निर्मित किए जाने वाले आकारों का स्मरण करते हैं और फिर इन टुकड़ों को, उनकी धारणा के अनुसार, मिलते–जुलते आकारों में जमाते हैं। ऐसे सारे प्रयासों को मूल्यवान जानकर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

संरचनाओं को निर्मित करना

अलग–अलग अक्षर पेज पर बनी हुई संरचनाएँ होती हैं और शब्द अन्य संरचनाओं से बनी संरचनाएँ होते हैं!

बच्चों से लिखित शब्दों की जटिल 'संरचनाओं' का वर्णन करने के लिए कहने से पहले उन्हें संरचनाएँ निर्मित करने के अनुभव की आवश्यकता होती है।

छोटे बच्चों को संरचनाओं का क्रम अच्छा लगता है। छोटे बच्चों के किसी समूह का संरचना की अवधारणा से परिचय कराने का एक व्यावहारिक तरीका उन्हें लड़का, लड़की, लड़का, लड़की आदि की एक सरल पंक्ति में व्यवस्थित करना है। छोटे बच्चों को यह रोमांचक लगेगा क्योंकि जब वे संरचनाओं को समझने लगेंगे तो वे पहले से बता सकते हैं कि आगे क्या आएगा।

संरचना की धारणा के माध्यम से अनेक आश्चर्यजनक गतिविधियाँ की जा सकती हैं। डण्डियों और पत्तियों जैसी त्रि–आयामी वस्तुएँ आमतौर पर आसानी से उपलब्ध रहती हैं और संरचनाएँ बनाने के लिए उनका अच्छा उपयोग किया जा सकता है। एक सरल संरचना (एक पत्ती,एक डण्डी,एक पत्ती इत्यादि) बाद में ज्यादा जटिल संयोजनों – जैसे कि 2 पत्तियाँ, 3 डण्डियाँ, 2 पत्तियाँ, 3 डण्डियाँ, इत्यादि – में विकसित की जा सकती है। धागा पिरोने के गुरिए, एक के ऊपर एक ढेरी बनाने के ब्लाक, दरअसल में संरचना का खेल शुरू करने के लिए किसी भी चीज का इस्तेमाल किया जा सकता है।

विभिन्न संरचनाएँ बनाने के लिए त्रि–आयामी वस्तुओं से खेलने के बाद, आमतौर पर बच्चे द्वि–आयामी संरचनाएँ बनाने के लिए तैयार हो चुकते हैं। सब्जियों की संरचनाओं को कागज पर छापना, छोटे बच्चों के लिए एक रोमांचक और लोकप्रिय गतिविधि होती है। मैं भिन्न–भिन्न रंगों वाले तरह–तरह के कागजों को 'पेड़ों' की संरचनाओं में काट लेती थी। हर बच्चे के पास एक संरचना होती थी। वे अपने पेड़ के लिए एक संरचना की कल्पना कर लेते थे और विभिन्न सब्जियों की संरचनाओं और रंगों का इस्तेमाल करते हुए उस संरचना को कागज पर बनाते थे। जब सब चित्र पूरे हो जाते थे तब मैं उन्हें एक बड़ी दीवार पर लगा देती थी और हमारे पास उन संरचनाओं का 'जंगल' हो जाता था।

इस तरह की प्रायोगिक गतिविधियों का आनन्द आगे आने वाली चीज को जानने और चीजों को क्रम से लगाने के कौशलों को निर्मित करता है।

चित्रों का उपयोग – मिलान करना तथा क्रम से जमाना

छोटे बच्चों के लिए 'लौट्टो' जैसे चित्रों का मिलान करने वाले खेल मजेदार और मूल्यवान होते हैं। यह उनके समानताओं को पहचानने वाले देखने के कौशलों को निर्मित करता है जो पढ़ने के लिए नितान्त आवश्यक होते हैं। बच्चों को समान शब्दों को पहचानने की क्षमता की जरूरत होती है, ताकि हर बार उसी शब्द के सामने आने पर उन्हें हमेशा उसे समझने की प्रक्रिया से न गुजरना पड़े। एक छोटे बच्चे के लिए चित्रों के साथ इस कौशल का अभ्यास करना आनन्ददायक और सार्थक होता है।



टेढ़े–मेढ़े कटे हुए टुकड़ों की पहेलियाँ भी भेद करने के दृश्यात्मक कौशलों को निर्मित करने के लिए मूल्यवान

होती हैं। जो बच्चे सफलतापूर्वक ऐसी पहेलियों को जमाना सीख लेते हैं, वे सीखने के दृश्यात्मक कौशलों को भी निर्मित कर लेते हैं और इसके कारण वे सभी ध्वन्यात्मक संकेतों और उनके संयोजनों में भेद कर सकेंगे जो पढ़ने के लिए आवश्यक हैं।

इसके बाद अगला चरण चित्रों की एक शृंखला – शायद शुरुआत करने के लिए तीन भिन्न चित्रों की, और फिर बढ़ाते हुए 5 या 6 चित्रों की – प्रस्तुत करने की होगी। इन तस्वीरों का उपयोग बच्चे, अकेले–अकेले या सामूहिक रूप से, एक कहानी कहने के लिए कर सकते हैं। यह घटनाओं को क्रम से पेश करने की क्षमता निर्मित करेगा, जो यदि बच्चे को स्वतंत्र रूप से पढ़कर कहानियों को समझना और उनका मजा लेना है तो उसके लिए एक अन्य महत्त्वपूर्ण कौशल है।

तस्वीरें पढ़ने की प्रारम्भिक गतिविधियों का एक बेहद जरूरी हिस्सा होती हैं। बच्चों को सभी प्रकार के चित्रों में मजा आता है। एक चित्र एक पूरी कहानी बयान कर सकता है। ऐसे चित्र से जुड़ी भाषा किताबों की भाषा होती है, और यदि बच्चे इस प्रकार की कहानी कहने में भाग लेने में समर्थ होते हैं तो वे पढ़ने के संसार के लिए अच्छी तरह तैयार किए जा रहे होते हैं।

अकसर बच्चे बहुत छोटी उम्र से ही पढ़ने का 'खेल' शुरू कर देते हैं। इसके कई रूप हो सकते हैं, लेकिन ज्यादातर इसमें कोई बच्चा एक किताब लेकर बैठ जाता है, उसके पन्नों को पलटता है, और वैसे ही उपयुक्त स्वर में कहानी 'सुनाता' है जैसा उसने बड़े लोगों को करते देखा है। कभी–कभी, जब बच्चे पढ़ने के लिए तैयार होने लगते हैं, तो वे अकसर स्वतंत्र रूप से किसी किताब के पाठ में उन ध्वनियों या शब्दों को तलाशते हैं जिनसे वे परिचित होते हैं। जब उन्हें कुछ ऐसे ध्वनि–चिन्ह मिल जाते हैं जिन्हें वे पहचानते हैं तो वे बहुत उत्साहित हो जाते हैं। यह इस बात का एक संकेत होता है कि बच्चा पढ़ने की औपचारिक गतिविधियाँ आरम्भ करने के लिए शायद अब तैयार हो चुका है।

असफलता से बचना

मैं इस बात पर जितना भी ज्यादा जोर दूँ, वह कम होगा, कि पढ़ने के पूर्व की ये सभी गतिविधियाँ बच्चों के लिए आनन्ददायक होना चाहिए। यह बेहद महत्त्वपूर्ण है कि सीखना सुखद हो और इसमें बच्चे उत्साह से भरे हों। इसमें वयस्कों की भूमिका सीखने को सुगम बनाने वालों की होना चाहिए और उन्हें बच्चों से अपनी अपेक्षाएँ धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिए। बच्चों के सभी प्रयासों की, यहाँ तक कि कम सफल प्रयासों की भी, भरपूर प्रशंसा करना, यही बड़ों के व्यवहार का प्रमुख पहलू होना चाहिए। बीते वर्षों में मैंने पाया है कि प्रोत्साहन की दृष्टि से हम हमेशा कुछ ऐसी बात कह सकते हैं जो सकारात्मक हो। मनुष्य, चाहे वे कितने भी छोटे हों या बड़े, प्रशंसा से पनपते हैं!

पढ़ने की औपचारिक गतिविधियाँ आरम्भ करना

ध्वन्यात्मक ज्ञान विकसित करना

बच्चों को वर्णमाला के चिन्हों और उनसे निकलने वाली ध्वनियों के बीच के सम्बन्ध को जानने की जरूरत होती है। इसकी शुरुआत काफी जल्दी की जा सकती है, पर उसका तरीका अनौपचारिक, बहु–ऐन्द्रिक, और प्रायोगिक गतिविधियों के उपयोग पर ही आधारित होना चाहिए। प्रारम्भिक ध्वन्यात्मक सीखने में आनन्द का समावेश करने के बहुत से तरीके हैं। इसमें सफलता पाने में शिक्षकों की सहायता के लिए कई अच्छी योजनाएँ और कार्यक्रम उपलब्ध हैं। इनमें जो सबसे अच्छे हैं, उनमें कुछ दृश्यात्मक संकेत, एक सुनने वाला हिस्सा और इन सभी को आपस में जोड़ने वाली किसी प्रकार की गतिविधि शामिल रहते हैं। छोटे बच्चों को सिर्फ वर्णमाला के अक्षर दिखाना, उनसे सम्बन्धित ध्वनियाँ बताना और उनसे सभी को याद रखने की अपेक्षा करना, हो सकता है कि कुछ बच्चों के साथ यह तरीका काम कर जाए, पर अनेक बच्चों को प्रारम्भिक पढ़ने की सफल शुरुआत करने के लिए इससे अधिक संकेतों की जरूरत होगी।

शिक्षण के अपने कार्यकाल के दौरान, मैंने प्रारम्भिक ध्वन्यात्मक ज्ञान का परिचय करवाने की कई अलग–अलग विधियों को उपयोग किए जाते हुए देखा है। इनमें से कुछ अन्य से ज्यादा सफल हुई हैं।

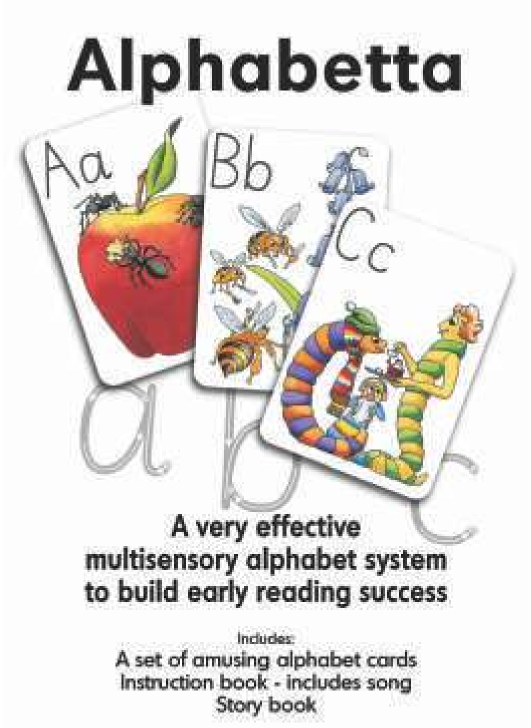
स्वयं मैंने हर अक्षर के लिए एक पद रचते हुए – अत्यन्त सरल और दोहराव वाला – जिनके साथ उनसे सम्बन्धित मनोरंजक चित्र भी थे, एक गीत विकसित किया जिसका मैंने कुछ वर्षों तक बहुत सफलतापूर्वक उपयोग किया। उस समय यह बात मेरी पद्धति को भिन्न बनाती थी कि जैसे ही बच्चे गीत के हर पद को समाप्त करते थे, उन्हें

उस अक्षर की संरचना को हवा में दोहराने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। यह कई तरीकों से मदद करता था :

- इससे बच्चों को यह कल्पना करने में मदद मिलती थी कि वह अक्षर कैसा दिखता था।
- यह ध्वन्यात्मक सम्बन्धों को सीखने में एक गतिसंवेदी (स्पर्श) तत्व जोड़ देता था।
- इसमें बच्चों को, कारगर ढंग से पेन्सिल को नियंत्रित करने की क्षमता विकसित करने के पहले कागज पर गलत चिन्ह बनाने का जोखिम उठाए बिना ही, अक्षरों के स्वरूप निर्मित करने के अभ्यास का अवसर मिलता था।
- अक्षर किस तरह निर्मित होते हैं इससे परिचित होने से, और साथ ही साथ उनसे निकलने वाली आवाजें सीखने से, बच्चे उनमें सम्बन्ध जोड़ना सीखते हैं, और इस तरह अपने सीखने को मजबूत बनाते हैं क्योंकि इस पूरी प्रक्रिया में देखने की, सुनने की और गतिसंवेदी गतिविधियाँ शामिल रहती हैं।
- कम उम्र की अवस्था से वर्णमाला के सभी अक्षरों को बनाने का सही तरीका जानने से न केवल लिखावट की दृष्टि से, बल्कि भविष्य में हिज्जे करना सीखने के लिए भी बड़े लाभ मिलते हैं।

अब मैं शिक्षण से अवकाश प्राप्त कर चुकी हूँ, पर पढ़ना सीखने के महत्त्व को लेकर मेरी जोशीली प्रतिबद्धता बरकरार है। मेरी बेटी आयरलैण्ड के एक दूरदराज के इलाके में रहती है और उसके चार बच्चे हैं। जब उसके सबसे छोटे दो बच्चे स्कूल जाने की उम्र के हुए तो उसने और उसके पति ने निर्णय लिया कि वे चारों बच्चों को घर पर ही पढ़ाएँगे। वह मेरे 'ऐल्फाबेट गीत' को सुनते हुए बड़ी हुई थी और उसे स्वाभाविक मानकर उसने उसका मूल्यांकन नहीं किया था। जब उसने उसे स्वयं अपने बच्चों के लिए उनके गृह शिक्षा कार्यक्रम में उसका उपयोग करना शुरू किया तब उसे एहसास हुआ कि वह कितना कारगर है। उसने मुझे उसको प्रकाशित करने के लिए प्रोत्साहित किया मैंने उसकी सलाह मान ली और मैं आशा करती हूँ कि यह उन परिवारों के लिए, जो घर पर अपने बच्चों की मदद करने का प्रयास करते हैं, और वास्तव में छोटे बच्चों को विविध प्रकार के परिवेशों में शिक्षा देने वाले अन्य लोगों के लिए भी उपयोगी हो सकेगा (www.pre-school-phonics.co.uk)। इसके चित्रों को मेरे पति ने, जो एक कलाकार हैं, बहुत सक्रिय हास्यमय अन्दाज में फिर से बनाया है! मैंने एक कहानी लिखी है जिसमें ऐल्फाबेट के सभी अक्षरों को पिरोया गया है और जो चित्रों और गीत से जुड़ी हुई है। उसके पैक डिब्बे में एक श्रव्य सीडी भी शामिल है जिसमें पूरी कहानी और गीत दिए गए हैं।

हमारी 'ऐल्फाबेट्टा' विधि बहुत छोटे बच्चों के लिए उपयोगी है जिन्हें अक्षरों की अलग–अलग तस्वीरों में और उनसे जुड़े हुए गीत के सरल पदों में आनन्द आता है। इसे बड़े बच्चों के साथ, जिन्हें कहानी के पाठ में और अधिक ध्वनि सम्बन्धों को खोजने में मजा आता है, भी उपयोग किया जा सकता है। मेरी अपनी बेटी के बच्चे अभी भी गीत के और नए हास्यमय पद, जो अकसर वाकई में बहुत मनोरंजक होते हैं, रचने का मजा लेते रहते हैं!



सीखने के सहायक उपाय के रूप में अक्षरों का निर्माण

जब बच्चों का प्रत्येक अक्षर की ध्वनि से परिचय करवाया जाता है, तब उसका जो भी तरीका चुना जाए, सीखने को सशक्त बनाने का एक बहुत उपयोगी उपाय यह है कि अक्षर से उत्पन्न होने वाली ध्वनि सिखाते समय ही उसके स्वरूप की रचना भी सिखाई जाए, जैसा कि ऊपर के

अनुच्छेद में समझाया गया है। अँग्रेजी की वर्णमाला सिखाते समय यह महत्त्वपूर्ण है कि शुरुआती चरणों में छोटी लिपि वाले अक्षरों (लोअर केस लैटर्स) पर ध्यान केन्द्रित किया जाए। बड़ी लिपि वाले अक्षरों (कैपिटल लैटर्स) के वैसे भी जाने–पहचाने होने की सम्भावना रहती है क्योंकि वे संकेतों में, चीजों के आवरणों पर और कम्प्यूटर के की–बोर्ड (कुंजी पटल) पर बने रहते हैं। बड़ी लिपि के अक्षरों को बनाना सरल होता है क्योंकि उनकी रचना में कई सीधी रेखाएँ होती हैं। परन्तु, किसी भी पाठ का अधिकांश हिस्सा छोटी लिपि के अक्षरों से बना होता है। हालाँकि आधुनिक दुनिया में पारम्परिक लिखावट का उतना इस्तेमाल नहीं किया जाता जितना पहले किया जाता था, फिर भी बच्चों के लिए यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि छोटी लिपि के अक्षर कैसे बनाए जाते हैं।

एक छोटे बच्चे के लिए पढ़ने के कौशल की अपेक्षा लिखने का कौशल सीखना कहीं अधिक जटिल प्रक्रिया होती है। पढ़ने में एक पेज पर बने हुए चिन्हों का अर्थ निकालना होता है, जबकि लिखने में एक कोरे पेज से शुरुआत करना और उस पर ऐसे चिन्ह बनाना निहित होता है जिनको अर्थ निकाले जाने के लिए सही होना चाहिए। इस कारण से, जब एक छोटा बच्चा पढ़ना सीखने की शुरुआत करता है, तो यह जरूरी है कि ध्यान पढ़ने पर ही केन्द्रित किया जाए, न कि उसी के साथ लिखने में भी प्रगति करने की अपेक्षा की जाए। पर, अक्षरों के स्वरूप के बनने का परिचय ऐसे बहुत ही प्रायोगिक तरीके से करवाया जा सकता है, कि वह पढ़ने की प्रारम्भिक गतिविधियों में एक सहायक उपाय हो।

सिर्फ इतना ध्यान रखें कि पढ़ने की क्षमता के बिना लिखने का कौशल अर्थहीन है।

पूरे शब्दों को पहचानना

जब बच्चे सरल शब्दों को समझने के लिए जरूरी सभी ध्वनियों को पहचान सकते हैं और उन ध्वनियों को मिलाने में समर्थ हो जाते हैं, तब आमतौर पर वे किताबों के सरल पाठ को पढ़ना शुरू कर सकते हैं।

बहुत से ऐसे शब्द होते हैं जिनकी अवयव ध्वनियों को मिलाकर उन्हें नहीं समझा जा सकता, इसलिए बच्चों को यह भी दिखाना जरूरी है कि पूरे शब्दों को उनकी संरचना से पहचानना सम्भव है। मैंने पाया है कि इस कौशल को निर्मित करना सिखाने की शुरुआत करने का एक अच्छा तरीका सही रंगों (जैसे कि लाल, नीला, हरा, पीला, आदि) में रंगीन कार्ड प्रदान करना है। ऐसी कई गतिविधियाँ रची जा सकती हैं जिनमें बच्चों को दिया गया काम पूरा करने के लिए कार्ड पर छपे शब्द का मिलान करना जरूरी होता है। शब्द के रंग में ही वह संकेत होता है जिसकी शुरुआत में बच्चों को जरूरत होती है। शीघ्र ही रंगीन शब्द कार्डों को बदलकर सामान्य शब्द कार्ड उपयोग किए जा सकते हैं जिन पर सभी शब्द काले रंग में छपे होते हैं। इस तरह की गतिविधियाँ काफी जल्दी आरम्भ की जा सकती हैं, और जब तक उनको ऐसे विविध रूपों में दोहराया जाता रहेगा जो बहुत जटिल न हों, तब तक बच्चों को मजा आता रहेगा और पूरे शब्दों को पहचानने का कौशल बहुत स्वाभाविक तरीके से निर्मित होगा।

जब बच्चे पाठ में से परिचित शब्दों को पहचानने में समर्थ हो जाते हैं, तो शायद सरल किताबों को पढ़ने के लिए वे तैयार हो चुके होते हैं।

प्रारम्भिक किताबें और कहानियाँ चुनने का अधिकार

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पढ़ने में बच्चों की मदद करने का एक महत्त्वपूर्ण अंग बहुत कम उम्र से एक सुरक्षित और गैर–निर्णयात्मक वातावरण में किताबों का आनन्द लेने में उनकी सहायता करना है। यह तरीका बच्चों के विकसित और परिपक्व होने के साथ जारी रहना चाहिए।

माता–पिताओं द्वारा मुझसे कही गई बातों में से कभी–कभी एक यह होती थी : 'मैंने उसकी पढ़ने की किताब में चित्र को यह देखने के लिए ढँक दिया कि उसके बिना वह पढ़ सकती थी या नहीं, और वह नहीं पढ़ सकी, यानी कि वह पढ़ नहीं रही है!'

मैंने हमेशा यह समझाने की कोशिश की कि शुरुआत में बच्चों को पाठ का मतलब समझने में सहायता के लिए संकेतों की जरूरत होती है। प्रारम्भिक पढ़ने की किताबों में हमेशा चित्र होते हैं, और वे बच्चों को कहानी के बारे में संकेत देने में और उनके आनन्द को बढ़ाने में मदद करने के लिए होते हैं। यदि चित्र के दृश्यात्मक सहारे के बिना पाठ का अर्थ निकालने के लिए बच्चे पर दबाव डाला जाता है तो पूरी प्रक्रिया के कम आनन्ददायक और वास्तव में तनावपूर्ण बन जाने की सम्भावना रहती है। क्या इसके आगे भी मुझे कुछ कहने की जरूरत है?

मैं दृढ़तापूर्वक यह मानती हूँ कि समझ के साथ पढ़ना एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें कई कौशल शामिल रहते हैं। आधुनिक दृष्टिकोण अन्य सभी की अपेक्षा ध्वनियों पर सबसे अधिक जोर देता है। मैं मानती हूँ कि ध्वन्यात्मक बोध आवश्यक कौशलों में से एक है। आगे आने वाली चीजों का अनुमान लगाने के कौशल और पाठ के संकेत तथा चित्र, सभी समझने में, जो आनन्द के लिए नितान्त आवश्यक है, सहायक होते हैं।

अब प्रारम्भिक पढ़ने की अनेक बहुत अच्छी योजनाएँ उपलब्ध हैं और इस मामले में हम भाग्यशाली हैं। बीते हुए वर्षों में प्रारम्भिक पढ़ने की अच्छी सामग्री की उपलब्धता बहुत सीमित थी।

आज उपलब्ध सर्वोत्तम योजनाओं में से अनेक में पढ़ने के हर स्तर पर कुछ चुनी हुई पुस्तकों की सूची होती है। इसका मतलब यह है कि प्रत्येक स्तर पर दी गई किताबों को क्रम से पढ़ना जरूरी नहीं है, बल्कि बच्चे अपना निजी चुनाव कर सकते हैं कि वे कौन सी किताबें पढ़ना चाहेंगे। यह एक शानदार सुविधा है, जो एकदम शुरुआत से ही उपलब्ध होना चाहिए। मेरे अनुभव में, छोटे बच्चों को पढ़ने की सामग्री का खुद चुनाव करने में जो आनन्द मिलता है वह उनके उत्साह और आत्म–गौरव को बढ़ाता है।

यदि इस व्यवस्था को अच्छी तरह काम करना है तो उसके लिए इसमें शामिल वयस्क लोगों को तैयारी करना आवश्यक है। जो बच्चे पढ़ना शुरू ही कर रहे हैं उनके लिए प्रथम स्तर की सभी किताबों से परिचित होना बेहतर होता है।

इसे निम्न प्रकार से हासिल किया जा सकता है:

- शिक्षक–वयस्क व्यक्ति एक बार में एक किताब ले सकता है और उसे बच्चों के एक समूह के साथ साझा कर सकता है।
- किताब के आवरण तथा शीर्षक को देखें। आप किताब के पहले पेज को देखकर लेखक और चित्रकार के बारे में जो कुछ पता कर सकें उसकी चर्चा करें।
- बच्चों से यह अनुमान लगाने के लिए कहा जा सकता है कि उनके ख्याल से आगे क्या होगा, उसके बाद पन्ने पलटकर यह देखना कि क्या उनका अनुमान सही है या कहानी के अन्त में कुछ अप्रत्याशित होता है।
- शिक्षक–वयस्क व्यक्ति को फिर कहानी का पाठ करना और उसे भाव के साथ कैसे पढ़ा जा सकता है इसका अभिनय करना चाहिए। जब वयस्क व्यक्ति पढ़ रहा हो तो बच्चों को पाठ को देखने और समझने में समर्थ होना चाहिए।
- विभिन्न विराम–चिन्हों की और वे कहानी के पढ़ने के ढंग को किस तरह संचालित करते हैं इसकी प्रारम्भिक चर्चा की जा सकती है।
- कहानी में बड़ी लिपि के अक्षरों के उपयोग की भी चर्चा की जा सकती है।
- बच्चों के वास्तव में स्वतंत्र रूप से किताबों को पढ़ना शुरू करने से पहले यदि किसी भी पढ़ने की योजना के प्रारम्भिक स्तरों पर प्रत्येक पुस्तक का ऐसा परिचय दिया जाए, तो वे किताबों का खुद चुनाव करने के लिए अच्छी तरह तैयार हो जाएँगे। वे कहानियों के पात्रों तथा घटनाओं से परिचित हो जाएँगे। यदि अन्य सभी तैयारियाँ भी साथ चलती रहें, तो स्वतंत्र रूप से पढ़ने और उस अनुभव का आनन्द लेने के लिए, वे ध्वनियों को समझने के कौशलों, शब्दों की याद करने, आगे की घटनाओं का अनुमान लगाने और क्रम से जमाने, इस सब का उपयोग करने में समर्थ हो जाएँगे।

पुनरावृत्ति का महत्त्व

अनेक छोटे बच्चों को, जिन्होंने स्वतंत्र रूप से पढ़ना बस शुरू ही किया होता है, किसी मनपसन्द किताब को कई बार फिर से पढ़ना बहुत अच्छा लगता है। उन्हें ऐसा करने की छूट देना महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि यह प्रारम्भिक पढ़ने की प्रक्रिया में सीखे हुए को मजबूत बनाने तथा आनन्द लेने में मददगार होता है।

इस प्रक्रिया में माता–पिताओं, परिवार के सदस्यों तथा शिक्षकों की भी सतत चलने वाली भूमिका रहती है। बच्चों के स्वतंत्र रूप से पढ़ना शुरू करने से पहले और उनके पढ़ने में सक्षम बन जाने के बाद, दोनों स्थितियों में वयस्क लोगों द्वारा उनके लिए किए जा सकने वाले सबसे महत्त्वपूर्ण कामों में से एक उनको पढ़कर सुनाना जारी रखना है।

जब कोई वयस्क एक बच्चे के लिए पढ़ता है तो बच्चे को अपने बगल में बिठाना मूल्यवान होता है। तब वयस्क व्यक्ति जैसे–जैसे आगे पढ़ता है, उसके साथ बच्चे को पाठ का अनुसरण करने का अवसर मिलता है। कुछ बच्चे स्वाभाविक रूप से ऐसा करेंगे और सम्भावना है कि उनका साहित्य तथा लिखित शब्द के प्रति गहरा लगाव बन जाएगा। अन्य बच्चे जो सहज रूप से पाठ का अनुसरण नहीं करते, उनको भी लाभ होगा, वे आम तौर पर कुछ पाठ में रुचि लेंगे और कहानी में खो जाएँगे।

आनन्द लेने के लिए विस्मित करने वाला काफी साहित्य उपलब्ध है, और यदि वयस्क लोग पढ़कर सुनाने के द्वारा बच्चों के उसे खोज लेने मदद कर सकते हैं, तो वह सभी के लिए लाभदायक अनुभव होगा।

बच्चों को पढ़कर सुनाने के लिए चुनी जाने वाली पुस्तकें उनसे थोड़े आगे के स्तर की होना चाहिए जिन्हें वे स्वतंत्र रूप से पढ़ने में समर्थ हैं। इसका मतलब है कि जैसे–जैसे बच्चे अपने पढ़ने में प्रगति करते हैं, वे फिर से परिचित पाठों की ओर लौट सकेंगे और उनके पढ़ने का निरन्तर विस्तार होता रहेगा।

निष्कर्ष

पढ़ने के कौशलों को सुगम बनाने में सहायता करना सचमुच सौभाग्य की बात है। यह बच्चों को कहानियों की तथा सीखने और समझ की जादुई दुनिया की चाबियाँ थमाने जैसा है। हर मनुष्य यह चाबी और उसे इस्तेमाल करने के तरीके का ज्ञान दिए जाने का पात्र होता है।





रिया बाजेली ने लन्दन के एक अति वंचित हिस्से में स्थित हाई स्कूल में 1970 में अपना शिक्षण कार्य आरम्भ किया था। वे आदर्शवादी थीं और जल्दी ही उन्हें एहसास हुआ कि बच्चों के जीवन में वास्तविक अन्तर लाने के लिए उनको छोटे विद्यार्थियों के साथ काम करने की जरूरत थी। वे 1972 में शिशुओं के एक स्कूल में चली गईं और वहीं उन्हें बच्चों को पढ़ना सिखाने की अपनी गहरी लालसा का अनुभव हुआ। शिक्षण के उनके कार्यकाल में प्रारम्भिक वर्षों की शिक्षा में उनकी दिलचस्पी जारी रही और वे उस क्षेत्र की एक अनुभवी विशेषज्ञ बन गईं। जब 1983 में वे प्रमुख शिक्षक बन गईं तो सेवाकार्य के दौरान दिए जाने वाले प्रशिक्षण और बैठकों तथा सम्मेलनों में अपनी प्रस्तुतियों के माध्यम से वे अपनी दिलचस्पी और विशेष ज्ञान को दूसरों को बाँटने में समर्थ हुईं। अब सेवानिवृत्ति के बाद वे गृह–शिक्षा तथा पूर्व–स्कूल समूहों, तथा एक वयस्क साक्षरता संगठन को लगातार सहयोग देती हैं, और उन्होंने पूर्व–स्कूल ध्वन्यात्मक ज्ञान के लिए एक संकलन (पैक) प्रकाशित किया है (www.pre-school-phonics.co.uk)। इन दिनों वे सभी आयु वर्गों के लिए उपयुक्त एक ध्वन्यात्मक व्यवस्था पर काम कर रही हैं। वे कलाकार क्रिस्टोफर बाजेली से विवाहित हैं (www.chrisbazeley.com)। उनकी दो सन्तानें तथा छह पोते–पोतियाँ, नाती–नातिनें हैं। उनसे rheabazeley@fastmail.fm पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी



प्रारम्भिक बाल्यावस्था के दौरान पढ़ना और लिखना

पार्थसारथी मिश्रा

इस लेख का प्रयोजन पूर्व–स्कूल के दिनों में बच्चों की पढ़ने और लिखने की क्षमता को विकसित करने के महत्त्व की चर्चा करना और अ–साक्षर समाजों के छोटे बच्चों के लिए साक्षरता का वातावरण बनाने की रणनीतियों के क्रियान्वयन करने की शुरुआत करने की सम्भावना की तलाश करना है। साक्षरता को सभी संस्कृतियों में बहुत सम्मान के साथ देखा जाता है। साक्षरता को प्रतिष्ठा तथा शक्ति का प्रतीक माना जाता है, यह कई कविताओं, लोकप्रिय कहावतों और लोक कथाओं से साबित होता है। आइए हम एक लोकप्रिय बंगाली कविता और एक हिन्दी कविता के उदाहरण लें:

'लिखा पोड़ा कोरे जेई
गाड़ी घोड़ा चोढ़ेसेई'

(वह जो पढ़ता और लिखता है, कारों में या घोड़े की पीठ पर घूमता है)

'लिखाई पढ़ाई नहीं सीखोगी,
तो गधे की तरह ही रहोगी'

(अगर तुम लिखना पढ़ना नहीं सीखती हो, तो तुम गधे का जीवन ही जिओगी)

बंगाली की नर्सरी कविता पढ़ने और लिखने को कारों या घोड़े की पीठ पर बैठकर यात्रा करने से जोड़ती है जबकि हिन्दी कविता का अर्थ है कि पढ़ना, लिखना आदमी को जानवर से अलग करता है।

बच्चे पढ़ना और लिखना कैसे शुरू करते हैं? मुझे बचपन में अकसर ही महान शिक्षाविद और समाज सुधारक ईश्वर चन्द्र विद्यासागर की कथा सुनकर बड़ी जिज्ञासा होती थी। सुनते हैं कि उन्होंने स्कूल जाने से पहले ही अँग्रेजी अंक सीख लिए थे। किवदन्ती के अनुसार, ईश्वर चन्द्र नवम्बर 1828 में स्कूल में दाखिला लेने के लिए अपने पिता के साथ अपने पैदाइशी गाँव से पैदल चलकर कलकत्ता जा रहे थे। वे मील के हर पत्थर पर लिखे अंकों को नजदीक से देखते थे, उन अंकों की मानसिक छवियाँ बना ले रहे थे ताकि कलकत्ता पहुँचने तक वे उन अंकों को सीख चुके हों। बाद में वयस्क होने पर मैंने भी देखा कि मेरे बच्चे खिलौनों, घर के साज–सामानों पर चित्रित विभिन्न चिन्हों के प्रति आकृष्ट होते थे और किस तरह वे सूचनापट्टों, विज्ञापनपट्टों, चीजों के आवरणों (रैपरों) और मिठाई के डिब्बों तथा दवा की शीशियों आदि पर चित्रित शब्दों के माध्यम से दिए जाने वाले छपे हुए सन्देशों को समझने की कोशिश करते थे। मैं यह देखकर चकित होता था कि विद्यारम्भ के दिन औपचारिक रूप से पढ़ने–लिखने की गतिविधि में प्रवेश करने से पहले ही किस तरह एक धीमे और परोक्ष ढंग से साक्षरता से उनका परिचय हो गया था।

विद्यारम्भ जो साक्षरता की यात्रा की शुरुआत का मांगलिक अवसर होता है सामान्यतः साक्षर हिन्दू परिवारों में मनाया जाता है। इस रस्म के दौरान, बच्चों को किसी बुजुर्ग व्यक्ति की गोद में बिठाया जाता है, जो सोने की अँगूठी से बच्चे की जीभ पर भगवान गणपति का आह्वान लिखते हैं और फिर बच्चे से भी उसकी दाहिनी तर्जनी से रेत या चावल के पटल पर वही लिखवाते हैं। कई लोगों का विश्वास है कि बच्चों को तब तक पढ़ना–लिखना शुरू नहीं करना चाहिए जब तक कि विद्यारम्भ की यह रस्म पूरी न कर ली जाए। यह बेहद संभ्रातवर्गीय रीति बच्चे की अन्तर्निहित क्षमता को अनदेखा कर देती है। जबकि बच्चे के पास चिन्हों और प्रतीकों का अर्थ समझने की जन्मजात क्षमता होती है और वह अपने जन्म से ही दृश्य साक्षरता हासिल कर लेता है। किसी चित्र के रूप में प्रस्तुत की गई जानकारी से अर्थ निकालने की क्षमता बच्चा अपने निकट के परिवेश से हासिल करता है। जब बच्चे छपे हुए संकेतों को देखते हैं और उनके आकारों और रंगों की ओर आकृष्ट होते हैं, तो वे

संरचनाएँ देखना शुरू कर देते हैं, और जब कोई शब्द किसी तस्वीर के साथ आता है तो वे उस पर गौर करते हैं, और जब दो शब्द एक जैसे होते हैं तो उन्हें उसका भी पता लग सकता हैं। वे 'पढ़ने, और लिखने के बारे में ऐसी धारणाएँ निर्मित कर लेते हैं जो उन्हें सिखाई गई नहीं होतीं, उनके लिए गढ़ी गई नहीं होतीं और तब तक पारम्परिक भी नहीं बनी होतीं' (टील एवं सल्जबी, 1992:52)।

यदि बच्चे के अनुभव को समृद्ध बनाना प्रारम्भिक बचपन की शिक्षा का परम लक्ष्य हो, तो माता–पिता को अपने जिज्ञासु बच्चों का बहुत ही छोटी उम्र से पढ़ने लिखने से परिचय कराने में हिचकिचाना नहीं चाहिए। यदि माता–पिता शब्दों में और छपे हुए अक्षरों में अपने बच्चों की जिज्ञासा और रुचि को प्रज्वलित कर सकते हैं तो उन्हें उनकी रुचि के प्रति सकारात्मक सहयोग देना चाहिए (क्ले, 1991रू29)। साक्षर समाजों में, पढ़ने की या छपे हुए शब्दों से अर्थ निकालने की बच्चों की ललक माँ–बाप द्वारा उन्हें पढ़कर सुनाई जाने वाली कहानियों को सुनने से पैदा होती है। सुनने से पढ़ने का मार्ग प्रशस्त होता है, और जब वे छपे हुए शब्दों के वातावरण में डूब जाते हैं तो उससे बच्चों के दृश्य बोध के विकास का आधार बनता है।

यह एक स्थापित तथ्य है कि बच्चों के भाषाई विकास और उनके संज्ञानात्मक विकास के बीच एक घनिष्ठ रिश्ता होता है। बच्चों में उनके संज्ञानात्मक विकास के अनुरूप बहुत–सी भाषाई खोजें करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। दूसरे बच्चों के साथ खेलते हुए या बड़ों के साथ बातचीत करते हुए, वे अपने भाषाई कौशलों के साथ ढेर सारे प्रयोग करते हैं ताकि वे भाषा के सामाजिक रूप से उपयुक्त आदर्शों का उपयोग करके खुद को उपयुक्त रूप से सामाजिक बना सकें। वे शब्दों का प्रयोग करके वर्तमान, अतीत और भविष्य, ऊपर, नीचे या पास और दूर जैसी विभिन्न अवधारणाओं का वर्णन करने के लिए शब्दों का उपयोग करना सीखते हैं। यदि उन्हें कोई पैन या पेंसिल मिल जाए तो वे उससे दीवारों, फर्शों या उनके बिलकुल निकट उपलब्ध किसी वस्तु की सतह पर अनगिनत बिन्दु या छोटी रेखाएँ बनाते हैं। पैन या पेंसिल से किसी भी सतह पर निशान लगाने का कारण किन्हीं वस्तुओं पर ऐसे ही निशानों से उनका पूर्व परिचय होता है। 'वे ऐसे चिन्ह बनाते हैं जो अर्थ और स्वरूप, सूचना और सूचक के बीच किसी अभिप्रेरित सम्बन्ध पर आधारित होते हैं' (क्रेस, 1997:73)।

जब किसी बच्चे के हाथ में कोई किताब आती है तो उसकी प्रतिक्रिया क्या होती है? वह उसे पकड़ता है, खोलता है, कोई पन्ना पकड़ लेता है, और अकसर उसे फाड़ने की कोशिश करता है। कभी–कभी, अकेले में किताब को देखते हुए, बच्चा उसमें दिए गए चित्रों को देखेगा, उनसे बातें करेगा और ऐसे दिखाएगा जैसे कि वह उन्हें पढ़ रहा हो। उस बच्चे को अभी तक अक्षरमाला का कुछ भी अन्दाजा नहीं होता और वह चित्र और अक्षरमाला के अक्षर के बीच कोई भेद नहीं करता। उसके लिए दोनों ही छपी हुई तस्वीरें होती हैं जो कुछ कहती हैं। किसी चित्र को देखते हुए, चित्र की तरफ इशारा करके बच्चा अकसर अपने माता–पिता से पूछता है, "इसमें क्या लिखा है?" जिस दिन बच्चा यह जान लेता है कि तस्वीरें या छपे हुए पन्नों में कुछ रोचक होता है, तो साक्षरता की उसकी यात्रा शुरू हो जाती है। साक्षरता के बुनियादी सिद्धान्त (जैसे कि छपे हुए शब्द वास्तव में बोले गए शब्द ही होते हैं जिन्हें एक खास ढंग से लिखा गया होता है, छपे हुए शब्दों में अर्थ होते हैं और पढ़ना बाएँ से दाएँ या फिर किताब के अग्र भाग से पीछे की ओर होता है) बच्चे को तभी समझ में आना शुरू होते हैं जब उसे माता–पिता या किसी देखभाल करने वाले की दखलन्दाजी के बगैर किताबों को उलटने–पलटने, उनसे खेलने, उनसे बात करने का मौका दिया जाता है। गुडमैन (1992:6) ने सही कहा है कि, "व्यक्तियों में पढ़ने और लिखने की शुरुआत तब होती है जब उनमें यह समझ आ जाती है कि लिखित भाषा अर्थपूर्ण होती है।" पढ़ने की सामग्री से समृद्ध परिवेश इस जागरूकता को बढ़ा ही सकता है जो उभरती साक्षरता की एक पूर्व शर्त है। भारत सरकार के महिला और बाल विकास मंत्रालय द्वारा तैयार की गई प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा पाठ्यक्रम की रूपरेखा (2012) में प्रारम्भिक बचपन के दौरान उभरती साक्षरता को विकसित करने के महत्त्व पर जोर दिया गया है।

साक्षरता पर होने वाली कोई भी चर्चा अकसर किसी साक्षर समाज और साक्षर परिवेश के बारे में हमारी पहले से बनी धारणा से प्रभावित रहती है। किसी साक्षर समाज का बच्चा साक्षरता के माहौल में साँस लेता है, साक्षरता में

रचा–बसा रहता है और उसके बढ़ने के दौर में साक्षरता उसके समग्र विकास का एक अभिन्न हिस्सा होती है। पर किसी अ–साक्षर समाज के बच्चे के बारे में हम क्या कहेंगे? क्या अ–साक्षर माता–पिता की संतानों में साक्षरता के विकास की कोई गुंजाइश है? कई भारतीय परिवारों में, माता–पिता अपने बच्चों को ढेर सारी छपी हुई सामग्री की मदद से साक्षरता प्रदान करने का खर्चीला सपना नहीं देख सकते। दिल्ली में 25–28 अप्रैल 2011 को प्रारम्भिक साक्षरता पर आयोजित किए गए परामर्श की रिपोर्ट कहती है कि, "कई बच्चों का भाषा के लिखित रूपों के साथ पहला सक्रिय परिचय तभी होता है जब वे स्कूल में कदम रखते हैं। ऐसे बच्चों को धीरे–धीरे, अनौपचारिक, सार्थक और गैर–डरावने तरीकों से पढ़ने और लिखने की दुनिया में प्रवेश कराने की जरूरत है। जब स्कूल जाने वाले ये नए बच्चे अपनी कक्षा में होने वाली चीजों को देखते हैं, अनौपचारिक ढंग से एक – दूसरे से बातचीत करते हैं और चित्रकला, गूदागादी, पढ़ने और लिखने की गतिविधियों में खुलकर और उद्देश्यपूर्वक भागीदारी करना शुरू करते हैं, तब वे भाषा के लिखित रूपों के बारे में जानकारी को छाँटना और हासिल करना तथा उनकी अवधारणाओं को समझना शुरू कर देते हैं।"

भारतीय सन्दर्भ में 0–6 साल तक के आयु वर्ग के बच्चों की जरूरतों को पूरा करने के लिए बने आँगनवाड़ी केन्द्र अ–साक्षर परिवारों के बच्चों को छपे अक्षरों से परिचित कराने तथा उन्हें अपने से पढ़ने और लिखने के लिए प्रेरित करने के कार्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। दुर्भाग्यवश, आँगनवाड़ी की कार्यकर्ता उभरती साक्षरता के सिद्धान्त और व्यवहार में उपयुक्त ढंग से प्रशिक्षित नहीं होतीं, जिसके परिणामस्वरूप, वे बच्चों के साक्षरता अनुभव को कोई मजबूत आधार नहीं दे पातीं। आँगनवाड़ी केन्द्रों पर होने वाली पूर्व–स्कूल गतिविधियाँ अकसर औपचारिक स्कूली परिवेश में होने वाली पढ़ने–लिखने की औपचारिक गतिविधियों का सरलीकृत रूप होती हैं। माता–पिता को बच्चे के विकास के बारे में शिक्षित करने के दौरान, आँगनवाड़ी कार्यकर्ता उन्हें इस बात के लिए प्रेरित कर सकती हैं कि वे अपने बच्चों को स्थानीय संसाधनों के रूप में उपलब्ध छपी हुई सामग्री का समृद्ध परिवेश मुहैया कराएँ।

जनजातीय बच्चों को अकसर आँगन में मनकों के साथ खेलते हुए देखा जा सकता है जहाँ वे उन विभिन्न अक्षरों के आकारों को बनाने की कोशिश करते हैं जिन्हें उन्होंने आँगनवाड़ी केन्द्रों पर देखा होता है। आँगनवाड़ी केन्द्रों पर आने वाले बच्चों को चित्र बनाने और गूदागादी के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए, तथा आँगनवाड़ी की कार्यकर्ताओं को बच्चों को कहानियों की किताबें पढ़कर सुनाना चाहिए। यह देखा गया है कि आँगनबाड़ी की कार्यकर्ता सर्वेक्षण के कार्यों और पोषण से जुड़ी गतिविधियों के बोझ से इतनी दबी रहती हैं कि उन्हें बच्चों को कहानियों की किताबें पढ़कर सुनाने का समय ही नहीं मिलता। बच्चों की सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि कैसी भी हो, सभी बच्चों में अलग–अलग आकारों और चित्रों के प्रति उनके पूर्व ज्ञान और अनुभव के आधार पर अपने–अपने ढंग से प्रतिक्रिया देने की एक सहज प्रवृत्ति होती है। हमारे समाज के वंचित तबकों के बच्चे पढ़ना और लिखना क्यों नहीं सीख पाते, इसका कारण वह डरावना तरीका है जिसके द्वारा उनकी देखभाल करने वाले लोग उनका इन गतिविधियों से परिचय कराते हैं। यदि हम छोटे बच्चों का पढ़ने या लिखने से परिचय एक



ऐसी प्रदर्शन कला के रूप में कराएँ जिसके द्वारा वे अपनी नैसर्गिक सृजनात्मक आकांक्षा को अभिव्यक्त कर सकते हैं, तो कोई कारण नहीं है कि ये बच्चे भी पढ़ने और लिखने को एक आनन्ददायी गतिविधि के रूप में करने के लिए प्रेरित नहीं होंगे।

References:

1. Clay, Marie M. (1991). Becoming Literate.Portsmouth,NK:Heinemann.
2. Goodman,Yetta M.,1986. "Children Coming to Know Literacy" in Teale, W.H. and Sulzbt, E. (ed). Emergent Literacy: Writing and Reading, New Jersey,Ablex Publishing Corporation.
3. Kress,G. (1997). Before Writing: Rethinking the Pathway to Literacy. London: Routledge.
4. Report of the Consultation on Early Literacy with some partners of Sir Ratan Tata Trust and NavajbaiRatan Tata Trust, retrieved from **www.srtt.org/institutional_grants/...**
5. Teale, William H and Sulzby, Elizabeth. (1986). Emergent Literacy: Writing and Reading,New Jersey,Ablex Publishing Corporation.
6. The Early Childhood Education Curriculum Framework(Draft) 2012, The Ministry of Women and Child Developme, retrived from **http://wcd.nic.in/schemes/ECCE/Quality_Standards_for_ECCE3%20(7).pdf**

पार्थसारथी मिश्रा अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु के विश्वविद्यालय रिसोर्स सेण्टर में अकैडमिक्स एण्ड पैडागॉजी के विशेषज्ञ हैं। वे अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में जुलाई 2011 से काम कर रहे हैं। भाषा का अध्यापन, साहित्यिक शैली अध्ययन, अँग्रेजी भाषा का शिक्षण तथा शिक्षक प्रशिक्षण उनकी रुचि के क्षेत्र हैं। उनसे partha.misra@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद : भरत त्रिपाठी



भाषा शिक्षण का आधार घर की भाषा

रणदीप कौर

घर पर बच्चों को भाषा का ज्ञान किस प्रकार होता है, और किस तरह बच्चे अपनी घरेलू भाषा के जटिल वाक्यों को भी बोलना सीख जाते हैं, इसे लेकर लोगों के अवलोकन पर आधारित कई सिद्धान्त और शोध मौजूद हैं। बच्चे बहुत कम उम्र में उनके घरों में बोली जाने वाली भाषाओं में बगैर गलतियाँ किए संवाद करना शुरू कर देते हैं। वे अपनी भावनाओं को बिना किसी विशेष प्रयास के व्यक्त करने में सफल रहते हैं, चीजें कैसे काम करती हैं यह जानने के लिए वे बहुत उत्सुक रहते हैं, उनमें सवाल करने की क्षमता होती है और कोई औपचारिक शिक्षा हासिल किए बिना ही उन्हें यह भी पता रहता है कि किस प्रकार अपने तर्कों को सामने रखना है और स्थितियों का विश्लेषण करना है। भाषा सिर्फ सम्प्रेषण का एक साधन भर नहीं है, वह बच्चों में अन्य संज्ञानात्मक क्षमताओं को विकसित करने में भी मदद करती है। इसलिए, बच्चे में भाषा के विकास की प्रक्रिया को समझना बहुत जरूरी है।

मनुष्य का मस्तिष्क होने के कारण हमारे भीतर अपने विचारों को सम्प्रेषित करने की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है और हमारी पहली साँस ही ध्वनि का कम्पन उत्पन्न कर देती है। जब कोई बच्चा पैदा होता है तो वह रोता है और इस रोने के साथ ही भाषा की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। वह रुदन अपने आप में इस बात का संकेत होता है कि बच्चे के भीतर खुद को अभिव्यक्त करने की प्रेरणा उठती है!

एक समय तक, बच्चे अपनी भावनाओं को सिर्फ रोकर ही अभिव्यक्त करते हैं। वे भूख लगने पर रोते हैं, पर उस रुदन की आवाज में और अच्छा न लगने पर या किसी कष्ट के समय होने वाले रुदन की आवाज में फर्क होता है। कष्ट में होने वाले रुदन और खेलते समय किए जाने वाले रुदन में फर्क होता है।

जब बच्चे बड़े होते हैं, तो वे संवाद करने के अन्य तरीकों का प्रयोग करना भी शुरू कर देते हैं। उदाहरण के लिए वे मुस्कुराते हैं और हँसते भी हैं और अपनी भावनाओं को व्यक्त करने की यह प्रक्रिया अगले स्तर तक जाती है। धीरे–धीरे वे अपने परिवेश से शब्द उठाना शुरू कर देते हैं, यद्यपि शुरुआत में वे सिर्फ कुछ ध्वनियाँ ही निकाल पाते हैं, जैसे मम, बाबा, हुँ.... । और, बच्चों को हमेशा ही इन ध्वनियों को अलग–अलग तरीकों और आवाजों में दोहराने में मजा आता है।

जैसा कि भाषाविद, नोम चोम्स्की कहते हैं, "बच्चों में भाषाओं को सीखने की जन्मजात क्षमता होती है, क्योंकि मस्तिष्क में भाषा को ग्रहण करने का एक उपकरण होता है, जो अपने परिवेश से भाषा के रूप में तथा स्पर्श और भावनाओं जैसे अन्य संकेतों के रूप में, दोनों प्रकार की विभिन्न उत्प्रेरक हलचलों के प्राप्त होने पर सक्रिय हो जाता है। उसके द्वारा इन सारे संकेतों पर ध्यान दिया जाता है और वे दर्ज हो जाते हैं तथा अन्दर जाने वाली ये सारी जानकारियाँ मस्तिष्क में बैठने के लिए समय लेती हैं, और फिर वे ग्रहण कर ली जाती हैं। यह एक क्रमिक और स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसके बाद मस्तिष्क द्वारा ग्रहण की जाने वाली ये जानकारियाँ और अनुभूतियाँ, अभिव्यक्तियों में परिवर्तित हो जाती हैं: यानी, घर की प्रथम भाषा, जो बच्चे स्वाभाविक रूप से बोलना शुरू करते हैं और अपने विचारों को व्यक्त करने के उपकरण के रूप में उसका इस्तेमाल करना शुरू कर देते हैं।"

बच्चे के जन्म से लेकर उसके सम्प्रेषण करना शुरू करने तक की इस पूरी प्रक्रिया में, उसके परिवेश से जानकारियों और अनुभूतियों को ग्रहण करने का सिलसिला कम से कम दो साल तक चलता है। इसी प्रकार, जब बच्चा लक्ष्य भाषा या कक्षा की भाषा से रूबरू होता है, तो उसे ऐसी ही जानकारियों से समृद्ध परिवेश की आवश्यकता होती है जिसमें बच्चा उस लक्ष्य भाषा को सुनता है, समझता है, अपने भीतर दर्ज करता है और फलस्वरूप उसे बोलने लगता है। सामान्यतः हमारे औपचारिक परिवेश में हम अपने बच्चों से अपेक्षा करते हैं कि वे तुरन्त ही स्कूल की भाषा को

समझना और बोलना शुरू कर दें, पर हम यह भूल जाते हैं कि लक्ष्य भाषा से पहले उनका वास्ता नहीं पड़ा होता।

बच्चे सबसे पहले अपने लिए, खुद से बात करने के लिए, भाषा का उपयोग करते हैं। छोटे बच्चों को ध्यान से देखने पर हम पाते हैं कि वे उनके सामने आए किसी नए शब्द को कई बार बोलते हैं। वे इन शब्दों को सबसे पहले खुद के लिए उपयोग करते हैं। खुद से बात करना बच्चे के लिए उस शब्द का अर्थ बनाने वाली प्रक्रिया होती है, जो बच्चे के दिमाग में किसी रूप में दर्ज हो जाता है और फिर भविष्य में कभी भी उस शब्द की जरूरत पड़ने पर बच्चा उसका उपयोग करता है।

चूँकि आगे बच्चे सामाजिक मेलजोल के लिए भाषा का उपयोग करते हैं, इसलिए उनके लिए यह समझना जरूरी होता है कि दूसरे किस प्रकार उसका उपयोग कर रहे हैं और उसे समझ रहे हैं। इसके लिए उन्हें भाषा की कुछ विशेष संरचनाओं को समझना होता है, जिन्हें वे भाषा के अर्जन की प्रक्रिया के माध्यम से समझते हैं। यह प्रक्रिया अचेतन ढंग से तब होती है जब वे इस तरह के परिवेश में होते हैं। इस प्रक्रिया में उनके द्वारा व्याकरण की कुछ गलतियाँ करना बहुत स्वाभाविक है, जिसे अनदेखा कर दिया जाना चाहिए।

उदाहरण के लिए खेलते समय जिन कविताओं और शब्दों का वे प्रयोग करते हैं, हो सकता है कि वे उनका सही इस्तेमाल न कर रहे हों या उनमें व्याकरण सम्बन्धी गलतियाँ हों। यह भाषा सीखने की प्रक्रिया है और इसलिए उन्हें न तो हतोत्साहित करना चाहिए और न ही उनकी गलतियों पर टोकना चाहिए।

घर की भाषा, भरपूर भाषाई निवेशों और अमूर्त अनुभवों के माध्यम से फलती–फूलती है। इसलिए, घर की भाषा ऐसा प्रभावशाली स्रोत है जिसका, बच्चों के उनके जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में स्कूल में दाखिला लेने से लेकर स्कूल में इस्तेमाल होने वाली भाषा से उनके भलीभाँति परिचित हो जाने तक, कक्षा में प्रयोग किया जाना चाहिए। पर उस भाषा के बारे में बच्चे को पहले से हासिल जानकारी और ज्ञात भाषा के माध्यम से अर्थ बनाने की प्रक्रिया को कक्षा की वास्तविक परिस्थितियों में अनदेखा कर दिया जाता है।

इसलिए, घर की भाषा के परिवेश को कक्षा की स्थितियों में भाषा शिक्षण का आधार बनाए रखना बहुत महत्त्वपूर्ण है, हालाँकि इस शिक्षण प्रक्रिया को पूरा करने वाले अन्य कारक भी होते हैं।

घर की भाषा दूसरी या तीसरी भाषा की समझ विकसित करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बच्चे अपने घर की भाषा (हिन्दी) में 'स्पून' को 'चम्मच' कहते हैं और उन्हें इस बारे में अच्छी खासी समझ होती है कि चम्मच का प्रयोजन क्या होता है, वह कैसी दिखती है और उससे क्या–क्या किया जा सकता है। 'चम्मच' नामक वस्तु का उल्लेख होते ही उनका मस्तिष्क सम्बन्ध बनाना शुरू कर देता है। और यह समझ दूसरी भाषा या लक्ष्य भाषा तक पहुँच जाती है। स्कूल में बच्चे की भाषा को अनदेखा करने से वह हतोत्साहित महसूस कर सकता है, और स्कूल आने की उसकी हिम्मत ऐसे समय टूट सकती है जब वह अपनी औपचारिक शिक्षा की शुरुआत ही कर रहा होता है।

हर शब्द को किसी क्रिया में तबदील किया जा सकता है और उसे बच्चे की प्रासंगिक भाषा और लक्ष्य भाषा में बोला जा सकता है। क्रिया और स्पर्श से रहित शब्द बच्चे के लिए निष्प्राण ही रहते हैं, इसलिए एक ऐसा परिवेश बनाना जरूरी है जो बच्चों को भाषा के प्रयोग को जीवन के अनुभवों और वस्तुओं से जोड़ने के निरन्तर प्रयास करने के मौके देता हो।

अनुभवों पर आधारित सीखने का यह तरीका बड़े सकारात्मक परिणाम दे सकता है क्योंकि बच्चे का किसी वस्तु विशेष के स्थूल स्वरूप से सम्पर्क होता रहता है। स्कूल के भीतर और उसके आसपास की चीजों को बच्चों के लिए सार्थक स्रोतों के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए। बच्चों को कुछ वस्तुओं के साथ इस तरह के व्यक्तिगत सम्पर्क से जुड़े शब्दों को अपने भीतर दर्ज करने में मदद मिलती है। वे शब्दों को महसूस कर पाते हैं और अपने अनुभव के आधार पर वे जरूरत के मुताबिक उनके बारे में बात करने में समर्थ हो जाते हैं।

छोटे बच्चों की एक और बात है, जिस पर ध्यान दिए जाने की जरूरत है, कि कोई भी गतिविधि करते वक्त वे खुद से बातें करते रहते हैं, चाहे वे अकेले ही क्यों न हों। उनका यह व्यवहार दर्शाता है कि वे खुद के लिए बात को पकड़ने की और उसकी समझ निर्मित करने की कोशिश कर रहे हैं और इस प्रकार बुदबुदाने से वे अपनी दिलचस्पी को भी बनाए रखते हैं। इसे उनके द्वारा की जाने वाली टिप्पणियाँ माना जा सकता है। इसलिए, जब बच्चे कक्षा में कोई गतिविधि कर रहे हों और खुद से बात कर रहे हों, तो शिक्षकों के रूप

में हमें उन्हें ऐसा करने देना चाहिए और इसे शोर की तरह में नहीं लेना चहिए।

चूँकि बच्चे बहुत थोड़ी–सी देर के लिए एकाग्रचित्त रह पाते हैं, इसलिए शिक्षकों के लिए खेल वाले तरीके का इस्तेमाल करना बहुत जरूरी हो जाता है जहाँ बच्चे तमाम तरह की गतिविधियाँ करते हैं। उदाहरण के लिए, कोई कविता सुनाते वक्त बच्चों को शिक्षकों के साथ मिलकर उस कविता को भावपूर्ण अभिनय सहित प्रस्तुत करने के लिए कहा जा सकता है।

सारी बातों को भाव–भंगिमाओं और क्रियाओं का रूप देना बच्चों के लिए जरूरी हो जाता है क्योंकि बच्चों में ढेर सारी ऊर्जा होती है और वे उसे बाहर निकालना चाहते हैं। यदि उनकी ऊर्जा को दबाया जाए, तो वे बहुत व्याकुल हो जाते हैं और उस विशेष गतिविधि में उनकी दिलचस्पी खत्म हो जाती है।

जीवन की शुरुआती अवस्थाओं में कहानी सुनाने के सत्रों के माध्यम से कई सिद्धान्त समझाए जा सकते हैं और इन सत्रों को इस प्रकार से तैयार किया जा सकता है कि बच्चों को ही उस कहानी के पात्र बनने को कहा जाए और फिर वे उनका अभिनय कर सकते हैं। इसके अलावा, बच्चों से कहानियों को चित्रों के माध्यम से भी व्यक्त करवाया जा सकता है, और फिर उन चित्रों को कक्षा की दीवारों पर चिपकाया जा सकता है, जबकि कहानी के कुछ शब्दों का उपयोग बच्चे की प्रासंगिक भाषा और लक्ष्य भाषा, दोनों में किया जा सकता है ताकि जो कुछ भी सीखा गया है बच्चा उसे अपने अन्दर भलीभाँति दर्ज कर ले।

शिक्षकों द्वारा बच्चों पर एकदम शुद्ध व सही लिखने का दबाव नहीं डाला जाना चाहिए, बल्कि शिक्षा के प्रारम्भिक वर्षों में लिखने के कार्यों को लेकर उनका रुख नरम होना चाहिए और ध्यान मौखिक व श्रवण–प्रधान गतिविधियों पर ज्यादा होना चाहिए और उनसे जैसा बन पड़े वैसा लिखने की उन्हें छूट देना चाहिए। बच्चे अपने लेखन का भी एक स्वरूप बना लेते हैं, अतः इस पहलू में भी उन्हें छूट देना चाहिए, क्योंकि यह बच्चे के लिए बहुत लाभप्रद होगा।

प्रेम, व्यक्तिगत रूप से ध्यान रखना और भयमुक्त वातावरण ऐसे दरवाजे हैं जो बच्चों को खुलकर साँस लेने तथा उनके भीतर सृजनात्मकता व कल्पनाशीलता जैसी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने में मदद करते हैं।

बच्चे बेहद जिज्ञासु होते हैं और उनमें सवाल करने और चीजों को खुद समझने की क्षमता होती है, इसलिए उन्हें स्कूल में दाखिला लेने के क्षण से ही एक ऐसा मंच उपलब्ध कराया जाना चाहिए जहाँ वे इन सवालों को व्यक्त कर सकें। इसी प्रकार, उनके भीतर भाषा को ग्रहण करने की जन्मजात क्षमता होती है। उन्हें लक्ष्य भाषा का एक समृद्ध भाषाई वातावरण दिया जाना चाहिए और फिर भाषा को ग्रहण करने की प्रक्रिया को कक्षाओं तक ले जाना चाहिए, यानी, उन्हें एक औपचारिक परिवेश के बजाय एक अनौपचारिक परिवेश दिया जाना चाहिए। इसलिए, लक्ष्य भाषा की समझ विकसित करने के लिए और बच्चे की अभिव्यक्ति के दायरे को विस्तृत बनाने के लिए, घर की भाषा का वातावरण अपने पंखों को फैला लेता है।



References

1. Linguist, Mind & Language by Noam Chomsky
2. The Child's Language & the Teacher by Krishna Kumar
3. National Curriculum Framework 2005

रणदीप कौर वाणिज्य की स्नातक हैं। वे 2011 से स्टेट इंस्टीट्यूट, देहरादून, उत्तराखण्ड में 'कम्युनिकेशन एण्ड एंगेजमेंट' टीम की सदस्य के रूप में अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन से जुड़ी हुई हैं। भाषा का सीखना मस्तिष्क में किस प्रकार घटित होता है, इसे लेकर वे अपनी समझ बनाने की प्रक्रिया में हैं। उनमें लिखने और कविता करने का स्वाभाविक गुण है। उन्हें बच्चों को बड़े ध्यान से देखना बहुत अच्छा लगता है और उनका अधिकांश लेखन उनके इन्हीं अवलोकनों पर आधारित हैं। वे सतत सीखने वाली महिला हैं और उन्हें भ्रमण करना, नई जगहों पर जाना और फोटोग्राफी करना बहुत अच्छा लगता है। उनसे randeep.verma@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी



स्कूल की तैयारी

वृन्दा दत्ता

शिक्षा के अधिकार के सन्दर्भ में प्राथमिक स्कूलों में बच्चों का नामांकन नाटकीय ढंग से 96% तक बढ़ गया है (ए.एस.ई.आर. 2013)। पर अभी भी उनका स्कूलों में टिके रहना, एक कक्षा से आगे न बढ़ना, स्कूल छोड़ देना और सीखने के कमजोर स्तर जैसी समस्याएँ भारत में शिक्षा के क्षेत्र की सबसे पड़ी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। इसलिए स्कूल में बच्चे के दाखिले, सामंजस्य और सफलता को समझना बहुत जरूरी है। इसी सन्दर्भ में घर से निकलकर स्कूल में उसका रमना, अवस्था परिवर्तन की एक महत्त्वपूर्ण घटना हो जाती है। स्कूल से जुड़ा यह अवस्था परिवर्तन अकसर घर से या प्रारम्भिक बाल्यावस्था कार्यक्रम से निकलकर स्कूल में बच्चे के दाखिला लेने के पहले और बाद के कालखण्ड को कहा जाता है (यूनिसेफ, 2012)। जैसा कि शैक्षिक साहित्य में माना गया है, इस अवस्था परिवर्तन के सुगमता पूर्वक होने के लिए, बच्चों को स्कूलों के लिए तथा स्कूलों को बच्चों के लिए तैयार होना जरूरी है (यूनिसेफ, 2012)। अतः स्कूल का यह अवस्था परिवर्तन और स्कूल में प्रवेश की तैयारी एक–दूसरे से जुड़ी हुई अवधारणाएँ हैं।

शुरुआती शैक्षिक साहित्य में, स्कूल की तैयारी के अन्तर्गत सिर्फ संज्ञानात्मक और अकादमिक कौशलों पर जोर दिया गया था। पर अब स्कूल की तैयारी को कहीं अधिक समग्र अवधारणा के रूप में देखा जाता है। यह एकदम से नहीं होती, बल्कि स्कूल की तैयारी को बच्चे के स्कूल में प्रवेश करने के समय तक के जीवन के परिणाम के रूप में देखा जा सकता है (जेनस, ह्यूज डुकू, 2010)। इसके साथ ही स्कूल के लिए तैयार बच्चे के स्कूल में ठीक से काम कर सकने के लिए, ऐसे तैयार स्कूल भी होना चाहिए जो बच्चे के सीखने में और उसके विकास में सहयोग करें। इन कारकों को ध्यान में रखते हुए, यूनिसेफ ने स्कूल की तैयारी का ऐसा प्रतिरूप तैयार किया जहाँ तैयार परिवार, तैयार स्कूल और तैयार बच्चे तीन ऐसे जरूरी आयाम हैं जिनके आपसी सहयोग और क्रियाकलाप से स्कूल की तैयारी हो पाती है। इसके अलावा इसमें अवस्था परिवर्तन के ऐसे कालखण्डों की बात कही गई है जिनमें स्कूल, परिवार और समुदाय एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

तैयार माता–पिता

बाल्यावस्था के प्रारम्भिक वर्षों में बच्चों की देखरेख और उनको प्रोत्साहन मुख्यतः माता–पिता और देखभाल करने वालों के द्वारा ही प्रदान किया जाता है। बच्चों की विभिन्न जरूरतों और उनके विकास को लेकर माता–पिता की भागीदारी और उनकी समझ से उन्हें बच्चों को सही पोषण, प्रेरणा, स्वास्थ्य सेवा और उनकी परवाह करने वाला घरेलू परिवेश देने में मदद मिलती है। इसके बाद ये माता–पिता बच्चों की देखभाल करने वाले ऐसे कार्यक्रमों की तलाश करेंगे जिनके द्वारा बच्चों की देखरेख के उनके प्रयासों में उन्हें सहयोग मिल सके। अलग–अलग सामाजिक–आर्थिक स्तरों वाले परिवार अपने बच्चों के विकास के अलग–अलग अवसर निर्मित करेंगे। लेकिन इस दिशा में माता–पिता की जागरूकता और भागीदारी से, परिवार के सारे संसाधनों का ज्यादा से ज्यादा उपयोग कर पाने में और प्रारम्भिक बाल्यावस्था के दौरान किए जाने वाले प्रयासों का भी उपयोग करने में मदद मिलेगी। ऐसे माता–पिता स्कूलों में बच्चे के सामंजस्य बैठाने में और उसकी प्रगति में गहरी रुचि भी प्रदर्शित कर सकेंगे। ऐसा होने के लिए प्रारम्भिक बाल्यावस्था कार्यक्रम महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनमें माता–पिता की सहभागिता, माता–पिता का सक्रिय रूप से शामिल होना, और माता–पिता की शिक्षा से, माता–पिता को अपने बच्चों की शिक्षा व उनके विकास में भागीदार बनने में मदद मिलती है।

स्कूल के लिए तैयार बच्चे

अब यह तथ्य भली–भाँति प्रमाणित हो चुका है कि जीवन के पहले पाँच वर्ष बच्चों को उनके विकास की सर्वोत्तम

सम्भावना तक पहुँचने में उनकी मदद करने का सबसे बड़ा अवसर होते हैं। इसलिए वैश्विक रूप से इस बात को स्वीकार किया गया है कि प्रारम्भिक बाल्यावस्था में किए जाने वाले प्रयास और कार्यक्रम बच्चे के विकास के लिए बेहद जरूरी घटक हो गए हैं। इसके बाद समग्रतावादी विकास के दृष्टिकोण से यह अनिवार्य हो जाता है कि बच्चों के स्वास्थ्य, पोषण और विकास पर एक समान ध्यान दिया जाए क्योंकि इन सबकी सहक्रिया ही बच्चों को सर्वोत्कृष्ट विकास की ओर ले जाता है। बच्चों के विकास के लिए सहयोग देने में समग्रतावादी विकास का जोर न सिर्फ बच्चों को शारीरिक रूप से तैयार करने पर रहेगा बल्कि सामाजिक और भावनात्मक रूप से सक्षम बनाने पर भी रहेगा। बच्चे के पूर्व–स्कूल के वर्षों तक पहुँचने के साथ ही संज्ञानात्मक और भाषाई कौशलों के लिए विशेष रूप से दिए जाने वाले सहयोग बच्चों को स्कूल के लिए तैयार करने में बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। विकास की इस प्रक्रिया में बच्चा ऐसे आचरण और कौशल भी सीख रहा तथा प्रदर्शित कर रहा होता है जिनका उपयोग वह सीखने की और दूसरों के साथ होने वाले क्रियाकलापों में करता है। अतः, बच्चों को स्कूल के लिए तैयार करने में प्रारम्भिक बाल्यावस्था के दौरान किए जाने वाले प्रयासों और कार्यक्रमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। पर ये तभी प्रभावी हो सकते हैं जब ये गुणवत्तापूर्ण ढंग से काम करें और सन्दर्भानुकूल हों।

बच्चों की सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझने और उम्र व संस्कृति के अनुरूप सीखने की गतिविधियाँ तथा सामग्री प्रदान करने के द्वारा यह सुनिश्चित हो सकेगा कि कार्यक्रम सभी बच्चों तक पहुँच रहा है। भारत में ये कार्यक्रम सरकार, स्वैच्छिक संगठनों (एन.जी.ओ.), निजी तौर पर व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा चलाए जाते हैं। चूँकि इनके लिए कोई नियामक तंत्र नहीं है, इसलिए ये सभी अच्छा कार्यक्रम देने की अपनी–अपनी समझ और क्षमताओं के मुताबिक अपने कार्यक्रम चलाते हैं। लेकिन इसके चलते गुणवत्ता में इतनी ज्यादा विविधता हो जाती है कि इन कार्यक्रमों से बच्चों को मिलने वाले लाभों में भी भारी अन्तर होता है। प्रभावी रूप से इसका मतलब हुआ कि बच्चों की "स्कूल की तैयारी" अलग–अलग स्तर की होती है, और स्कूलों को इस बात को ध्यान में रखना होगा और इसके अनुसार स्कूलों को बच्चों के लिए तैयार होना पड़ेगा।

तैयार स्कूल

तैयार स्कूलों का सबसे महत्त्वपूर्ण कारक सभी बच्चों के लिए सीखने का परिवेश प्रदान करना होता है। आज शिक्षा के अधिकार के अन्तर्गत यह हो सकता है कि प्राथमिक स्कूल अधिकांश बच्चों के लिए उपलब्ध हों और उनकी पहुँच में हों। पर प्राथमिक स्कूलों में सुगमता पूर्वक बच्चों के अवस्था परिवर्तन कर सकने में स्कूलों द्वारा मदद किए जाने के लिए यह जरूरी है कि ये स्कूल बच्चों की क्षमताओं के लिए उपयुक्त गति पर उनकी परिस्थिति विशेष के अनुकूल किताबें, पाठ्यसामग्री तथा पाठ्यचर्या का इस्तेमाल करते हुए स्थानीय जरूरतों को पहचानें और खुद को उनके अनुकूल ढालें। तैयार स्कूलों को तीन मुख्य चरणों पर ध्यान देने की जरूरत है पहला अवस्था परिवर्तन के पूर्व; दूसरा अवस्था परिवर्तन और तीसरा स्कूल में बच्चों का एकीकरण। अवस्था परिवर्तन के पूर्व चरण के लिए, प्रारम्भिक बाल्यावस्था कार्यक्रमों के साथ जुड़ाव बेहद जरूरी हो जाता है। स्कूलों को इस बात से अवगत होना चाहिए कि स्थानीय समुदाय के बच्चे किस प्रकार के शैक्षिक कार्यक्रमों में जाते हैं, कैसे अनुभव और सीखने के स्तर के साथ वे स्कूलों में दाखिल हो रहे हैं, और इसलिए यह भी जानना होगा कि उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक परिस्थिति क्या है। इससे शिक्षकों को यह जानने में मदद मिलती है कि प्रारम्भिक बाल्यावस्था के अनुभवों के सम्बन्ध में उनके बच्चों के समूह में कितनी विविधता है और 'तैयारी के विविध स्तरों' वाले इन बच्चों के साथ उन्हें किस तरह की शिक्षण विधि अपनानी चाहिए। अतः प्रारम्भिक बाल्यावस्था के क्षेत्र में काम करने वालों और स्कूल के शिक्षकों तथा माता–पिता के बीच संवाद आवश्यक हो जाता है ताकि सीखने की प्रक्रिया में भागीदारी करने को लेकर बच्चे के भीतर स्वयं के स्वीकार किए जाने का और उत्साह का भाव जग सके।

बच्चे के स्कूल में दाखिला लेने के एकदम बाद के संक्रमण काल में बच्चे को बहुत सारे सामंजस्य बिठाना पड़ते हैं और बहुत सी चुनौतियाँ झेलना पड़ती हैं। तैयार स्कूल इस परिस्थिति से अवगत होगा और सम्भवतः वहाँ बच्चों के लिए बहुत भिन्न गतिविधियों और पारस्परिक क्रियाकलापों की योजना बनाई जाएँगी जिनसे स्कूल के वातावरण, उसकी दिनचर्या और अपेक्षाओं को लेकर बच्चों में निश्चिन्तता का और स्कूल से परिचित होने का एहसास जगेगा। इसलिए तैयार स्कूल में ऐसे शिक्षक होंगे जो

अवस्था परिवर्तन के इस दौर के प्रति संवेदनशील होंगे और स्कूल की सहायता से एक संक्रमण कालीन पाठ्यचर्या बनाएँगे। यही शिक्षक फिर इस बात को परख सकेंगे कि बच्चों ने कब नई परिस्थितियों से सामंजस्य बैठा लिया है, और अब बच्चों के लिए जरूरी पाठ्यचर्या को, और उनसे की जाने वाली अपेक्षाओं को कैसे सामने रखा जाए। ऐसी प्रक्रियाओं से बच्चों का आत्मविश्वास बढ़ता है और सीखने के नए कार्यों को लेकर उनकी शंकाएँ घट जाती हैं। इस प्रकार अवस्था परिवर्तन के पूर्व, अवस्था परिवर्तन और स्कूल में बच्चों का एकीकरण, ये सभी तैयार स्कूलों के महत्त्वपूर्ण भाग हैं।

निष्कर्ष

स्कूल प्रारम्भ करने की तैयारी तभी ठीक से होती है जब माता–पिता, बच्चे और स्कूल, सभी इस प्रक्रिया में भागीदारी करते हैं। हालाँकि इनमें से प्रत्येक की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है, पर बच्चों को समर्थ बनाने वाला वातावरण तभी निर्मित हो सकता है जब स्कूल के कार्यक्रम और नीतियाँ इसमें सहायक हों। बच्चों को स्कूलों के लिए तैयार करने के लिए यह बेहद आवश्यक है कि उन्हें उच्च स्तरीय प्रारम्भिक बाल्यावस्था कार्यक्रमों का अनुभव हो। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्कूल की तैयारी होने के लिए प्रारम्भिक बाल्यावस्था कार्यक्रमों और प्राथमिक स्कूलों के बीच बेहतर संयोजनों का होना जरूरी है। और अन्त में, यदि हम स्कूल के लिए तैयारी को स्कूल के साथ सामंजस्य स्थापित करने की और स्कूली शिक्षा की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया मानते हैं, तो हमें शिक्षकों को ज्ञान और कौशलों के माध्यम से सशक्त बनाना चाहिए ताकि वे संवेदनशील रह सकें और बच्चों के हितों को सर्वोपरि रखें।



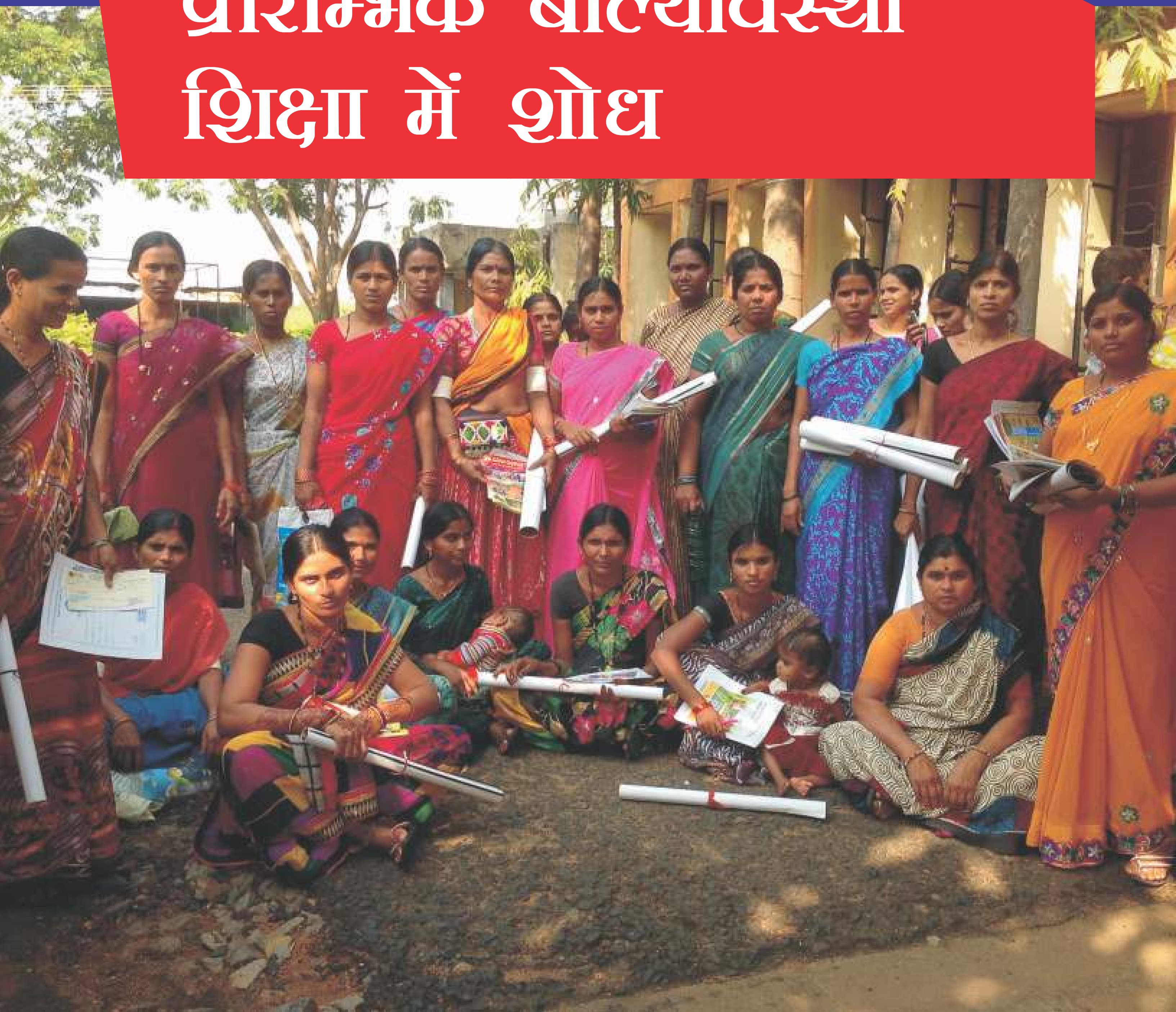
References

1. ASER 2013, 9th Annual Status of Education Report.
2. Janus,M; Hughes,D; Duku,E 2010 Patterns of School Readiness among selected subgroups of Canadian Children: Children with special needs and children with diverse language background. Oxford center for Child Studies, McMaster University, Canada
3. UNICEF 2012 School Readiness and Transition. A companion to child friendly school manual. NY; UNICEF

वृन्दा दत्ता टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुम्बई में सेण्टर फॉर ह्यूमन इकोलॉजी में प्राध्यापक हैं। वे प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा और विकास संघ (ए.ई.सी.ई.डी.) की अध्यक्ष भी हैं, जो छोटे बच्चों के लिए काम कर रही संस्थाओं और व्यक्तियों का एक राष्ट्रीय नेटवर्क है। प्रो. दत्ता ने मानव विकास में पीएच.डी. की है और प्रारम्भिक बाल्यावस्था के क्षेत्र में उन्होंने खूब शोध किए हैं। उन्होंने प्रारम्भिक बाल्यावस्था कार्यक्रमों, शिक्षक प्रशिक्षण में गुणवत्ता तथा बच्चों के विकास पर प्रारम्भिक बाल्यावस्था कार्यक्रमों के प्रभाव जैसे मुद्दों पर काम किया है। उनकी लिखी बहुत सी सामग्री प्रकाशित भी हुई है। 2005 में, प्रो. दत्ता को वर्ल्ड फोरम फाउण्डेशन द्वारा भारत से ग्लोबल लीडर (वैश्विक नेता) के रूप में चुना गया था। उन्हें 2007 में यू.एस.ए. की सीनियर फुलब्राइट रिसर्च फैलोशिप भी मिली थी। उनसे vrinda@tiss.edu या vdatta05@hotmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी

खण्ड स

प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा में शोध





शिक्षिका : शोध में भागीदार, उपभोक्ता तथा शोधकर्ता

टी. एस. सरस्वती

प्रस्तुत लेख शोध से प्राप्त जानकारी का उपभोक्ता होने के अलावा, स्वयं शोधकर्ता के रूप में तथा अन्य लोगों के शोधकार्य में भागीदार के रूप में शिक्षिका की भूमिका के महत्त्व पर प्रकाश डालता है। हम शुरुआत उन कारणों में से कुछ पर नजर डालने से करेंगे जिनकी वजह से लोग प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखरेख तथा शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) के क्षेत्र में शोध करते हैं। ई.सी.सी.ई. में किया गया शोध, चाहे वह बड़े पैमाने पर किया गया हो या छोटे पैमाने पर, कई उद्देश्यों की पूर्ति करता है :

1. व्यक्ति की इस बारे में समझ को बेहतर बनाता है कि बच्चे कैसे सीखते हैं, बच्चे कैसे बड़े होते हैं, कैसे घर और स्कूल में बच्चों के प्रारम्भिक अनुभव उनके बड़े होने और (शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक तथा बौद्धिक) विकास में मदद करते हैं या रुकावट बनते हैं।
2. प्राप्त जानकारी सांस्कृतिक दृष्टि से प्रासंगिक ज्ञान के आधार को निर्मित करने में सहायक होती है। इस जानकारी का उपयोग अन्य लोग व्यावहारिक कार्यों, पैरवी करने तथा नीति के विकास के लिए कर सकते हैं।
3. प्रारम्भिक शिक्षा के परिवेशों में अच्छे प्रचलनों के बारे में, और, अथवा छोटे बच्चों के जीवन को बेहतर बनाने के लक्ष्य वाले सुधार कार्यक्रमों की सफलता तथा असफलता के बारे में साक्ष्य प्राप्त होते हैं।
4. शोध प्रारम्भिक शिक्षा से सम्बन्धित उपयोगी नीतियाँ विकसित करने के लिए भी साक्ष्यों का सहयोग प्रदान कर सकता है।

ई.सी.सी.ई. में शोध मोटे तौर पर तीन स्तरों अर्थात बृहत, मध्यम तथा सूक्ष्म स्तरों के अन्तर्गत आता है। परिभाषा के अनुसार बृहत् स्तर का शोध अकसर पूरी आबादी को समाहित करते हुए बड़े पैमाने पर होता है, जैसे कि छह साल से कम उम्र वाले सभी पूर्व–स्कूल जाने वाले (या न जाने वाले) बच्चों की गणना करना। राज्यों के या पूरे देश के स्तर पर शिक्षकों की उपलब्धता, शिक्षकों की शैक्षिक योग्यताओं, पूर्व–स्कूलों में बुनियादी (अधोसंरचना) सुविधाओं के बारे में किए जाने वाले बड़े पैमाने के सर्वेक्षण भी इसी समूह के अन्तर्गत आते हैं। एन.एस.एस.ओ., ए.एस.ई.आर., प्रथम, एजुकेशनल इनीशिएटिव्स आदि संस्थाओं के द्वारा किए जाने वाले सभी सर्वेक्षण बृहत् स्तर के शोध होते हैं। ये शिक्षा तक पहुँच, उपलब्धता, कमियों इत्यादि का मानचित्रण करने में उपयोगी होते हैं।



चित्र 1. एक बहु–आयामी कार्यसूची – प्रारम्भिक वर्षों में देखरेख तथा शिक्षा पर शोध

मध्यम स्तर के शोध आमतौर पर एक बड़े और प्रतिनिधिक नमूने का उपयोग करते हैं ताकि प्राप्त जानकारियों का सामान्यीकरण किया जा सके। अनेक स्थानों (संस्थाओं, राज्यों, भौगोलिक स्थलों) पर किए जाने वाले अध्ययन भी मध्यम स्तर के अन्तर्गत आते हैं। ऐसे अध्ययन जिनका लक्ष्य औजारों (मापने के उपकरणों) का मानकीकरण करना होता है, ताकि वे बड़े नमूनों के साथ उपयोग किए जा सकें, अकसर इसी स्तर के होते हैं। सूक्ष्म स्तर के शोध का आशय

छोटे पैमाने पर गहराई से किए गए ऐसे अध्ययनों से होता है जो किसी नए विचार की जाँच–पड़ताल करने में तथा किसी विशेष नमूने की विशेषताओं का वर्णन करने में सहायता करते हैं, या प्रायोगिक अध्ययनों से जो किसी दी गई परिकल्पना का परीक्षण करते हैं।

बृहत तथा मध्यम स्तर के शोधों में उत्तरदाता के रूप में शिक्षक की भूमिका

शोधकर्ता की तरह शिक्षिका, जो इस लेख का मुख्य विषय है, की बात करने से पहले हम पहले दो स्तरों, अर्थात बृहत् तथा मध्यम स्तरों, के शोध में उत्तरदाता के रूप में शिक्षक की भूमिका का बहुत संक्षिप्त उल्लेख करेंगे। ई.सी.सी.ई. के क्षेत्र में किए जाने वाले सभी शोधों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शिक्षिका की भागीदारी आवश्यक होती है। चूँकि शिक्षिकाओं के उत्तर उनके स्वयं के भागीदारी अनुभव को प्रतिबिम्बित करते हैं, इसलिए वे कक्षा के कामकाज के प्रचलनों, सुधार कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की खामियों, और नीतियों के विकास के लिए मिलने वाली सीखों आदि की गतिकी को समझने के लिए मूल्यवान होते हैं। जो शोधकर्ता जानकारी इकट्ठी करते हैं वे केवल कार्यक्रमों और कामकाज के वास्तविक प्रचलनों के बीच में मध्यस्थों की भूमिका में होते हैं। शिक्षिकाएँ ही वे व्यक्ति होती हैं जो जोड़ने वाली आवश्यक कड़ी तथा जानकारी प्रदान करती हैं, इसलिए उनके सहयोग का अतिशय महत्त्व होता है।

शोधकर्ता के रूप में शिक्षिका

इस खण्ड में हम एक ऐसी सक्रिय शोधकर्ता के रूप में शिक्षिका के महत्त्व की बात करेंगे जो सवाल उठाती है, प्रासंगिक जानकारी इकट्ठी करती है और उत्तरों की खोज करने के लिए उस जानकारी का विश्लेषण करती है, ताकि फिर कक्षा के परिवेश में, या बच्चों तथा उनके माता–पिताओं के साथ होने वाले उसके क्रियाकलाप में उन उत्तरों का उपयोग किया जा सके।

हमने पहले उल्लेख किया था कि शोध व्यक्ति के प्रश्नों के उत्तरों की व्यवस्थित खोज करना होता है, जो किसी भी चुने गए कार्यक्षेत्र में ज्ञान के आधार को पुष्ट बनाता है। जानकारी के इस कोश के स्वामी के लिए यह ज्ञान उपयोगी होना चाहिए। इस दृष्टि से शिक्षिका बच्चों के बहुत नजदीक और एक लाभप्रद स्थिति में होती है। उसके प्रश्नों का सम्बन्ध, बच्चे कैसे सीखते हैं, क्या चीज उनको प्रेरित करती है, क्यों कुछ बच्चों को सीखने में मजा आता है और कुछ को नहीं आता और ऐसे ही अन्य सवालों से होता है। उसके शोध के केन्द्रीय पात्र वे विद्यार्थी होते हैं जिनके साथ वह प्रतिदिन काम करती है और उसे जो उत्तर प्राप्त होते हैं वे उसकी देखरेख में दिए गए बच्चों की मदद करने में उपयोगी होते हैं। साथ ही साथ यह उसकी सक्षमता की अनुभूति को पुष्ट करता है और शिक्षिका के रूप में उसे सशक्त बनाता है, क्योंकि उसने प्रत्यक्ष साक्ष्यों के आधार पर समाधानों को खोज लिया होता है। वह अपनी क्रियाशीलता में शोधकर्ता है। और वह जिस क्षेत्र में निपुण है वही सक्रिय शोध है।

अब हम प्रारम्भिक शिक्षा के परिवेश में सक्रिय शोध के कुछ उदाहरणों को देखेंगे:

उदाहरण 1. शिक्षिका देखती है कि गीत–गायन के समय में तीन या चार बच्चे समूह में चुपचाप बैठे हुए अन्य बच्चों को गाता हुआ देख रहे हैं। कुछ दिन तक व्यवस्थित निरीक्षण (शोध की रणनीति) के बाद वह उन बच्चों को गायन के समय अपने पास बिठाने का निर्णय लेती है। उनको गाने के लिए प्रोत्साहित करती है तथा गीत के शब्दों में जहाँ आवश्यक हो वह उनकी मदद करती है (सुधार का नियोजित प्रयास)। यदि बच्चे संकोच छोड़कर खुल जाते हैं और अन्यत्र बिठाए जाने पर भी गाना जारी रखते हैं (निरीक्षण), तो शिक्षिका को प्रमाण मिल जाता है कि उसका सुधार–प्रयास (प्रयोग) कारगर हुआ।

उदाहरण 2. शिक्षिका देखती है कि संख्या कौशल (न्यूमरेसी) को बढ़ावा देने वाले सामूहिक अभ्यास के दौरान, कुछ बच्चे आगे–आगे चलते हैं और दिए गए काम पूरा कर लेते हैं, जबकि अन्य निष्क्रिय दर्शक बने रहते हैं। शिक्षिका समूह को जोड़ों में बाँटने का निर्णय लेती है। वह सवालों को इस ढंग से रचती है कि उन्हें सहयोगात्मक तरीके से हल करना आवश्यक हो। यदि कुछ सप्ताह बाद शिक्षिका को पता चलता है कि सामूहिक सीखने की तुलना में ऐसे जोड़े बनाने के परिणामस्वरूप संख्या कौशल में बच्चे बेहतर अंक हासिल करते हैं (और शायद कक्षा में शोर भी अधिक होता है), तो शिक्षिका के भीतर की शोधकर्ता ने फिर एक बार अपने इस प्रश्न, कि "मैं बच्चों की संख्या कौशल सीखने में कैसे मदद कर सकती हूँ?", का व्यवस्थित उत्तर खोज लिया होता है।

उदाहरण 3. शिक्षिका गौर करती है कि मासिक बैठकों में माताओं–पिताओं की भागीदारी बहुत कम है। वह अनुमान लगाती है कि बच्चे के माध्यम से माता–पिता को मौखिक या लिखित सन्देश भेजना काफी नहीं है। वह बच्चों के घरों में जाकर निमंत्रण को निजी बनाने का और माता–पिता से मुलाकातों के दौरान (यह सुनिश्चित करते हुए कि वहाँ उनके पड़ोसी भी उपस्थित हों) उनको कोई जिम्मेदारियाँ लेने को विवश करके उनमें बच्चे की शिक्षा के प्रति स्वामित्व का बोध विकसित करने का निर्णय लेती है। घरों के इन दौरों के अवसर का वह अन्य जानकारी इकट्ठी करने के लिए या बच्चे की प्रगति की चर्चा करने के लिए उपयोग करती है। जहाँ सम्भव हो वहाँ बैठक से पिछली शाम को माता–पिता को याद दिलाने के लिए मोबाइल फोन का उपयोग किया जाता है। यदि अगली तथा बाद की बैठकों में पालकों की उपस्थिति में सुधार होता है, और वह उत्साहवर्धक है, तो शिक्षिका ने इस बारे में, कि क्या चीज काम करती है और कैसे, अपने ज्ञान कोश में एक और उपयोगी बात जोड़ ली है। एक बार फिर, यह ज्ञान सिखाने–सीखने के परिवेश में उठने वाले वास्तविक जीवन के प्रश्नों के उत्तरों की व्यवस्थित खोज पर आधारित है।

हम इस सिलसिले को जारी रखते हुए मार्गदर्शक के रूप में शिक्षिका, एक साथ सीखने वाली तथा शोधकर्ता की साझी भूमिकाओं में शिक्षिका (अवलोकन करती हुई, सुधार के प्रयास करती हुई, प्रयोग करती हुई, अनुमानित धारणाओं का परीक्षण करती हुई, और, सबसे बड़ी बात, ज्ञान का ऐसा भण्डार निर्मित करती हुई जो उसका अपना है!) के उदाहरण दे सकते हैं। निश्चित रूप से इस पूरी कवायद को ध्यान देने योग्य बनाने के लिए, प्राप्त जानकारियों को व्यवस्थित रूप से दर्ज करने का प्रयास शिक्षिका को और भी सशक्त बनाता है। समान सोच वाली शिक्षिकाओं (जो मिलते–जुलते अनुभवों, कक्षा के कामकाज की विधियों, बच्चों, पालकों तथा समुदायों के



साथ काम करती हैं) के साथ जुड़ने से इसमें मदद मिलेगी। ऐसे सहयोगी दलों में शिक्षिकाएँ विभिन्न स्थितियों में उनके सामने आने वाली एक जैसी समस्याओं या चुनौतियों का समाधान खोजने के लिए मिलकर काम करती हैं और एक–दूसरे को प्रेरित करती हैं। इस तरह प्राप्त जानकारियों को सामूहिक बैठकों में साझा करने का अनुभव और भी उत्पादक होता है क्योंकि वह स्वयं के तथा अपनी साथियों के, व्यक्तित्व को सशक्त बनाता है।

उच्च शिक्षा के संस्थानों में कार्यरत अकादमिक विद्वानों का शोध पर विशेषाधिकार नहीं होता। हम हर बच्चे के एक जिज्ञासु वैज्ञानिक होने की बात करते हैं। क्या शिक्षिका की स्थिति इन छोटे वैज्ञानिकों में पूछताछ की भावना का पोषण करने के लिए, और वे कैसे सीखते और बड़े होते हैं, यह समझने के लिए, विशेष रूप से सुविधाजनक नहीं होती? इससे भी बड़ी बात यह है कि शोध करने का अनुभव आत्मिक सन्तोष तथा परिपूर्णता की अनुभूति देता है क्योंकि यह शिक्षिका को कक्षा में आने वाली प्रत्येक समस्या को (जिसे वह समस्या की तरह न देखकर चुनौती की तरह देखती है और उसका समाधान खोजती है) पहचानने और उसका हल निकालने में सक्षम बनाता है। इसलिए यह वांछनीय है कि शिक्षिका को स्वयं शोधकर्ता के रूप में और अधिक शक्ति मिले!

टी. एस. सरस्वती वर्तमान में एक स्वतंत्र बाल विकास परामर्शदाता हैं। वे पहले एम. एस. यूनिवर्सिटी, बड़ौदा के डिपार्टमेंट ऑफ ह्यूमन डेवेलपमेंट एण्ड फेमिली स्टडीज (मानवीय विकास तथा पारिवारिक अध्ययन विभाग) में प्रोफेसर तथा अध्यक्ष थीं। उनसे saraswathi.1939@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : सत्येन्द्र त्रिपाठी

आई.सी.डी.एस.कार्यक्रम

जिला मेडक,आंध्र प्रदेश में पूर्व-स्कूल शिक्षा की समीक्षा

'मेडक ई.सी.ई. इनीशिएटिव' टीम, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन

प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखरेख तथा शिक्षा (आजीवन सीखने के लिए और आधारभूत सामाजिक मूल्यों को आत्मसात करने के लिए) नितान्त आवश्यक बुनियादें रखती है और इसका प्रभाव शिक्षा के प्राथमिक स्तर की सफलता पर भी पड़ता है। वैज्ञानिक साक्ष्यों के अनुसार, प्रारम्भिक वर्षों में मस्तिष्क का विकास ही वह मार्ग होता है जो शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य, सीखने तथा व्यवहार को जीवन भर प्रभावित करता है। यह वैज्ञानिक रूप से बार–बार सिद्ध हुआ है कि प्रारम्भिक शिक्षा की खामियाँ और बाद के स्कूल के वर्षों में उन खामियों को दूर करने के लिए किए गए प्रयास परस्पर सीधे समानुपाती होते हैं।

यह बेहद जरूरी है कि शिक्षा की गुणवत्ता में ध्यान बच्चे के सर्वांगीण विकास पर केन्द्रित हो। संज्ञानात्मक कौशलों पर जरूरत से ज्यादा जोर देने से गैर–संज्ञानात्मक कौशलों का विकास जीवन भर के लिए बाधित हो जाता है।

शोध कहता है कि 0–8 वर्ष का समय मस्तिष्क के बढ़ने और विकसित होने की प्रमुख आयु होती है, बशर्ते कि उसे बच्चे के पारिस्थितिक तंत्र में शामिल सभी लोगों के द्वारा आवश्यक उत्प्रेरणा, अवसर तथा सहायता प्रदान की जाए।

आई.सी.डी.एस. (इंटीग्रेटेड चाइल्ड डेवेलपमेंट सर्विसेज – एकीकृत बाल विकास सेवाएँ) योजना, जो छोटे बच्चों को स्वास्थ्य, पोषण तथा मनोवैज्ञानिक–सामाजिक उत्प्रेरणा प्रदान करने के लक्ष्य वाला शायद संसार का सबसे बड़ा कार्यक्रम है, प्रारम्भिक बाल शिक्षा का समर्थन करने वाले तथा बाल अधिकारों की सुरक्षा करने वाले भारतीय संविधान के प्रावधानों, राष्ट्रीय विधानों और अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाओं का अनुसरण करने के लिए 2 अक्तूबर 1975 को आरम्भ हुई थी। परिणामस्वरूप इसके प्रायोगिक चरण में 33 परियोजनाएँ प्रारम्भ की गई थीं और वर्तमान में देश भर में लगभग 7000 आई.सी.डी.एस. परियोजनाएँ चल रही हैं। यह कार्यक्रम तीन दशक से भी अधिक समय से विश्व बैंक की सहायता से चलाया जा रहा है। आई.सी.डी.एस. को क्रियान्वित करने की प्राथमिक संस्थाएँ आँगनवाड़ी केन्द्र हैं।

बताया जाता है कि ग्रामीण भारत के लगभग 73% बच्चे देश भर में फैले तकरीबन 140 लाख आँगनवाड़ी केन्द्रों में नामांकित हैं। दूसरी ओर, विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में निजी स्कूलों के विस्तार के चलते, सम्पन्न परिवारों के बच्चे, 3 वर्ष जितनी छोटी उम्र से शुरू करते हुए, किसी अन्य प्रकार की ई.सी.सी.ई. (प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देख–रेख तथा शिक्षा) सुविधा का लाभ उठा रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भी निजी पूर्व–स्कूल काफी सक्रिय होकर तेजी से फैले हैं।

स्कूल शिक्षा पर चल रहे अपने कार्यक्रम के स्वाभाविक विस्तार के रूप में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगी कार्यक्रमों तथा सुधार–प्रयासों का अन्वेषण करने में दिलचस्पी है। किसी क्षेत्र में कार्यक्रमों तथा सुधार–प्रयासों को प्रारम्भ करने से पहले उस क्षेत्र की शोध पर आधारित समझ हासिल करने के फाउण्डेशन के दृष्टिकोण का अनुसरण करते हुए, आंध्र प्रदेश के मेडक जिले में प्रारम्भिक बाल्यावस्था प्रयास ने अन्वेषण के लिए एक अध्ययन किया। यह अध्ययन प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा (ई.सी.ई.) के क्षेत्र में आँगनवाड़ी केन्द्रों (ए.डब्ल्यू.सी.) की भूमिका को समझने के लिए किया गया था। आँगनवाड़ी केन्द्र, जिनकी स्थापना महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के एकीकृत बाल विकास सेवाएँ कार्यक्रम के अन्तर्गत की गई,

प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी प्रयास की प्राथमिक वाहक हैं। आँगनवाड़ी केन्द्रों के कामकाज की जाँच–पड़ताल करने के द्वारा यह अध्ययन प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के क्षेत्र की चुनौतियों में से कुछ को समझने का प्रयास करता है। आंध्रप्रदेश में 387 परियोजनाओं के अन्तर्गत 86000 आँगनवाड़ी केन्द्र हैं। मेडक जिले में 11 परियोजनाओं के अन्तर्गत 3041 आँगनवाड़ी केन्द्र हैं। आंध्रप्रदेश के मेडक जिले के 14 मण्डलों में स्थित 270 आँगनवाड़ी केन्द्रों में यह अध्ययन किया गया।

इस अध्ययन का विश्लेषण और व्याख्या आँगनवाड़ी केन्द्रों के कामकाज के बारे में इकट्ठी की गई गुणात्मक तथा परिमाणात्मक जानकारी के आधार पर की गई है। परिमाणात्मक जानकारी इस अध्ययन में शामिल 270 आँगनवाड़ी केन्द्रों के पूरे समूह से एकत्रित की गई। इसके अलावा, पूरे बड़े समूह में से 78 आँगनवाड़ी केन्द्रों को उनके कामकाज तथा ई.सी.ई. गतिविधियों के विस्तृत निरीक्षण के लिए चुना गया। इकट्ठी की गई समग्र जानकारी को तीन मोटी श्रेणियों में संकलित किया जा सकता है :

1. आँगनवाड़ी केन्द्रों तथा उनकी कार्यकर्ताओं की विशेषताएँ;
2. आँगनवाड़ी केन्द्रों के लाभार्थियों की विशेषताएँ;
3. आँगनवाड़ी केन्द्रों की प्रभावशीलता का आकलन।

1. आँगनवाड़ी केन्द्रों तथा उनकी कार्यकर्ताओं की विशेषताएँ

अधिक संख्या ऐसे आँगनवाड़ी केन्द्रों की है जिनमें पर्याप्त भौतिक अधोसंरचना (बुनियादी सुविधाओं) का अभाव है। अध्ययन किए गए आँगनवाड़ी केन्द्रों में से केवल 22% उनके स्वयं के परिसर में चल रहे हैं। अधिकांश केन्द्रों में बुनियादी सुविधाएँ, जैसे शौचालय, स्वयं का जलस्रोत आदि भी नहीं हैं। अधिकांश केन्द्रों में उपलब्ध जगह को खाद्य–वस्तुओं तथा अन्य सामग्री के भण्डारण के लिए ले लिया गया है। आमतौर पर पूर्व–स्कूल की गतिविधियों के लिए अलग से कोई स्थान चिन्हित नहीं किया गया है। तालिका 1 देखें।

तालिका 1

सुविधा सूचकांक में अधिक अंक होने का मतलब ज्यादा सुविधाएँ होना है। अधिकतम सम्भव सूचकांक 11 था।

आँगनवाड़ी सुविधा सूचकांक	मुख्य आँगनवाड़ी केन्द्रों का :	लघु आँगनवाड़ी केन्द्रों का
0	2	36.36
1	12.8	22.73
2	14	22.73
3	25.2	9.09
4	25.6	0
5	13.6	9.09
6	4	0
7	2	0
8	0.8	0
कुल	100	100

आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं में से लगभग 12% मैट्रिकुलेशन (दसवीं कक्षा) पास होने की न्यूनतम आवश्यक शैक्षिक योग्यता को पूरा नहीं करतीं। उनमें से केवल 55.81% मैट्रिकुलेशन पास हैं, और 2.33% पढ़ने और लिखने में पर्याप्त सक्षम नहीं हैं, जबकि कुछ केवल अपना नाम भर लिख सकती हैं। तालिका 2 देखें।

आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण में 26 कार्यकारी दिनों का प्रारम्भिक प्रशिक्षण तथा एक सप्ताह का पुनश्चर्या पाठ्यक्रम (रिफ्रेशर कोर्स) शामिल रहते हैं। प्रशिक्षण के 26 दिनों में से ई.सी.सी.ई.के हिस्से के लिए 4 दिन रखे जाते हैं। समग्र रूप से देखें तो प्रशिक्षण कार्यक्रम अत्यन्त अपर्याप्त है और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम शायद ही कभी आयोजित किया जाता है।

तालिका 2

सामान्य शिक्षा (कार्यकर्ताओं का शैक्षिक स्तर):

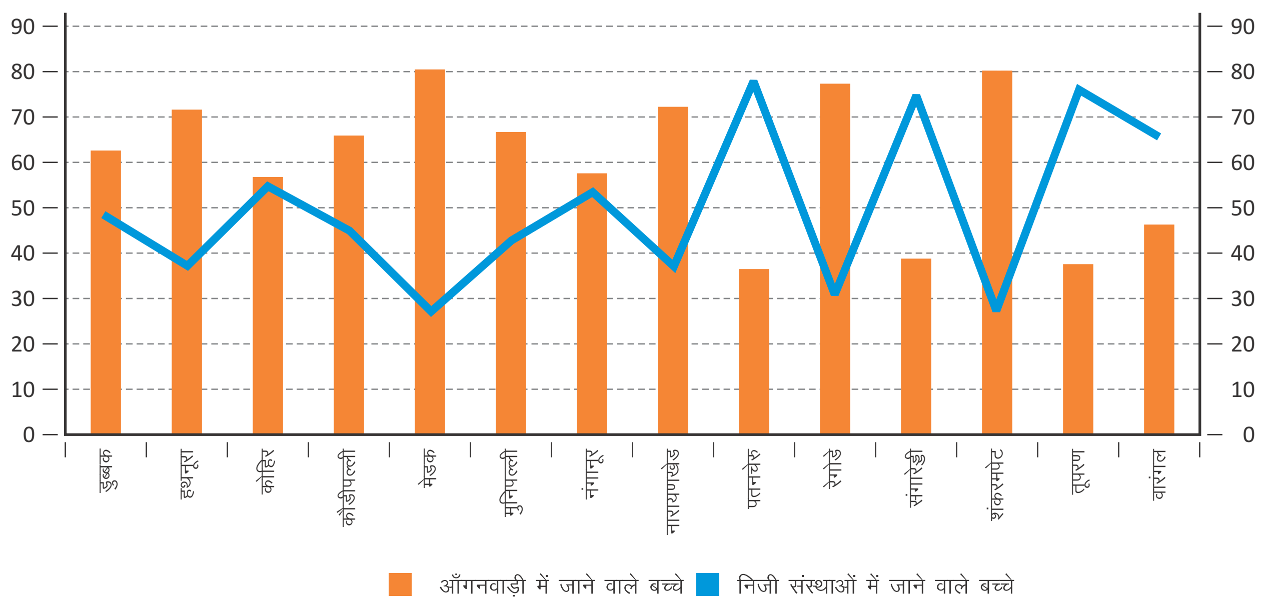
1. 5वीं कक्षा तक	0.39
2. 7वीं कक्षा तक	1.55
3. मैट्रिकुलेशन फेल	10.08
4. मैट्रिकुलेशन पास	55.81
5. इंटरमीडिएट पास	19.38
6. स्नातक	10.47
7. साक्षर मात्र एवं निरक्षर	2.33
कुल	**100**

2. आँगनवाड़ी केन्द्रों के लाभार्थियों की विशेषताएँ

आँगनवाड़ी केन्द्रों में नामांकन स्थान परिवर्तन के साथ बहुत बदलता रहता है। शहरी इलाकों तथा बहुत दूरदराज के इलाकों में यह सबसे कम होता है। नीचे दिया गया ग्राफ अलग–अलग मण्डलों में नामांकन की स्थिति दर्शाता है। परन्तु, एक ही मण्डल के भीतर भी इसमें बदलाव होते हैं, क्योंकि कुछ गाँव मण्डल मुख्यालय और शहर से बहुत दूर होते हैं, जबकि कुछ उसके नजदीक होते हैं और इसलिए तुलनात्मक रूप से उनका अधिक शहरीकरण हो गया होता है। उन गाँवों में नामांकन अधिक होता है जो सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से ज्यादा कमजोर होते हैं। ग्राफ 1 देखें।

ग्राफ 1

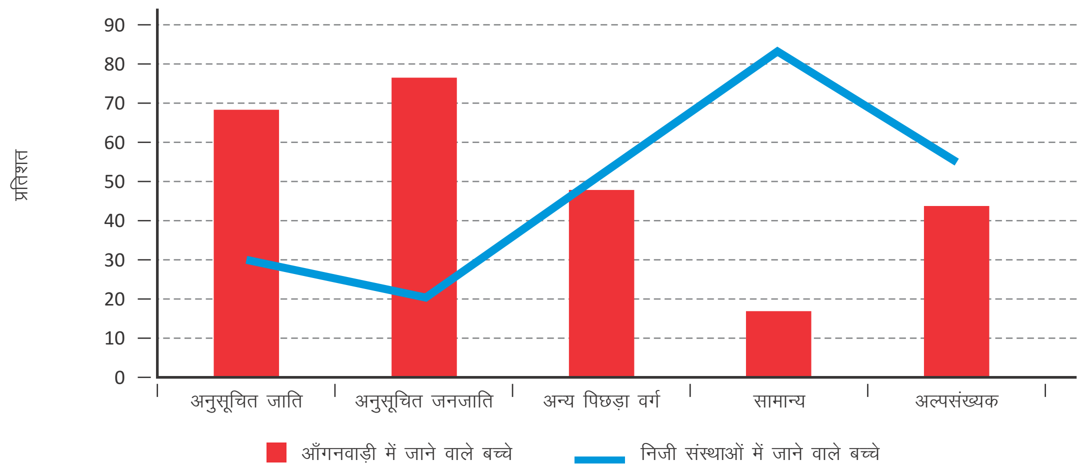
मण्डलों के अनुसार नामांकन की दरें



जो बच्चे पूर्व–स्कूलों में हैं, उनमें से अ–साक्षर माता–पिता वाले परिवारों के बच्चों की आँगनवाड़ियों में नामांकन दर अधिक है। बेहतर सामाजिक–आर्थिक स्थितियों वाले परिवारों के अपने बच्चों को आँगनवाड़ी केन्द्रों में भेजने की सम्भावना कम रहती है। साक्षर माता–पिता वाले बच्चों की नामांकन दरें आँगनवाड़ी केन्द्रों की अपेक्षा निजी स्कूलों में अधिक है। किसी भी प्रकार के पूर्व–स्कूल (आँगनवाड़ी केन्द्र या निजी) में अकुशल मजदूरों के बच्चों की नामांकन दरें कम हैं। इसके अलावा, 3–6 वर्ष के आयु समूह में से 30% बच्चे वर्तमान में किसी भी पूर्व–स्कूल (सरकारी, निजी या आँगनवाड़ी केन्द्र) में नामांकित नहीं हैं। नीचे दिया गया ग्राफ 2 देखें।

ग्राफ 2

सामाजिक श्रेणी के अनुसार आँगनवाड़ियों में नामांकन

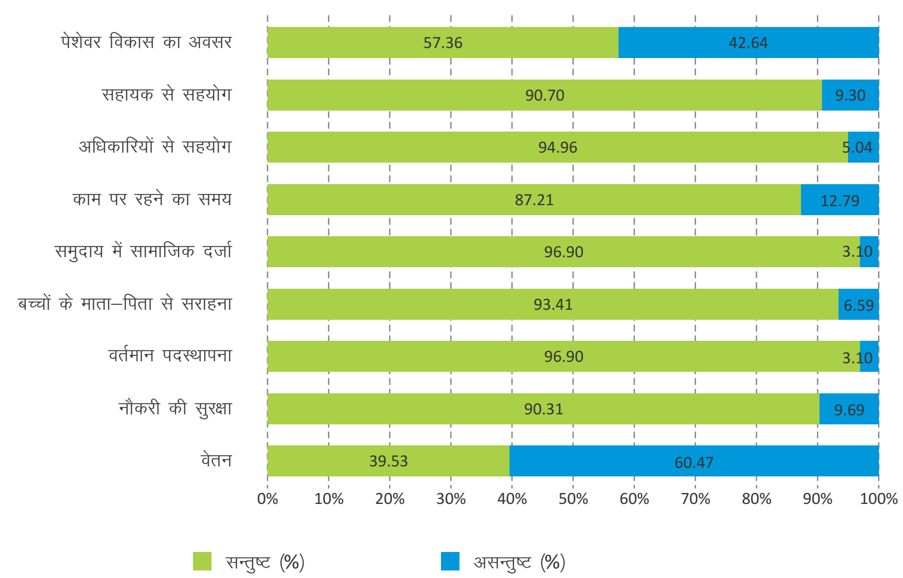


3. आँगनवाड़ी केन्द्रों की प्रभावशीलता

यह स्पष्ट है कि सभी आँगनवाड़ी कार्यकर्ता अपनी नौकरियों से सन्तुष्ट नहीं हैं। परन्तु, वेतन तथा पेशेवर विकास उनके असन्तोष के ज्यादा प्रमुख पहलू हैं। स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि सक्षम ढंग से काम करने के लिए उन्हें और अधिक सहायता की आवश्यकता है। नीचे दिया गया ग्राफ 3 देखें।

ग्राफ 3

आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं में सन्तोष की भावना

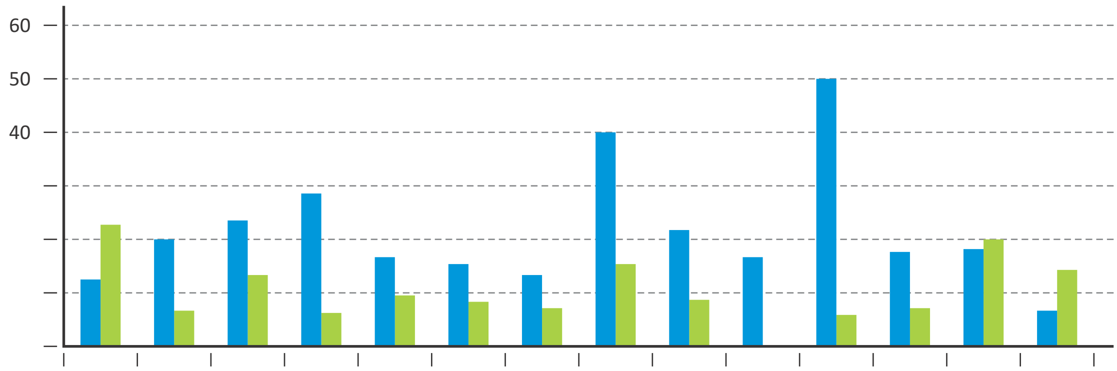


मेडक की आँगनवाड़ी व्यवस्था में बच्चों की अनियमित उपस्थिति एक बड़ी समस्या है। (3–6 वर्ष के आयु समूह के) नामांकित विद्यार्थियों में से केवल 43% ही नियमित रूप से आँगनवाड़ी केन्द्रों में उपस्थित रहते हैं।

कार्यकर्ताओं की अनुपस्थिति भी चिन्ता का विषय है। इस अध्ययन के लिए सूचना देकर किए गए दौरों के दौरान औसतन 22% कार्यकर्ता अनुपस्थित थीं। मेडक के अलग–अलग मण्डलों में भी अनुपस्थिति में बड़े अन्तर हैं। नीचे दिया गया ग्राफ 4 विभिन्न मण्डलों में आँगनवाड़ी कार्यकर्ता और आँगनवाड़ी सहायक की अनुपस्थिति के इस अन्तर को दर्शाता है।

ग्राफ 4

आँगनवाड़ी कार्यकर्ता तथा आँगनवाड़ी सहायक की अनुपस्थिति



	डुब्बक	हथनूरा	कोहिर	कौडीपल्ली	मेडक	मुनिपल्ली	नंगानूर	नारायणखेड	पतनचेरु	रेगोड	संगारेड्डी	शंकरम्पेट	तूपरण	वारंगल
कार्यकर्ता की अनुपस्थिति (%)	12.50	20.00	23.53	28.57	16.67	15.38	13.33	40.00	21.74	16.67	50.00	17.65	18.18	6.67
सहायक की अनुपस्थिति (%)	22.73	6.67	13.33	6.25	9.52	8.33	7.14	15.38	8.70	0.00	5.88	7.14	20.00	14.29

कार्यकर्ता की अनुपस्थिति (%) सहायक की अनुपस्थिति (%)

अनेक कार्यकर्ता निर्धारित कार्य–समय का या ई.सी.ई. गतिविधियों की समय सारिणी का पालन नहीं करतीं। कुछ चुने हुए आँगनवाड़ी केन्द्रों का गुणात्मक निरीक्षण दर्शाता है कि आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की अनुपस्थिति का अन्य सेवाओं की अपेक्षा पूर्व–स्कूल शिक्षा से जुड़ी हुई गतिविधियों पर ज्यादा असर पड़ता है।

हालाँकि आँगनवाड़ी कार्यकर्ता स्वयं अपनी रिपोर्ट में कहती हैं कि वे उच्च स्तरीय पूर्व–स्कूल शिक्षा की गतिविधियाँ चलाती हैं, पर इस अध्ययन के एक हिस्से के रूप में किए गए गुणात्मक निरीक्षणों से उनके इस दावे की पुष्टि नहीं होती। ये गतिविधियाँ मुख्य रूप से बातचीत, तुकान्त पदों (राइम्स) तथा गीतों, खेलों तथा अच्छी आदतों से सम्बन्धित होती हैं। लगभग 90% आँगनवाड़ी कार्यकर्ता इन गतिविधियों को प्रतिदिन संचालित करती हैं। आँगनवाड़ी कार्यकर्ता इन गतिविधियों का संचालन करने में कोई कठिनाई होने का उल्लेख नहीं करतीं। सृजनात्मक गतिविधियाँ, जिनमें कलाएँ तथा हस्तकौशल शामिल रहते हैं, कम नियमितता से, 70% आँगनवाड़ियामें लगभग सप्ताह में एक बार, होती हैं। लगभग 50% कार्यकर्ता सूचित करती हैं कि वैज्ञानिक ज्ञान तथा सांस्कृतिक बोध से जुड़ी हुई गतिविधियाँ संचालित करना सम्भव नहीं है। 50% कार्यकर्ता सूचित करती हैं कि वे कार्य पुस्तिकाओं (मॉड्यूल्स) तथा शिक्षण पुस्तिकाओं का प्रतिदिन अनुसरण करती हैं, जबकि अन्य 38% सप्ताह में एक बार ऐसा करने की सूचना देती हैं।

माताओं–पिताओं में से 41% कहते हैं कि वे आँगनवाड़ी केन्द्रों से अपने बच्चों के लिए अच्छा शिक्षण पाने की अपेक्षा कर रहे हैं। हालाँकि केवल 5% माता–पिता बच्चे की शिक्षा के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए आँगनवाड़ी केन्द्रों पर जाते हैं,

जिसका मतलब है कि उनमें माताओं–पिताओं की भागीदारी नगण्य है।

निष्कर्ष

इस अध्ययन के परिणाम पूर्व–स्कूल शिक्षा की माँग तथा गाँवों और माताओं–पिताओं की सामाजिक–आर्थिक स्थितियों के बीच में कुछ सम्बन्ध होना दर्शाते हैं। इस सम्बन्ध की सही–सही प्रकृति को समझने के लिए और अधिक खोजबीन करने की आवश्यकता है। समाज के उन वर्गों की ओर से आँगनवाड़ी केन्द्रों के लिए अधिक माँग है जो सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से ज्यादा कमजोर हैं। इसका आँगनवाड़ी केन्द्रों के प्रावधान, उन्हें चलाए रखने तथा उनके विकास पर प्रभाव पड़ सकता है और किन्हीं भी सुधार–प्रयासों की योजना बनाते समय इन निहितार्थों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

कार्यकर्ताओं की अधिक अनुपस्थिति देश भर में स्कूलों के शिक्षकों की अनुपस्थिति की दरों के ही समान है। यह दर्शाता है कि इसमें कुछ ढाँचागत समस्याएँ हो सकती हैं जिनका अलग तरीके से समाधान किए जाने की जरूरत है। आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को ई.सी.ई. में बहुत थोड़ा प्रशिक्षण दिया जाता है। एक दयनीय शुरुआत (नियुक्ति के समय कुल 4 दिनों का प्रारम्भिक प्रशिक्षण दिया जाना) और बाद में खराब सहायता व्यवस्था के चलते ई.सी.ई. की गतिविधियों को चलाए रखने के लिए बहुत सीमित गुंजाइश मिलती है। किसी भी नए प्रशिक्षण प्रयास को आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को सहायता प्रदान करनें में निरीक्षकों तथा बाल विकास परियोजना अधिकारियों (सी. पी.डी.ओ.) की जरूरतों और अड़चनों पर भी ध्यान देना होगा। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी

References

1. ICDS-IV Project A handbook (2007) Ministry of Women and Child Development, Government of India.
2. Quality Standards of ECEE (Draft) Women and Child development, Government of India.
3. NCF Position paper (NCERT) on Early Childhood Education
4. National Early Childhood Care and Education Policy (Draft), Ministry of Women and Child Development GOI.
5. Jonanthan Crane and Mallory Barg (2003). Do Early Childhood Intervention Programmes Really Work?;Coalition for Evidence-Based Policy.
6. http://childdevelopmentinfo.com/child-development/piaget

Abbrevations

AWC : Anganwadi Center
AWH : Anganwadi Helper
AWW : Anganwadi Worker
ECE : Early Childhood Education
ICDS : Integrated Child Development Service
CDPO : Child Development Project Officer



आँगनवाड़ियों की पूर्व–स्कूल शिक्षा की गुणवत्ता और प्राथमिक स्कूल शिक्षकों की समझ

सुमित अरोड़ा

कुछ महीने पहले मैं प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखरेख तथा शिक्षा के बारे में पढ़ रहा था। तब मेरी नजर पूर्व–स्कूल शिक्षा के लिए नीति की रूपरेखा, गुणवत्ता के मानदण्ड और पाठ्यक्रम के लिए महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा तैयार किए गए नए मसौदों पर पड़ी। बच्चे को साक्षरता और गणित के शुरुआती कौशलों को प्रदान करके उसे स्कूल के लिए तैयार करना ई.सी.सी.ई. के लक्ष्यों में से एक है। फिर मैं सोचने लगा कि हमें यह कैसे पता चलता है कि बच्चा वास्तव में स्कूल के लिए तैयार हो गया है या नहीं? इसलिए मैंने कुछ प्राथमिक स्कूल शिक्षकों से मिलने का निर्णय लिया, ताकि मैं यह समझ सकूँ कि उनके विचार में जो बच्चे आँगनवाड़ियों में भाग लेने के बाद उनके स्कूलों में आते थे, वे वास्तव में स्कूल के लिए तैयार होते थे या नहीं। यदि नहीं, तो वे आँगनवाड़ियों में गए हुए बच्चों से क्या अपेक्षा करते थे, और आँगनवाड़ियों द्वारा प्रदान की जा रही पूर्व–स्कूल शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने के लिए उनके पास क्या सुझाव थे?

शिक्षकों से लिए गए साक्षात्कारों के विवरणों में जाने से पहले, यहाँ मैं थोड़ी पृष्ठभूमि देना चाहूँगा। भारत सरकार ने 1975 में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के अन्तर्गत बच्चों को सर्वांगीण विकास प्रदान करने के लिए तथा उनकी देख–रेख करने वालों को प्रशिक्षण देने के लिए एकीकृत बाल विकास योजना (आई.सी.डी.एस.) आरम्भ की थी। आई.सी.डी.एस. के अन्तर्गत जन्म के पूर्व से लेकर छह वर्ष तक के बच्चों को स्वास्थ्य, पोषण तथा पूर्व–स्कूल शिक्षा प्रदान करने का तथा गर्भवती और शिशुओं को दूध पिलाने वाली माताओं को स्वास्थ्य तथा पोषण प्रदान करने का एक समग्र कार्यक्रम चलाया जाता है। इसकी सेवाएँ सरकार द्वारा संचालित आँगनवाड़ियों के माध्यम से प्रदान की जाती हैं जिनमें से हरेक का प्रबन्धन एक कार्यकर्ता और एक सहायक द्वारा किया जाता है। आँगनवाड़ियों द्वारा प्रदान की जा रही सेवाओं में भोजन के अतिरिक्त पूरक पोषण, टीकाकरण, स्वास्थ्य की जाँच, चिकित्सा के लिए आगे भेजने की सिफारिशी सेवाएँ, पोषण तथा स्वास्थ्य की जाँच और पूर्व–स्कूल शिक्षा शामिल रहती हैं।

मैंने अपने शोध शिक्षक से बात की और अपने साक्षात्कार आंध्रप्रदेश के मेडक जिले में करने का निर्णय लिया। मैंने मेडक को इसलिए चुना क्योंकि अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन का एक दल पहले से वहाँ आँगनवाड़ियों के साथ काम कर रहा था और अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का विद्यार्थी होने के कारण मुझे उनसे सहायता मिल सकती थी। अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के दल से बातचीत करने के बाद मैंने अपनी शोध योजना को अन्तिम रूप दिया और 5 प्राथमिक स्कूल शिक्षकों के साक्षात्कार लिए। इसमें भाषा की अड़चन थी। मैं तेलगु नहीं बोलता और शिक्षक अँग्रेजी तथा हिन्दी में बहुत सहज नहीं थे। परन्तु फाउण्डेशन दल के एक सदस्य ने द्विभाषिक अनुवाद करने में सहायता की और साक्षात्कार बिना किसी रुकावट के चलते रहे। प्राप्त जानकारी को विभिन्न विषयों के अनुसार बाँटा गया है और मैंने कुछ ऐसे अध्ययनों का सन्दर्भ भी दिया है जिन्होंने समान मुद्दों की बात की है।

बच्चों का प्रदर्शन

सभी शिक्षक इस बात पर एकमत थे कि जिन बच्चों ने आँगनवाड़ियों में समय बिताया था उनके तथा जो बच्चे आँगनवाड़ियों में नहीं गए थे उनके साक्षरता तथा संख्या ज्ञान के कौशलों में कोई अन्तर नहीं था। ई.सी.सी.ई. के लिए पाठ्यक्रम का मसौदा कहता है कि आँगनवाड़ी को निश्चित रूप से बच्चों को शुरुआती साक्षरता और गणतीय कौशल प्रदान करके उन्हें स्कूल के लिए तैयार करना

चाहिए (एम.डब्ल्यू.डी., 2012)। कुछ शिक्षक तो यह कहने की हद तक गए कि जहाँ तक पूर्व–स्कूल शिक्षा का सम्बन्ध था, आँगनवाड़ियाँ बेकार थीं। राव द्वारा किए गए एक अध्ययन (2010) में, जिसमें उन्होंने आंध्रप्रदेश की 2 आँगनवाड़ियों का मूल्यांकन किया था, बताया गया कि, पश्चिम द्वारा विकसित की गई पूर्व–स्कूल शिक्षा की गुणवत्ता के अनुसार जाँचने पर, उन आँगनवाड़ियों में प्रदान की गई पूर्व–स्कूल शिक्षा की गुणवत्ता बहुत खराब थी।

परन्तु, कुछ शिक्षक इस बात से जरूर सहमत थे कि जो बच्चे आँगनवाड़ियों में गए थे उनके अंग संचालन के कौशल उन बच्चों की तुलना में बेहतर थे जो आँगनवाड़ियों में नहीं गए थे। शिक्षकों ने यह भी कहा कि उन्होंने आँगनवाड़ियों में गए हुए बच्चों को पढ़ाना ज्यादा आसान पाया क्योंकि उन्हें घर से दूर रहने की आदत हो चुकी होती थी और जब उनकी माताएँ पास में नहीं होती थीं तो वे व्याकुल नहीं होते थे। वे बच्चे गाने और नाचने में सकुचाते नहीं थे क्योंकि उन्हें आँगनवाड़ियों में इन गतिविधियों की आदत पड़ चुकी होती थी और इससे शिक्षकों का काम ज्यादा आसान हो जाता था। जैसा कि एक शिक्षक ने कहा, "जो बच्चे आँगनवाड़ियों में गए होते थे वे हेलोजन लैम्पों की तरह थे जबकि जो उनमें नहीं गए होते थे वे ट्यूब लाइटों की तरह थे।"

शिक्षकों में से किसी ने भी ऐसे बच्चों के प्रदर्शन के बारे में कोई टिप्पणी नहीं की जो निजी पूर्व–स्कूलों में गए होते थे, क्योंकि ऐसे बच्चे उसके बाद निजी स्कूलों में दाखिला लेते हैं, जबकि जिन शिक्षकों का साक्षात्कार लिया गया था वे सभी सरकारी स्कूलों में काम कर रहे थे। परन्तु उनकी धारणा थी कि निजी पूर्व–स्कूलों में गए बच्चे आँगनवाड़ियों में गए बच्चों से बेहतर प्रदर्शन करते होंगे, मुख्य रूप से इसलिए कि शुल्क वसूल करने के कारण निजी स्कूल माता–पिता के प्रति अधिक जवाबदेह होते हैं।

शिक्षकों की अपेक्षाएँ

आँगनवाड़ियों में समय बिताने के बाद प्राथमिक स्कूल आने वाले बच्चों से शिक्षकों की अपेक्षाएँ उनसे बहुत भिन्न नहीं हैं जिनका उल्लेख ई.सी.सी.ई. के पाठ्यक्रम के मसौदे में किया गया है। इनमें तेलुगु (मातृभाषा) तथा अँग्रेजी की वर्णमालाओं का ज्ञान और संख्याओं का बोध होना शामिल है। कुछ शिक्षकों ने यह भी जिक्र किया कि बच्चों में अंग संचालन के अच्छे कौशल और सुनने के कौशल भी होना चाहिए। वे यह भी मानते थे कि आँगनवाड़ियों को बच्चों में स्वच्छता की आदतें विकसित करना चाहिए और उनको तथा उनके माता–पिता को उनके नियमित रूप से स्कूल आने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। दुर्भाग्य से, ऐसे शोध का अभाव है जिसने आँगनवाड़ियों से उनके पूर्व–स्कूल शिक्षा वाले भाग के सम्बन्ध में प्राथमिक स्कूल शिक्षकों की अपेक्षाओं का दस्तावेजीकरण किया हो। पर उनके विचारों को ध्यान में लेना महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है, क्योंकि ई.सी.सी.ई. के उद्देश्यों में से एक बच्चों को 'स्कूल के लिए तैयार करना' है और यदि प्राथमिक स्कूल शिक्षक ऐसा नहीं सोचते कि ये बच्चे स्कूल के लिए तैयार होते हैं, तो पूर्व–स्कूल कार्यक्रम की गुणवत्ता को सुधारने पर काम किए जाने की आवश्यकता है।

पूर्व–स्कूलों के खराब प्रदर्शन के कारण

इस बात की चर्चा करने पर कि शिक्षक क्यों ऐसा सोचते थे कि आँगनवाड़ियाँ प्राथमिक स्कूल शिक्षकों की अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पा रहीं थीं, हर व्यक्ति ने कहा कि आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के ऊपर काम का अतिशय बोझ था और वे पूर्व–स्कूल भाग पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे सकती थीं। आँगनवाड़ियों द्वारा प्रदान की जा रही 5 अन्य सेवाओं की अपेक्षा पूर्व–स्कूल शिक्षा को बहुत अधिक समय और प्रयास की आवश्यकता होती है, और इस कारण से अकसर इसकी उपेक्षा हो जाती है (शर्मा, सेन तथा गुलाटी, 2008)। राव (2010) भी उल्लेख करती हैं कि आँगनवाड़ी कार्यकर्ता इतने अधिक काम के बोझ से लदी रहती हैं कि उनके द्वारा आई.सी.डी.एस. के शिक्षा वाले भाग पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। द्रेज (2006) कहते हैं कि पूर्व–स्कूल की न केवल आई.सी.डी.एस. द्वारा उपेक्षा की गई है, बल्कि शोधकर्ताओं और लेखकों ने भी खाद्य के मसलों पर ही अधिक ध्यान केन्द्रित किया है। शिक्षकों ने यह भी कहा कि आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को बहुत–सी कागजी कार्यवाही और हिसाब–किताब रखना पड़ता है जिसमें उनका बहुत–सा कीमती समय खर्च हो जाता है, और यह काम महत्त्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि जब

निरीक्षक निगरानी के लिए आते हैं तो वे सारे रिकार्डों की जाँच करते हैं। राव (2010) ने पाया कि एक आँगनवाड़ी कार्यकर्ता बच्चों के साथ काम करने में प्रतिदिन लगभग 45 मिनट व्यतीत करती है जबकि पाठ्यक्रम का मसौदा उनके लिए इस कार्य को 4 घण्टे देना जरूरी मानता है। उनका शेष समय हिसाब–किताब को बनाए रखने और अन्य प्रशासनिक कार्य में लग जाता है।

आँगनवाड़ियों में पूर्व–स्कूल के खराब प्रदर्शन के लिए जो एक अन्य कारण बताया गया वह प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा प्रदान करने के लिए आँगनवाड़ी कार्यकर्ता के प्रशिक्षण का अभाव था। सरकार आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को 26 दिनों का सेवा–पूर्व प्रशिक्षण प्रदान करती है जिसमें से केवल 4 दिन पूर्व–स्कूल शिक्षा वाले भाग के प्रशिक्षण पर खर्च किए जाते हैं (शर्मा, सेन तथा गुलाटी, 2008)। एक कार्यकारी समूह की रिपोर्ट कहती है कि वर्तमान प्रशिक्षण केन्द्र के द्वारा निर्धारित किया जाता है और इस वजह से वह क्षेत्र की जमीनी वास्तविकता से कटा हुआ होता है।

शिक्षकों ने यह भी कहा कि काम के बोझ की तुलना में आँगनवाड़ी कार्यकर्ता का वेतन बहुत कम था और यह भी उनको हतोत्साहित करने का कारण हो सकता है।

अनुशंसाएँ

चूँकि गुणवत्तापूर्ण पूर्व–स्कूल शिक्षा प्रदान करने में आँगनवाड़ियों की असफलता का सबसे बड़ा कारण काम का बोझ था, इसलिए तार्किक रूप से अनुशंसा काम के बोझ को कम करने की थी। चर्चा के दौरान कुछ सुझाव सामने आए जिनमें निम्नलिखित शामिल थे :

1. एक और आँगनवाड़ी कार्यकर्ता की नियुक्ति करना जो विशुद्ध रूप से पूर्व–स्कूल शिक्षा वाले भाग की जिम्मेदारी ले। यह वर्तमान में एक अकेली आँगनवाड़ी कार्यकर्ता के ऊपर दबाव को कम कर देगा और पूर्व–स्कूल शिक्षा की विशेष जानकारी रखने वाले प्रशिक्षक विकसित करेगा। इसका एक अन्य लाभ यह होगा कि एक आँगनवाड़ी कार्यकर्ता की अनुपस्थिति में, दूसरी जिम्मेदारी को सम्भाल सकती है। एक कार्यकारी समूह की रिपोर्ट (2008) कहती है कि दो आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं का होना नितान्त आवश्यक है, ताकि एक 3 से कम उम्र के बच्चों पर और दूसरी 3 से 6 साल की उम्र के बच्चों की पूर्व–स्कूल शिक्षा पर अपना–अपना ध्यान केन्द्रित कर सके।

2. आँगनवाड़ियों की निगरानी और निरीक्षण को बढ़ाना जिसमें हिसाब–किताब रखने पर जोर न देकर प्रदान की जा रही शिक्षा की गुणवत्ता पर ध्यान केन्द्रित हो। राव (2010) भी सुझाव देती हैं कि बच्चों के सर्वांगीण विकास का नियमित अन्तरालों पर आकलन करने के लिए कोई व्यवस्था होना चाहिए।

3. पूर्व–स्कूलों को स्कूलों के नियंत्रण के अन्तर्गत लाना या आँगनवाड़ियों को समुदाय के बीच रखने के बजाय स्कूलों में स्थित करना। दीपा सिन्हा (2006) उल्लेख करती हैं कि स्कूलों से जुड़ी आँगनवाड़ियों में उपस्थिति बेहतर होती है क्योंकि छोटे बच्चे अपने भाई–बहिनों के साथ आँगनवाड़ी केन्द्र आ जाते हैं। यह आँगनवाड़ी कार्यकर्ता को भी प्रोत्साहित करता है क्योंकि उसे एक बड़ी संस्था का हिस्सा होने का एहसास होता है।

हालाँकि इस रिपोर्ट के लिए चुने गए नमूने का आकार बहुत छोटा था, पर फिर भी यह आई.सी.डी.एस. के पूर्व–स्कूल शिक्षा वाले भाग की गुणवत्ता से सम्बन्धित समस्याओं की एक तस्वीर सामने रखती है। ऊपर उल्लेख की गई कुछ अनुशंसाओं पर समुचित विचार किया जाना चाहिए। गुणवत्ता को सुनिश्चित किए बिना केवल आई.सी.डी.एस. का सर्वत्र प्रसार करने भर से कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा। यदि भारत सरकार 6 साल से कम उम्र के 15 करोड़ 80 लाख बच्चों के जीवन को प्रभावित करने के बारे में गम्भीर है तो उसके लिए कुछ त्वरित कार्यवाही किए जाने की अनुशंसा की जाती है।

References

1. Sharma, A., Sharma Sen, R. and Gulati, R (2008): Early childhood development policy and programming in India: Critical issues and directions for paradigm change, Washington D.C, USA: International Journal of Early Childhood pp. 65-83
2. Rao, N. (2010): Pre-school Quality and the Development of Children From Economically Disadvantaged Families in India, Hong Kong: Taylor & Francis Group
3. Sinha, D. (2006): Rethinking ICDS: A Rights Based Perspective, India: Economic and Political Weekly (Vol. 41, No. 34) pp 3689-3694
4. Working Group on Children under Six (2007): Strategies for Children under Six, India: Economic and Political Weekly (Vol. 42, No. 52) pp 87-101
5. Dreze, J. (2006): Universalisation with Quality: ICDS in a Rights Perspective, India: Economic and Political Weekly (Vol. 41, No. 34) pp 3706-3715

सुमित अरोरा इस लेख के लिखे जाने के समय अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के एम.ए. (ऐजुकेशन) कार्यक्रम में अध्ययन कर रहे थे। इससे पहले वे प्रथम ऐजुकेशन फाउण्डेशन की प्रोग्राम रिव्यू एण्ड मैनेजमेंट टीम के सलाहकार के रूप में काम कर रहे थे। वे श्री राम कालेज ऑफ कामर्स, नई दिल्ली से स्नातक की उपाधि प्राप्त हैं। उन्होंने आरम्भ में एक पूँजी–निवेश बैंक में काम किया और उसके बाद वे टीच फॉर इण्डिया के फैलोशिप कार्यक्रम से जुड़ गए जिसमें उन्होंने मुम्बई में एक पूर्ण–कालिक सरकारी स्कूल शिक्षक की तरह कार्य किया उनकी रुचि का क्षेत्र शिक्षकों की शिक्षा तथा स्कूल नेतृत्व है। उनसे sumit.arora13@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद : भरत त्रिपाठी



खण्ड द

कार्यक्षेत्र से



अनसुनी आवाजों के अधिकारों को स्वीकारना

अपूर्वा पटेल

जैसा कि गैब्रिऐला मिस्ट्राल (1948) ने सही कहा है, कि – "हम बहुत–सी भूलें और गलतियाँ करने के दोषी हैं, पर हमारा सबसे बड़ा अपराध यह है कि हमने अपने बच्चों की उचित परवाह न करते हुए उन्हें उनके हाल पर छोड़ दिया है, और उनके जीवन की बुनियाद की हमने कोई परवाह नहीं की। हमारी खुद की बहुत–सी जरूरतों के लिए इंतजार किया जा सकता है। पर बच्चा इंतजार नहीं कर सकता। यही समय है जब उसकी हड्डियाँ आकार ले रही हैं, उसके शरीर में रक्त बन रहा है और उसकी इन्द्रियों का विकास हो रहा है। उसे हम "कल" पर नहीं टाल सकते। उसके लिए हमारे पास एक ही जवाब होना चाहिए "आज"।"

प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा यानी पूर्व–स्कूल वाले वर्ष, वह समय होता है जब बच्चे के विकास के विभिन्न आयामों को समाहित करते हुए एक समग्रतावादी पाठ्यक्रम विकसित किया जाता है। बच्चे के लिए संज्ञानात्मक, सामाजिक, भाषाई और भावनात्मक विकास का एक–सा महत्त्व होता है। इन सन्दर्भों में ई.सी.ई. बच्चों के लिए दूसरों के साथ मेलजोल करने, स्नेह और प्रेरणा के भाव जगाने तथा खोजबीन करने के माध्यम से सीखने के मौके प्रदान करती है। वह छोटे बच्चों के सम्पूर्ण विकास में योगदान करती है और खेल पद्धति की गतिविधियों और सामानों का उपयोग करके उन्हें स्कूल के लिए तैयार करती है।

यह बात विश्व भर में स्वीकृत है कि बाल जीवन के पहले आठ साल सारे जीवन के विकास का आधार रखने वाले सबसे महत्त्वपूर्ण वर्ष होते हैं और इसके पीछे कई ज्ञात कारण हैं। इस क्षेत्र में किए गए कई शोध अध्ययन ऐसे विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं जिनसे यह साबित होता है कि, 'प्रारम्भिक वर्षों में मस्तिष्क का अनुभव–आधारित विकास उन तंत्रिका सम्बन्धी और जैविक रास्तों को खोलता है जो जीवन भर के लिए बच्चों के स्वास्थ्य, उनकी शिक्षा और बर्ताव को प्रभावित करते हैं'। (उदाहरण के लिए: चटर्जी पी., 2007। आर्थिक तरक्की के बावजूद भारत में कुपोषण बढ़ रहा है। लैन्सेट)

जमीनी स्तर पर कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण अवलोकन हैं जो ई.सी.सी.ई. कार्यक्रमों को सही ढंग से जमीनी हकीकत में तबदील न कर पाने से जुड़ी समस्याओं और चिन्ताओं को उठाते हैं:

- सीखने की प्रारम्भिक गतिविधियों और पोषण प्रदान करने की सेवाओं जैसी प्रारम्भिक बाल्यावस्था से जुड़ी विभिन्न सरकारी सेवाओं की उपलब्धता के बावजूद कई बच्चों/परिवारों की इन सेवाओं तक पहुँच या तो बहुत कम होती है, या उपलब्ध सेवाओं की गुणवत्ता ऐसी होती है कि उसकी वजह से इन लोगों की पहुँच सीमित हो जाती है या वे पहुँच से पूरी तरह दूर हो जाते हैं।
- बच्चों के पोषण, स्वास्थ्य, प्रारम्भिक शिक्षा और विकास से सम्बद्ध विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के बीच सहमति को सुगम बनाने के विशेष प्रयासों के बावजूद अभी भी अधिकारियों और परिवारों के बीच समन्वय और तालमेल की कमी है तथा ई.सी.सी.ई. को लेकर जागरूकता और स्पष्टता का भी अभाव है।
- सभी स्तरों पर नीतिगत और क्रियान्वयन सम्बन्धी रूपरेखा, देखरेख व निगरानी का अभाव एक अन्य ऐसा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है जिस पर तुरन्त ध्यान दिए जाने की जरूरत है।

आगे किया गया वर्णन सीधे जमीन पर (बुनियादी रूप से, एक बड़ी छतरी के नीचे दो मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए) किया गया अवलोकन है जो 'निष्पक्षता और समावेशन' के दृष्टिकोण से ई.सी.ई. केन्द्रों की एक दूसरी तस्वीर पेश करता है।

उत्तरकाशी जिले के कुछ संकुलों के ई.सी.ई. आँगनवाड़ी केन्द्रों पर जब मैं गई तो निष्पक्षता और समावेशन का बहुत स्पष्ट उदाहरण मेरे सामने आया जिससे कि इस फलसफे पर भरोसा किया जा सकता है कि, "हमारा कार्य प्रेम की तलाश नहीं है, बल्कि सिर्फ हमारे भीतर ही उन सभी बाधाओं और अवरोधों को तलाशना है जो हमने प्रेम के विरुद्ध खड़े कर रखे हैं।"

निस्सन्देह, अगर आँगनवाड़ी केन्द्रों पर ध्यान केन्द्रित किया जाए तो निष्पक्षता और समावेशन के मुद्दे पर बहुत–सी बातें सराहनीय हैं। पर कई सकारात्मक पहलुओं के साथ कई नकारात्मक पहलू भी मौजूद हैं। पक्षपात या बहिष्कार तब होता है जब किसी के वश के बाहर की विभिन्न स्थितियों के खिलाफ व्यवस्थित ढंग से भेदभाव बरता जाए। ऐसी ही एक स्थिति है भिन्न क्षमताओं वाले बच्चे जिन्हें विशेष ध्यान और देखरेख की जरूरत होती है। इसके विविध कारण हो सकते हैं पर सामाजिक कारण (जिनकी गहरी जड़ें सामाजिक–सांस्कृतिक परम्पराओं में होती हैं) इस बहिष्कार के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जिम्मेदार हैं।

भिन्न क्षमताओं वाले बच्चों के साथ या तो सहानुभूति दिखाने वाला बर्ताव किया जाता है या फिर कई ऐसी बातें होती हैं जिनसे ये बच्चे खुद को असामान्य महसूस करने लगते हैं। जैसे कि आँगनवाड़ी केन्द्रों में उन्हें दूसरे बच्चों से अलग रखा जाता है या उन्हें ऐसी विशेष छूटें दी जाती हैं जिनकी वजह से अन्य बच्चों/बाहरी लोगों का ध्यान उन पर जाता है, या फिर आगन्तुकों से उनका परिचय अलग ढंग से कराया जाता है। कभी–कभी उनके शरीर के किसी अंग के ठीक से काम न कर पाने के बहुत जाहिर कारणों का भी बार–बार उल्लेख किया जाता है। इन केन्द्रों पर किए गए भ्रमणों में तथा आँगनवाड़ी शिक्षकों या सहायकों के साथ बात करने पर ये चीजें बहुत स्पष्ट रूप से सामने आईं। जाहिर है कि इसका असर इन बच्चों के आत्मविश्वास, प्रतिक्रिया देने की क्षमता, अभिव्यक्ति, मनोभावों और सहभागिता पर पड़ता है। इससे वे अपनी क्षमताओं के प्रति अनावश्यक रूप से संवेदनशील हो जाते हैं।

जहाँ तक निष्पक्षता की बात है, तो इसके लिए बच्चे की विभिन्न प्रकार की जरूरतों को ध्यान में रखा जाता है और उन खास जरूरतों को पूरा कर सकने के तरीकों को ईजाद करने का लक्ष्य रखा जाता है। ई.सी.ई. के स्तर पर, विशेष जरूरतों वाले बच्चों का खास ध्यान रखने के अलावा, कक्षा, परिवार या समाज के भीतर तमाम तरह की सुविधाओं तक पहुँचने या उनका उपयोग करने में इन बच्चों की सापेक्षिक विषमताओं या असुविधाओं (इस मामले में, मनोविज्ञानी या भावनात्मक, शारीरिक इत्यादि) के बारे में जागरूक रहना भी जरूरी है।

यहाँ विचार का विषय इन असुविधाओं से निपटने के लिए की जाने वाली सेवाओं का प्रावधान है। एक बड़े स्तर पर देखें तो यह सुविधाओं तक उन लोगों की पहुँच बनाने का सवाल है जिनका ऐसी संस्थाओं में कोई खास प्रतिनिधित्व नहीं होता या जो अपनी माँगों को सही ढंग से सामने नहीं रख पाते।

समावेशन की इस प्रक्रिया का सम्बन्ध सिर्फ सेवाओं तक इन लोगों की पहुँच बनाना ही नहीं है (जो आँगनवाड़ी केन्द्रों की एक प्रमुख जिम्मेदारी है), बल्कि इसका अर्थ इनके अधिकारों को सुनिश्चित करने की पूरी प्रक्रिया में लोगों को भागीदार बनाना, उनकी जरूरतों को स्वीकार करना, नियोजन और सेवा आपूर्ति के प्रबन्धन में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका को बढ़ावा देना, इस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए लोगों को प्रशिक्षण देना तथा उनमें जागरूकता बढ़ाना व इस बारे में शिक्षित करना है।

इस प्रकार अलग–अलग बच्चों की अपनी विशिष्ट जरूरतों को पहचानना और समझना (हर बच्चा अपने आप में अनोखा होता है) तथा उपयुक्त समाधानों को पहचानना, आगे बढ़ाना और लागू करना बहुत जरूरी है।

एक और महत्त्वपूर्ण समस्या है जिस पर ऐसा प्रतीत होता है कि आँगनवाड़ी केन्द्रों में अकसर ही ध्यान नहीं दिया जाता। वह है स्वच्छता सुविधाएँ और स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतों का नदारद होना। हालाँकि हमारे जैसे देश के लिए जरूरी स्वच्छता का प्रावधान और उसे सर्वत्र लागू करना (जिसमें सार्वजनिक संस्थाएँ भी शामिल हैं) हमेशा ही एक चुनौती रही है। लेकिन आज भी यह एक शर्मनाक सत्य है कि आँगनवाड़ी केन्द्रों पर आने वाले ये बच्चे खुले में शौच करते हैं; जो इन बच्चों के सबसे अधिक बीमारियों के शिकार बनने की भयावह हकीकत की तथा उनके बीच स्वास्थ्य के खराब स्तरों की एक बड़ी वजह है। यहाँ जो सवाल खड़े होते हैं कि – आखिर ये बच्चे हैं कौन, उनका वास्ता किससे है, वे

किसकी जिम्मेदारी हैं, उन्हें अलग क्यों छोड़ दिया जाता है, उन तक विभिन्न सुविधाएँ क्यों नहीं पहुँचतीं, वे क्यों उन सुविधाओं का उपयोग नहीं करते या उन जरूरी आदतों का पालन नहीं करते जो उनके अपने स्वास्थ्य और शारीरिक स्वच्छता के लिए बेहद अहम हैं।

इस समस्या के पीछे जो अवलोकन और विश्लेषण किया गया है वह पहले से ज्ञात तथ्य को और मजबूती देता हैः कि निष्पक्षता और समावेशन ऐसे मसले हैं जो केवल जाति, धर्म, क्षेत्र, लिंग, आर्थिक दर्जे इत्यादि पर आधारित कोई भेदभाव न होने तक सीमित नहीं हैं, बल्कि इनका अर्थ यह है कि सभी वर्गों के लोगों तक पहुँचा जाए और उनकी सुविधाओं का खयाल रखा जाए। साथ ही किसी भी कारण से उन्हें इन सुविधाओं से वंचित न किया जाए।

आँगनवाड़ी केन्द्रों के मामले में स्वच्छता और स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतों की अनदेखी इसलिए भी हो सकती है क्योंकि इन्हें अमल में लाने के लिए आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं या सहायकों की तरफ से अलग से प्रयास और मेहनत करने की जरूरत होती है, क्योंकि इन केन्द्रों पर आने वाले बच्चे 2.5–6 वर्ष के आयु–वर्ग के होते हैं। यदि ऐसा नहीं भी हो, तो भी काम के प्रति प्रतिबद्धता दिखा देने से बात नहीं बनेगी, जब तक कि नीतियाँ, जरूरी निवेश और क्रियान्वयन, निष्पक्षता व बराबरी के सिद्धान्त पर आधारित न हों, जो मौलिक रूप से न्याय का सिद्धान्त है। निष्पक्षता और समावेशन में यह स्वीकृति शामिल है कि हर बच्चा अलग है और उसे विशेष सहयोग और देखरेख की, तथा विभिन्न सुविधाओं तक पहुँचने और उन्हें लगातार उपयोग कर सकने में उसे आने वाली खास रुकावटों को दूर करने के जरूरी उपायों की जरूरत होती है।

इस क्षेत्र में की गई अवलोकन यात्रा मेरे लिए लोगों के दिलो–दिमाग के उन कोनों तक पहुँचने और उनके परे जाने का एक अद्भुत अभियान रहा है, जिन्हें मैं हमेशा से खंगालना चाहती थी और उनके साथ काम करना चाहती थी। उन मासूम, अनिश्चित सम्भावनाओं वाली जिन्दगियों तथा ऐसी नीतियों और कार्यक्रमों के पीछे के संघर्षों, सपनों, सफलताओं और भावना के अचरज भरे संसार को याद करते हुए मुझे बेहद हृदयस्पर्शी घटनाओं और मुलाकातों का स्मरण आता हैं। मैं नीचे कुछ ऐसे सुझाव दे रही हूँ जो ई.सी.ई. कार्यक्रम की रूपरेखा को और उसकी प्रभावशीलता को सुधारने में काफी मदद कर सकते हैं:

- अच्छी परवरिश की जरूरत तथा आई.सी.डी.एस. के अंश के रूप में प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के महत्त्व को लेकर लोगों को जागरूक बनाने के लिए (छत्तीसगढ़ में चलाई जा रही उड़ान यात्रा की तर्ज पर) एक जन जागरण अभियान चलाना।
- जमीनी हकीकतों का साझा आकलन करना और आई.सी.डी.एस. को मजबूत बनाने के लिए उपयुक्त नीतियों और उनके क्रियान्वयन हेतु रणनीतियाँ सुझाना।
- ई.सी.ई. पद्धति के जमीनी स्तर पर क्रियान्वयन की प्रभावशीलता का, उसकी अवधारणा, नियोजन और संसाधनों के आबंटन से लेकर सरकार के भीतर अन्तर–विभागीय समन्वय और मौजूदा क्षमताओं, सामग्री के विकास की प्रक्रियाओं, प्रशिक्षण व क्षमता संवर्धन योजना तथा कार्यविधि तक की दृष्टि से समग्र आकलन करना।
- ऊपर उल्लिखित बातों के अलावा ई.सी.ई./ई.सी.सी.ई. कार्यक्रम को लागू करने वाली ई.सी.ई./आई.सी.डी.एस. कार्यकर्ताओं की क्षमताओं को बढ़ाने के सन्दर्भ में कार्यक्रम से जुड़ी प्रक्रियाओं, चुनौतियों और परिणामों की समीक्षा करना।
- विभिन्न भागीदारों के बीच सहमति को मजबूत बनाने के लिए प्रशिक्षण, निगरानी प्रक्रियाओं जैसी उपयुक्त क्रियान्वयन नीतियों को जाँच–परखकर सुझाना, तथा ई.सी.ई. के घटक (जैसे ई.सी.सी.ई.) को महिला एवं बाल विकास (डब्ल्यू.सी.डी.) विभाग से निकालकर शिक्षा विभाग (सर्व शिक्षा अभियान) में लाना और उसे आगे सहयोग प्रदान करना।
- सामग्री के विकास और वितरण, संसाधनों के आबंटन व प्रशिक्षण से जुड़ी प्रक्रियाओं, चुनौतियों और व्यवधानों को समझना तथा ई.सी.ई. को स्थापित और क्रियान्वित करने में शामिल कार्यकर्ताओं के कामकाज की, दूसरे विभागों के बीच आपसी समन्वय की तथा प्रत्येक सहभागी द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकाओं की जाँच और निगरानी करना। और इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए ई.सी.ई. को मजबूत बनाने की रणनीतियाँ तैयार करना।

- ई.सी.ई. में अच्छा प्रदर्शन कर रहे राज्यों के अनुभवों, उनकी आशाजनक कार्यपद्धतियों और वहाँ से हासिल सीखों को दस्तावेजों का रूप देना और उनका प्रसार करना। साथ ही ऐसे प्रतिरूपों को सुझाना जो आई.सी.डी.एस. के अंग के रूप में काम कर सकें। ये प्रयास लोगों में प्रेरणा और बदलाव की भावना जगाने वाले महत्त्वपूर्ण उपकरण का काम करेंगे।

अपूर्वा पटेल मध्य प्रदेश के उज्जैन जिले से ताल्लुक रखती हैं। उन्होंने टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुंबई से समाज कार्य में एम.ए. किया है और 'स्वास्थ्य एवं विकास' उनका कार्यक्षेत्र है। उन्होंने एक शैक्षिक शोध भी किया है जिसका शीर्षक है, 'न्यूट्रीशनल हेल्थ स्टेटस ऑफ ट्राइबल चिल्ड्रन ऑफ रीवा डिस्ट्रिक्ट, मध्य प्रदेश'। उन्हें 'स्वास्थ्य और पोषण' के क्षेत्र में, पूर्व–स्कूली बच्चों के बीच काम करने का जमीनी अनुभव प्राप्त है, जो उन्होंने मुम्बई के 'अपनालय' (रफीक नगर झुग्गी), और 'नवचेतना' (रायगढ़) जैसी संस्थाओं के साथ काम करके हासिल किया है। उनसे apoorva03.patel@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी



अक्षरा फाउण्डेशन का पूर्व–स्कूल शिक्षा कार्यक्रम - आई.सी.डी.एस. योजना के साथ प्रभावी तालमेल के लिए एक पारिस्थितिक तंत्र का निर्माण

के. वैजयन्ती

पृष्ठभूमि

विश्व भर में, प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के क्षेत्र में किए गए शोध कार्य दर्शाते हैं कि बच्चे का प्रारम्भिक परिवेश और अनुभव उसके विकास में बेहद महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक समृद्ध और सहयोगपूर्ण वातावरण में बच्चों के पास सीखने के कई मौके होते हैं और संज्ञानात्मक विकास की भूमिका केन्द्रीय हो जाती है। भारत में राष्ट्रीय प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखरेख एवं शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) नीति, जन्म–पूर्व काल से छह वर्ष की उम्र तक के सभी बच्चों के समग्र विकास के लिए एकीकृत सेवाएँ प्रदान करने की भारत सरकार की प्रतिबद्धता की पुनः पुष्टि करती है।

पिछले दशक में भारत ने सार्वजनिक शिक्षा से जुड़े निवेशों (जैसे कि स्कूलों तक बच्चों की पहुँच बनाना, अधोसंरचना या बुनियादी सुविधाएँ, विद्यार्थियों के नामांकन, शिक्षकों के वेतन और विद्यार्थी–शिक्षक अनुपात आदि क्षेत्र) में व्यापक सुधार करने की दिशा में अच्छी खासी प्रगति की है। लेकिन लगातार यह देखा गया हैं[1] कि विद्यार्थियों की अकादमिक उपलब्धियाँ बहुत निम्न स्तर की हैं। धीरे–धीरे "सीखने के परिणाम" के सिद्धान्त वाली शिक्षा की योजना बनाने वालों के शब्दकोष में स्थाई जगह बन गई है, क्योंकि उनका पूरा ध्यान स्कूलों तक बच्चों की पहुँच बनाने से हटकर स्कूलों की गुणवत्ता पर जाने लगा है। पूर्व–स्कूली शिक्षा (0–6 साल की आयु–वर्ग वाले बच्चों की शिक्षा और देखभाल, ताकि उन्हें स्कूली जीवन के लिए तैयार किया जा सके) किसी भी स्वस्थ शिक्षा व्यवस्था की महत्त्वपूर्ण कड़ी होती है।

नोबेल पुरस्कार विजेता जिम हैकमैन द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि पूर्व–स्कूली शिक्षा का बच्चों के सामाजिक–आर्थिक परिणामों पर और साथ ही उनकी संज्ञानात्मक और गैर–संज्ञानात्मक क्षमताओं पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा हैकमैन का शोध यह भी दिखाता है कि किस तरह प्रारम्भिक बाल्यावस्था के दौरान किए गए प्रयास आगे आने वाले वयस्क जीवन की सफलता और असफलता के जोरदार सूचक होते हैं और यह भी, कि प्रभावी पूर्व–स्कूली शिक्षा किस तरह से प्रारम्भिक कठिनाइयों से होने वाले नुकसानों की आंशिक रूप से भरपाई कर देती है। हाई स्कोप पैरी प्री–स्कूल प्रोग्राम और ऐबेसेडेरियन प्रोग्राम्स पर किए गए दीर्घकालिक अध्ययनों से पता चलता है कि भली प्रकार से समृद्ध प्रारम्भिक वातावरण के परिणामस्वरूप बच्चों की संज्ञानात्मक और गैर–संज्ञानात्मक क्षमताओं में काफी विस्तार होता है। अबाउड (2006) ने पाया कि पूर्व–स्कूल जाने वाले बच्चे, न जाने वाले बच्चों की तुलना में "शब्दावली, शाब्दिक तर्क–वितर्क, गैर–शाब्दिक तर्क–वितर्क और स्कूली तैयारी" के मापदण्डों पर बेहतर प्रदर्शन करते हैं। ऐसे ही नतीजे मैग्न्युसन, मेयर्स, रुह्म, वाल्डफोजेल (2004) द्वारा भी प्रकाशित किए गए, जिन्होंने पाया कि "प्रारम्भिक शिक्षा कार्यक्रमों और अपेक्षाकृत रूप से ऊँचे अकादमिक स्तरों के साथ सम्भावित रूप से जुड़े हुए कई कारकों को नियंत्रित कर देने के बाद स्पष्ट होता है कि जो बच्चे अपने स्कूली दाखिले से पहले गुजरे वर्ष में किसी पूर्व–स्कूल केन्द्र या स्कूल–आधारित पूर्व–स्कूल कार्यक्रम का हिस्सा बनते हैं, वे किण्डरगार्टन की पढ़ाई शुरू करते वक्त पाठन और गणित से जुड़े कौशलों के आकलन में बेहतर प्रदर्शन करते हैं। यह लाभ बच्चों के साथ आगे भी बना रहता है। जब बच्चों के कौशलों को किण्डरगार्टन के बसन्तकालीन सत्र में और पहली कक्षा में आँका जाता है तो उन बच्चों के किण्डरगार्टन में रोके जाने

[1]ASER Reports (2007-2012), PISA Report (2012)

की सम्भावना कम रहती है जो प्रारम्भिक शिक्षा कार्यक्रमों में शामिल रह चुके होते हैं। अधिकांश मामलों में, वंचित समूहों के बच्चों के लिए ये प्रभाव सबसे अधिक होते हैं, जिससे यह आशा जगती है कि पूर्व–स्कूलों में वंचित परिवारों के बच्चों के नामांकन को बढ़ावा देने की नीतियों से शायद स्कूली तैयारी के अन्तर को पाटने में मदद मिले।"

इसी पृष्ठभूमि पर अक्षरा पूर्व–स्कूल शिक्षा कार्यक्रम को विकसित किया गया।

अक्षरा का अनुभव

अक्षरा ने अपना स्कूली तैयारी कार्यक्रम 2006–07 में बेंगलूरु के आँगनवाड़ी कहलाने वाले 200 समेकित बाल विकास सेवा केन्द्रों में शुरू किया। उन्होंने यह कार्यक्रम वेतनभोगी अध्यापकों की मदद से चलाया जो दिन में दो घण्टे पूर्व–स्कूल शिक्षा के किसी एक अंश को सिखाने में लगाते थे। 2009 में इस कार्यक्रम को पूर्व–स्कूल शिक्षा कार्यक्रम के नाम से नई शक्ल दी गई और इसके लिए सीखने–सिखाने की सामग्री (टी.एल.एम.) देकर एक ऐसे विकासपरक, खेल–आधारित पाठ्यक्रम को आगे बढ़ाया गया जो आँगनवाड़ियों में महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा लागू किए गए पाठ्यक्रम से जुड़ा था। साथ ही साथ, इस कार्यक्रम ने आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और सहायकों की टी.एल.एम. को प्रभावी ढंग से (बाल–केन्द्रित, खेल–आधारित ढंग से) इस्तेमाल करने की तथा बच्चों के सीखने के परिणामों को आँकने की क्षमता भी निर्मित की। इसके अलावा इस पुनर्रचित कार्यक्रम ने बाल विकास समितियों के लिए दिशानिर्देश तैयार किए, आँगनवाड़ियों के लिए सामुदायिक सहयोग की प्रक्रियाएँ तैयार कीं और पूर्व–स्कूली शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित रखते हुए अपने सदस्यों को प्रशिक्षित भी किया

अक्षरा ने अपना पूर्व–स्कूल कार्यक्रम इन जगहों में और इन तरीकों से लागू किया हैः बेंगलूरु की गैर–अधिसूचित झुग्गियों में (कार्य–शोध परियोजना के रूप में); महिला उद्यमियों द्वारा निजी पूर्व–स्कूलों के रूप में चलाई जा रही बालवाड़ियों के रूप में; और आँगनवाड़ी केन्द्रों के साथ मिलकर तीसरे कार्यकर्ता को प्रदान करने वाले प्रतिरूप में।[2] लेकिन, सबसे ज्यादा पहुँच और विस्तार उस प्रतिरूप का है जो आँगनवाड़ी केन्द्रों में डब्ल्यू.सी.डी. के सहयोग के साथ लागू किया गया है और इस लेख के केन्द्र में भी यही प्रतिरूप है।

अक्षरा का पूर्व–स्कूल शिक्षा कार्यक्रम

अक्षरा के पूर्व–स्कूल शिक्षा कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य सीखने–सिखाने की उच्च स्तरीय सामग्री और शिक्षकों की क्षमता निर्मित करने जैसे महत्त्वपूर्ण योगदानों वाले एक 'संरचित' पूर्व–स्कूल कार्यक्रम को अमली जामा पहनाना है। इस वास्ते, कार्यक्रम के अन्तर्गत रोजाना 90 मिनिट की पूर्व–स्कूली शिक्षा देने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया। विभिन्न आयामों में बच्चों के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए तैयार की गई एक सुनियोजित, शोध–आधारित पूर्व–स्कूल किट (सामग्री) द्वारा भी इसमें सहायता मिली। इसके अलावा इस कार्यक्रम में प्रशिक्षण और निगरानी का एक मजबूत हिस्सा भी था और साथ ही सक्रिय बाल विकास समितियों के माध्यम से लोगों की भागीदारी को सुनिश्चित करने की प्रतिबद्धता भी थी।

कार्यक्रम के चार महत्त्वपूर्ण अंग

1. **<u>स्कूली तैयारी किट/सीखने–सिखाने की सामग्री</u>:** राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (एन.सी.एफ.) 2005 में पूर्व–स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम की कल्पना एक गतिविधि–आधारित, बाल–केन्द्रित, आयु–उपयुक्त, समग्र विकास के लक्ष्य वाले, परिस्थिति के अनुरूप ढले हुए और लचीले पाठ्यक्रम के रूप में की गई है। इसके अलावा, एन.सी.एफ. में यह उल्लेख भी किया गया है कि हमारे पास पूर्व–स्कूली शिक्षा से जुड़ी सामग्री की कमी है और अकसर इसका उपयोग वास्तव में खेल और सीखने के उद्देश्य में होने के बजाय प्रदर्शन के लिए ज्यादा होता है। आई.सी.डी.एस. कर्नाटक ने एक स्रोत पुस्तिका और तदर्थ 'खेल सामग्री' प्रदान की है जिसे सीखने के उद्देश्यों से जोड़े जाने की जरूरत थी। अक्षरा ने सीखने–सिखाने की संरचित सामग्री में यह कमी देखी, जो गतिविधि–आधारित सीखने के लिए संरचित सामग्री की 'गायब कड़ी' है। इस कमी को भरने के लिए अक्षरा ने मौलिक और किफायती टी.एल.एम. वाली किट

[2]For further reference visit www.akshara.org.in

विकसित की। इस किट में लगभग 40 चीजें हैं। इसे कर्नाटक राज्य बाल कल्याण परिषद, राष्ट्रीय सार्वजनिक सहयोग तथा बाल विकास संस्थान (एन.आई.पी.सी.सी.डी.) और आई.सी.डी.एस. के साथ परामर्श करके तैयार किया गया। फिर इसे कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाली सभी आँगनवाड़ियों में वितरित कर दिया गया। यह किट सीखने की बाल–केन्द्रित, गतिविधि–आधारित पद्धति को सहयोग देती है और बच्चों को अपने तौर पर तथा छोटे–छोटे समूहों में काम करने का मौका मिलता है।

2. **क्षमता का निर्माण:** आँगनवाड़ी कार्यकर्ता जो पूर्व–स्कूल शिक्षक भी होती हैं, अप्रशिक्षित होती हैं और उन्हें संरचित पूर्व–स्कूली शिक्षा की कार्यप्रणाली के बारे में कोई ज्ञान नहीं होता। इस कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिए आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और सहायकों की क्षमताओं का निर्माण बेहद जरूरी है। अक्षरा के प्रशिक्षण में उम्र के हिसाब से बच्चों को अलग करने, कक्षा प्रबन्धन और किट के उपयोग से लेकर बच्चों के आकलन जैसे तमाम मुद्दे शामिल होते हैं। इस कार्यक्रम का एक हिस्सा आई.सी.डी.एस. के पर्यवेक्षकों के लिए उन्मुखीकरण का भी है, ताकि वे सभी पहलुओं से परिचित होकर कर्मचारियों को निरन्तर सहयोग देते रहें।
3. **बाल विकास समितियों (बी.वी.एस.) को सक्रिय करना:** आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के अलावा, अक्षरा में बी.वी.एस. सदस्यों हेतु एक पैकेज तैयार किया गया, जिसमें उन्हें उनकी सहायता के लिए बनी व्यवस्था की भूमिका के बारे में बताया गया और यह भी बताया गया कि वे किस प्रकार आँगनवाड़ी के स्तर पर समस्याओं को पहचान कर सामूहिक प्रयासों के द्वारा उनका स्थानीय समाधान ढूँढ़ सकते हैं।
4. **सीखने के परिणामों का आकलन:** बच्चों के सीखने/ विकास के स्तरों को मापने के उद्देश्य से सीखने के परिणामों के आयु–विशिष्ट सूचकांकों को विकसित किया गया आकलन के इस उपकरण में बच्चे के विकास के सभी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले कौशल–आधारित सूचक शामिल रहते हैं और यह उपकरण गतिविधि–आधारित होता है। कार्यक्रम के द्वारा उसके अन्तर्गत आने वाले तमाम बच्चों का एक कार्यक्रम–पूर्व और कार्यक्रमोत्तर आकलन किया जाता है।

आँगनवाड़ियों में पूर्व–स्कूल शिक्षा कार्यक्रम

अक्षरा ने 2009 से 2012 के बीच बेंगलूरु शहरी जिले की सभी 1776 आँगनवाड़ियों में पूर्व–स्कूल कार्यक्रम लागू किया इस काल में बच्चों के सीखने के परिणामों को आँका गया और उन पर नजर रखी गई। सभी 1776 आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित किया गया और लगभग 143000 बी.वी.एस. सदस्यों को भी प्रशिक्षित किया गया।

2012 में अक्षरा ने अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली स्थित प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा और विकास केन्द्र (सी.ई.सी.ई.डी) को अपने पूर्व–स्कूल कार्यक्रम का मूल्यांकन करने के लिए बेंगलूरु शहरी जिले के आँगनवाड़ी केन्द्रों पर आमंत्रित किया। मूल्यांकन में पाया गया कि अक्षरा ने अपने प्रयास की सर्वांगीण योजना बनाई थी ताकि इसमें व्यवस्था को सुधारने के तमाम पहलुओं, जैसे कि सीखने–सिखाने की सामग्री, पर्यावरण, सभी स्तरों के कर्मचारियों का प्रशिक्षण, निगरानी और जन भागीदारी को शामिल किया जा सके। इस अध्ययन ने निष्कर्ष निकाला कि यह प्रतिरूप, खासतौर पर इसे जिस व्यापक पैमाने पर लागू किया गया उसके लिए सराहना के योग्य है। इसके अलावा, अध्ययन में यह भी महसूस किया गया कि इस कार्यक्रम का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान आँगनवाड़ियों के स्तर का आकलन करने के लिए 70 विशेष गुणवत्ता–आधारित सूचक तैयार करना और बच्चों की वार्षिक प्रगति का आकलन करने के लिए 56 सूचकों की आकलन रूपरेखा विकसित करना था। सी.ई.सी.ई.डी. ने माना कि यह जवाबदेही और परिणामों पर ध्यान केन्द्रित करने की जरूरत की तरफ बढ़ाया गया एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

वर्तमान में अक्षरा का यह पूर्व–स्कूल कार्यक्रम बेंगलूरु शहरी जिले की 335 आँगनवाड़ियों में लागू किया जा रहा है। इस कार्यक्रम के कई अंगों को महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा पर आने वाली अपनी नई नीति में शामिल किया जा रहा है। लेकिन कुछ चुनौतियाँ अभी भी हैं, जैसे कि पूर्व स्कूल पाठ्यक्रम को बच्चों तक पहुँचाने की प्रक्रिया को समझना; आँगनवाड़ी की कर्मचारियों की क्षमता बढ़ाना, जिनसे अपेक्षा की जाती है कि वे तमाम तरह की सामुदायिक और प्रशासनिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए पूर्व–स्कूल की शिक्षक के रूप

में भी काम करें; सेवा–पूर्व और सेवाकाल के दौरान प्रशिक्षण जैसे व्यवस्थागत मुद्दे; नियमित रूप से निगरानी की व्यवस्था, तथा अपर्याप्त मूलभूत सुविधाएँ। इन सब पर काम किया जाना अभी बाकी है।

References

1. Aboud, F.E. (2006) Evaluation of an early childhood pre-school programme in rural Bangladesh
2. Currie, Janet (2000) Early Childhood Intervention Programmes: What do we know?
3. Draft National Early Childhood Care and Education (ECCE) Policy
4. Heckman- , J.J. (2008) Schools, Skills and Synapses, Economic Enquiry
5. Magnuson, A.K., Meyers, M.K., Ruhm, C.J., and Waldfogel, J. (2004) Inequality in Pre-school Education and School Readiness.
6. Vaijayanti.K, Bangalore Education Profile - A Report Card -2009, Akshara Foundation, Bangalore

वैजयन्ती के., वर्तमान में अक्षरा फाउण्डेशन में शोध कार्य की प्रमुख हैं। फाउण्डेशन एक गैर–मुनाफे वाला संगठन है जो कर्नाटक में प्रारम्भिक बाल्यावस्था और प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में काम करता है। वे प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा से लेकर स्कूली शिक्षा तक के मुद्दों पर काम करती रही हैं। उनका अधिकांश शोधकार्य, शिक्षा क्षेत्र में साक्ष्य–आधारित नीतिगत शोधकार्य रहा है। वे ASER–कर्नाटक की प्रमुख भी हैं। उनसे vaijayanti@akshara.org.in पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी

हैन्ड्स टू हार्ट्स इन्टरनेशनल

हैन्ड्स टू हार्ट्स इन्टरनेशनल (एच.एच.आई.) एक गैर सरकारी संगठन (एन.जी.ओ.) है जो बच्चों की देखरेख करने वालों को प्रारम्भिक बाल्यावस्था विकास (ई.सी.डी.) के क्षेत्र में प्रशिक्षण देकर और परवरिश से जुड़े कौशलों को विकसित करके विश्व भर में (0 से 3 साल की उम्र के) कमजोर बच्चों के स्वास्थ्य और विकास के स्तर को बेहतर बनाने के लिए काम करता है।

एच.एच.आई. क्या करता है?

एच.एच.आई. एक सरल, लचीला, किफायती और सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करता है। एच.एच.आई.का प्रशिक्षण महिलाओ में/बच्चों की देखरेख करने वालों में यह काबिलीयत और आत्मविश्वास पैदा करता है कि वे अपने बच्चों के भाषाई, सामाजिक, संज्ञानात्मक और शारीरिक विकास को आगे बढ़ाने की तथा उनके बेहतर स्वास्थ्य और पोषण हासिल करने में सर्वश्रेष्ठ सहयोग देने की अपनी क्षमता को निखार सकें। इस प्रशिक्षण के दौरान आपसी जुड़ाव भी बढ़ता है, जो भविष्य के सारे रिश्तों और एक स्वस्थ सामाजिक ताने–बाने की बुनियाद होता है। ई.सी.डी. के बारे में गुणवत्तापूर्ण जानकारी और ज्ञान प्रदान करने और इसे संस्कृति–विशेष के उपकरणों, परम्पराओं और प्रचलनों से जोड़ देने की पद्धति का इस्तेमाल करने के कारण एच.एच.आई.द्वारा दी जाने वाली जानकारियाँ सभी जगह इस्तेमाल की जा सकती हैं। इसमें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि प्रशिक्षण हासिल करने वालों के पास संसाधनों की उपलब्धता कैसी है या उनकी साक्षरता का स्तर क्या है।



भारत में एच.एच.आई.का इतिहास

एच.एच.आई.ने 2006 में दक्षिण भारत में अनाथालयों के साथ मिलकर काम करना शुरू किया एक साल के भीतर ही, भारत की समेकित बाल विकास सेवा योजना (आई.सी.डी.एस.) द्वारा आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं और सहायकों को एच.एच.आई.भेजा जाने लगा। अब तक करीब 4000 लोग एच.एच.आई.का ई.सी.डी. प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं।

एच.एच.आई.के कार्यों में उनका सबसे महत्त्वपूर्ण भागीदार है, 'विश्व युवा केन्द्र', जो ओडिशा स्थित एक ऐसा सामुदायिक विकास संगठन है जो मुख्य रूप से दरिद्र ग्रामीण लोगों के साथ काम करता है।

2012 में, सेव द चिल्ड्रन इण्डिया ने एच.एच.आई.के साथ अनुबन्ध किया कि वह अपनी कार्य–पद्धति को लागू करके आंध्रप्रदेश में 0–3 वर्ष तक के बच्चों के लिए उनके पहले कार्यक्रम को तैयार करे। एच.एच.आई.ने सेव द चिल्ड्रन में 17 शिक्षक प्रशिक्षकों को प्रशिक्षित किया फिर इन शिक्षक प्रशिक्षकों ने 292 आई.सी.डी.एस. कार्यकर्ताओं, 6700 माताओं को प्रशिक्षित किया और अन्ततोगत्वा 10000 से ज्यादा कमजोर शिशुओं को लाभ पहुँचाया

इन सारी भागीदारियों के माध्यम से, अब तक भारत में (तमिलनाडू, केरल, ओडिशा, दिल्ली और आंध्रप्रदेश के राज्यों में) बच्चों की देखभाल करने वाले 22000 से ज्यादा लोग (अधिकृत सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता, स्वयं सहायता समूहों के भागीदार, अनाथालयों की देखभाल करने वाले, शिशु पालनाघरों के कार्यकर्ता, आई.सी.डी.एस. कार्यकर्ता, और माताएँ) एच.एच.आई.के प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग ले चुके हैं।

एच.एच.आई.प्रशिक्षण के लाभ

बच्चों के लिए

- बीमारी और तनाव की कम घटनाएँ
- वजन बढ़ने और पोषण के स्तर में सुधार
- देखभाल करने वाले के साथ बेहतर जुड़ाव
- स्वास्थ्य और समग्र विकास में सुधार

महिलाओं और देखभाल करने वालों के लिए

- ई.सी.डी. के बारे में 35% से 40% अधिक ज्ञान
- युगाण्डा में अपने बच्चे को भाषा की शिक्षा देने वाली माताओं की संख्या में 193% की बढ़ोतरी
- बच्चे को संज्ञानात्मक प्रेरणा दे पाने में; उसे भोजन कराते हुए उसे सिखाने या उससे बात करने में; और उसके साथ खेलते हुए बिताए गए समय में 100% की बढ़ोतरी;
- उसे शारीरिक दण्ड देने, और खुद तनावग्रस्त हो जाने में कमी
- पोषण योजनाओं, और भोजन कराने के तरीकों में सुधार



लोगों के लिए

- महिलाओं और समुदाय के सदस्यों का सशक्तीकरण
- दीर्घकालिक सामाजिक लागतों में कमी
- सामाजिक जुड़ाव की स्थिति में सुधार
- समुदायों के भीतर बच्चों के साथ ज्यादा मित्रवत आचरण और संवाद

एच.एच.आई.भागीदारियों के माध्यम से काम करता है

एच.एच.आई.का प्रतिरूप उसके भागीदारों के लिए तथा जिन लोगों के लिए वे काम करते हैं उनकी जरूरतों और वास्तविकताओं की दृष्टि से बेहद लचीला और अनुकूलन की क्षमता वाला होता है। एच.एच.आई.के कार्यक्रम का कहीं भी बहुत सरलता से अनुकरण किया जा सकता है। इसमें प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण (ट्रेनिंग ऑफ ट्रेनर्स या टी.ओ.टी.) की पद्धति का इस्तेमाल किया जाता है। उसके भागीदारों और बच्चों की देखभाल करने वालों की क्षमताओं का निर्माण करने के लिए उनको बाद में भी सहयोग प्रदान किया जाता है ताकि कमजोर बच्चों के प्रारम्भिक बाल्यावस्था विकास में सुधार हो।

एच.एच.आई.के काम को सराहना मिलना

- एशिया रीजनल नेटवर्क ऑन अर्ली चाइल्डहुड (ए.आर.एन.ई.सी.) संस्था ने ओडिशा में एच.एच.आई.के काम की पड़ताल की और इसे आशाजनक कार्य माना। उनका शोध 2011 की ए.आर.एन.ई.सी. रिपोर्ट में प्रकाशित हुआ।
- ओडिशा में फेटजर इंस्टीट्यूट की आर्थिक सहायता से एच.एच.आई.के कार्यक्रम का मूल्यांकन किया जा रहा है।
- 2011–13 के बीच प्रारम्भिक बाल्यावस्था की देखभाल और शिक्षा के क्षेत्र में यूनेस्को एशिया का सलाहकार बनने की उपलब्धि।

अनुवाद : सत्येन्द्र त्रिपाठी





रेजियो एमिलिया के दर्शन को भारत के पूर्व-स्कूलों के साथ समेकित करना

नीना कांजीरथ

यह विचार 2000 के शुरुआती सालों तक अपेक्षाकृत नया ही था कि प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा बच्चे के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह अन्ततः मुझे माल्या अदिति इन्टरनेशनल स्कूल की तत्कालीन निदेशक गीता नारायणन के पास वापस ले गया, जिन्होंने हमें रेजियो एमिलिया के रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित किया।

अन्य सभी कार्य पद्धतियों की भाँति, रेजियो का सूत्रपात और उसका निर्माण भी एक विशेष काल और स्थान के दायरे में हुआ। "इस पद्धति को, विध्वंसकारी द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात लॉरिस मालागुज्जी नामक शिक्षक ने इटली के रेजियो एमिलिया नगर के आसपास के गाँवों में रहने वाले माता–पिताओं के साथ मिलकर विकसित किया था। ऐसा माना गया था कि बच्चों को सीखने के एक नूतन ढंग की आवश्यकता थी : यह भी माना गया कि जीवन के विकास के शुरुआती सालों में लोग खुद अपना व्यक्तित्व ढाल लेते हैं और, इसके अलावा, यह भी कि बच्चों के पास सैकड़ों भाषाओं का अपना नैसर्गिक तोहफा होता है। इस पद्धति का लक्ष्य यह सिखाना है कि रोजमर्रा के जीवन में इन बातों का उपयोग कैसे किया जाए। यह अन्वेषण और खोज के माध्यम से चलने वाला व सम्मान, उत्तरदायित्व तथा सामुदायिक भागीदारी के सिद्धान्तों पर आधारित कार्यक्रम था। इसे आत्म–निर्देशित पाठ्यक्रम के माध्यम से बच्चों के हितों पर आधारित एक सहयोगी और समृद्ध बनाने वाले वातावरण में संचालित किया गया।"

(स्रोत : विकीपीडिया)

हमारे प्रारम्भिक शिक्षा केन्द्र के लिए हम रेजियो एमिलिया पद्धति के रूप में एक स्रोत से जुड़ गए थे। हमने उसके समग्र दर्शन को अपनाया और हम लोग मन ही मन बेहद प्रसन्न थे कि रेजियो के कई पहलू, खासतौर पर, उसके "आत्म–निर्देशित पाठ्यक्रम" ने हमें लचीलापन बनाए रखने का मौका दिया, खोजबीन तथा शोध करने की क्षमता दी तथा स्थानीय विशिष्टता और दशाओं के अनुरूप खुद को ढालने का अवसर दिया।

रेजियो एमिलिया का दर्शन प्रमुख रूप से निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित हैः

- बच्चों का उनके सीखने की दिशा के ऊपर कुछ नियंत्रण होना जरूरी है,
- बच्चों को छूने, चलने–फिरने, सुनने और देखने के माध्यम से सीखने का मौका मिलना चाहिए,
- बच्चों का दूसरे बच्चों से, और भौतिक वस्तुओं के साथ एक नाता होता है, जिसे जानने–समझने का तथा और आगे बढ़ाने का मौका उन्हें देना चाहिए,
- बच्चों के पास खुद को अभिव्यक्त करने के अनन्त तरीके और मौके होना चाहिए।

(स्रोत : विकीपीडिया)

रेजियो के लचीले दिशानिर्देशों के अनुसार निर्मित किया गया हमारा भौतिक परिवेश ऐसा था जहाँ पर्यावरण बच्चों के लिए तीसरे शिक्षक के रूप में मौजूद था। वहाँ बच्चों के लिए एक आँगन और कई सारे एकान्त कोने थे जहाँ वे एक दूसरे के साथ खूब समय बिता सकते थे। हमारे इस केन्द्र की इमारत के अन्दर की जगह और बाहर के स्थान अविभाजित (और बगैर दरवाजे वाले) होने के कारण मिले–जुले थे (इसमें बेंगलूरु की स्वास्थ्यवर्धक जलवायु की वजह से हमें बहुत लाभ मिला)। बच्चों के पनपने, उन्नति करने के इस स्थान पर माता–पिताओं का हमेशा स्वागत रहता था। सबसे बड़ी बात हमें उपलब्ध होने वाली सारी चीजों और स्थितियों के प्रति आदर का एक गहरा भाव बना रहता था। इसके अलावा यह एक रसायन मुक्त, पेड़ों, गिरती पत्तियों, फूलों, फलों, वहाँ रहने वाले और आने–जाने वाले भाँति–भाँति के जीव–जन्तुओं और सैकड़ों भाषाओं से भरा

ऐसा वातावरण था जो बच्चों को सहज रहने के लिए तथा एक–दूसरे के साथ लगातार बातों और विचारों को साझा करने के लिए प्रेरित करता था।

हम इस बात के लिए कृतसंकल्प थे कि जहाँ तक हो, खास तरह से अनुकूलित बड़ों की कोई भी दुनिया बच्चों के चरित्र को किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह या बँधी–बँधाई धारणाओं के द्वारा 'आकार' नहीं देगी। इसलिए हम एक ऐसी पाठ्यचर्या बनाने में जुट गए जो बच्चों के भीतर बाहरी दुनिया से अपने सम्बन्धों को लेकर रोमांच पैदा करे। उनके भीतर खुद के प्रति ऐसा गहरा बोध और समझ विकसित करे कि कैसी भी परिस्थिति उनके सामने आ जाए, अपने ऊपर उनका भरोसा जरा भी न डिग पाए।

शिक्षकों को बच्चों के आपसी वार्तालापों से सीखने के लिए और उसे लिखित रूप में दर्ज करने के लिए प्रेरित किया गया। रेजियो के एक पहलू ने मुझे खास तौर पर रोमांचित किया। वह था, बच्चों की सोचने और समस्याओं को हल करने की क्षमताओं को 'उकसाना'। इसी विचार से हमारे सक्रिय भागीदारी वाले विज्ञान कार्यक्रम ने जन्म लिया ।

चूँकि हम ऐसी पीढ़ी से वास्ता रखते थे जिसने अपना मनोरंजन मुख्य रूप से किताबों के द्वारा ही किया था, इसलिए मुझे इस बात का भरोसा था कि खुद से सीखने वाले बच्चों को तैयार करने का सबसे महत्त्वपूर्ण जरिया उनमें पढ़ने के प्रति लगाव और जुनून पैदा करना होता है। मेरे अतिशय सक्रिय स्वभाव से उपजी जरूरतों से जुड़े अवलोकनों पर आंशिक रूप से आधारित एक अन्य नूतन प्रयोग के अन्तर्गत मैंने तय किया कि सभी बच्चों को खुद यह तय करने का अवसर देना चाहिए कि वे कितनी बार और कब अपनी जगह से उठकर जाना चाहें या वापस बैठना चाहें, खड़े होना चाहें, इधर–उधर थोड़ा घूमना चाहें, बात करना चाहें, नतीजों को जितनी बार जरूरी हो देख सकें और अपने सीखने की दिशा तक खुद तय कर सकें। निर्णयों की स्वतंत्रता की इस कार्यविधि को अपनाने से कुछ चौंकाने वाले परिणाम और निष्कर्ष सामने आए। शिक्षक तनाव मुक्त हो गए, वे प्रेम और नरमी से बात करने लगे और अपने आसपास के सभी लोगों के साथ अपने रिश्तों का आनन्द उठाने लगे।

पदों का ऊँच–नीच वाला क्रम और आपसी द्वंद जैसी बातें दूर–दूर तक देखने को नहीं मिलती थीं। इससे एक ऐसा सुरक्षित वातावरण बन गया जिसमें गलतियाँ करने को सीखने के हिस्से की तरह लिया गया – यह एक क्रान्तिकारी, पर शिक्षक और बच्चों, दोनों के लिए सम्भवतः सीखने के सबसे प्रभावी उपकरणों में से एक था। बच्चे बमुश्किल ही बैठकर सीखते थे, लेकिन जब बैठते थे तो उसके पीछे उनकी अपनी मर्जी के विशेष कारण होते थे – जैसे लगातार बदलते हुए समूह बनाने के लिए, या किसी कार्य को पूरा करने के लिए या फिर खाना खाते समय – और इससे सीखना और मजेदार और स्वाभाविक हो जाता था जिसका प्रमाण उनकी बालसुलभ वाणियों में होने वाली धीमी 'चहचहाहट' होती थी जो पूरे वातावरण में धीरे–धीरे फैल जाती।

भारत में रेजियो को लागू करने व अपनाने के लिए हिम्मत और इस भरोसे की जरूरत है कि "सभी बच्चों के पास नैसर्गिक अधिकार होते हैं, और वे सभी सुन्दर, सशक्त, योग्य, सृजनशील, जिज्ञासु, और सम्भावनाओं व महत्त्वाकांक्षी अभिलाषाओं से भरे होते हैं।"

(स्रोत : विकीपीडिया)

रेजियो एमिलिया का अनुसरण करने के लिए जरूरी है कि शिक्षक उत्साहित व रोमांचित रहें और खुद अपने सीखने को लगातार आईना दिखाते रहें। इसके लिए शिक्षण के तरीकों और रवैयों में बुनियादी बदलाव की जरूरत है क्योंकि हमारा अधिकांश शिक्षण हमारे प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से नहीं, बल्कि इस तथ्य के माध्यम से रूपान्तरित होकर बच्चों तक पहुँचता है, कि बच्चों के रूप में दरअसल हमें किस प्रकार पढ़ाया गया था!







नीना कांजीरथ आर. टी. नगर, बेंगलूरु स्थित गाया प्री–स्कूल एण्ड चाइल्ड केयर सेन्टर (www.gaiapreschool.com) की निदेशक हैं। उन्हें शिक्षक प्रशिक्षक, पाठ्यक्रम निर्माता, और पूर्व–प्राथमिक व प्राथमिक स्कूल शिक्षक के रूप में काम करने का 30 वर्षों से भी ज्यादा का अनुभव है। उन्होंने न्यूजीलैण्ड किण्डरगार्टन, श्रीलंका और इंडोनेशिया के ब्रिटिश और अमेरिकन इन्टरनेशनल स्कूलों में और माल्या अदिति इन्टरनेशनल स्कूल, बेंगलूरु में काम किया है। उन्होंने मल्टीमीडिया (बहुमाध्यमी) सामग्री तैयार की और स्कूलनेट, इण्डिया में शिक्षकों को एक बहु–संवेदी पद्धति के उपयोग में प्रशिक्षित किया और उसे कक्षा में तकनीक के उपयोग करने के साथ जोड़ दिया। पाठ्यक्रम तथा कक्षा में सिखाने की पद्धतियों पर पुनर्विचार में मदद करने के लिए क्रिस्टेल हाउस, इण्डिया (साधनहीन बच्चों के लिए एक स्कूल) और ओएसिस इन्टरनेशनल स्कूल के साथ भी काम किया है। उन्होंने बच्चों के लिए अनेक नाटकों का लेखन, निर्देशन और निर्माण किया है। कला और पश्चिमी शास्त्रीय संगीत उनकी पृष्ठभूमि है। वे बेंगलूरु वाइन क्लब की संस्थापक सदस्य हैं। उनसे kanjirath@yahoo.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी



'बच्चों का खेल' ही 'काम' है....

यह स्टेनर-वाल्डर्फ प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा का दृष्टिकोण है

जी. मणिवन्नन

अपने बचपन के दिनों को याद करिए। सड़क पर बेपरवाही से सनसनाते जाते हुए, छोटे–छोटे निकर पहने, चोटिल घुटनों और चेहरे पर विजयी भाव लिए, हाथ में लकड़ी की डण्डी लेकर उससे पुराने खराब हो चुके सायकिल के चकों को चलाते हुए हम बच्चे। हम दरवाजे की सीढ़ियों पर खड़े होकर अनगिनत तरीकों से "किनारे पर–नदी में" का खेल खेला करते। हम नीचे बैठकर पारम्परिक खेल खेलते थे जैसे पाँच गोटियों से खेला जाने वाला गित्ता, इमली के बीजों या सीपियों से खेला जाने वाला चंगा–अष्टा। हम झुण्ड बनाकर घूमा करते और आम और अमरूद तोड़ते फिरते। हम भागते, खेलते, हँसते, पेड़ों पर चढ़ते, गिरते और फिर अपने पैरों पर खड़े हो जाते और सबसे महत्त्वपूर्ण बात कि हम खूब पसीना बहाते। माता–पिता द्वारा घर वापस आ जाने की एक पुकार लगती और हम घर के अन्दर होते, मुँह–हाथ धोते और पढ़ाई करने बैठ जाते या फिर पूरे परिवार के साथ मिलकर सादा भोजन करते। उन दिनों में टीवी इतना आम नहीं था।

अब उस वक्त से 25 साल आगे बढ़कर आज के समय पर आ जाएँ। शहरी जीवन ऐसा है कि उसने सड़कों पर कारों की संख्या को दोगुना कर दिया है। छोटे परिवारों का मतलब है कि बड़े भाई–बहन अब छोटे भाई–बहनों का खयाल नहीं रखते, और उनकी जगह घर में रहने वाली बाइयों ने ले ली। आज के परिष्कृत और तकनीकी खिलौने बच्चे को चलने–फिरने या सृजनशील होने का विरले ही मौका देते हैं, वे पहले कई बार हो चुकी क्रिया को ही बटन दबाने पर अनन्त रूप से दोहराते रहते हैं। बूढ़ी काकी द्वारा चिथड़ों से बनाई गई गुड़िया की जगह बार्बी डॉल्स ने ले ली है। खेलने के स्थान बिलकुल साफ–सुथरे, सुरक्षित और कल्पना से रिक्त होते हैं। यह कहावत "आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है", आज के समय पर लागू नहीं होती।

अधिकांश माता–पिता अपने घरों से दूर काम करने और धन कमाने में व्यस्त रहते हैं ताकि वे उस धन से अपने बच्चों को अच्छी से अच्छी सुविधाएँ दे सकें। हालिया समय में माता–पिताओं में एक और नई प्रवृत्ति दिखाई देती है कि वे बचपन से छुटकारा पाने की जल्दी में रहते हैं, जितना जल्दी हो सके बचपन को विदा करना चाहते हैं। माता–पिताओं में और स्कूलों में भी 5 साल या उससे भी कम उम्र के बच्चों का प्राथमिक विद्यालय में नामांकन कराने की हड़बड़ाहट है, जिसके पीछे उनकी यह महसूस करने की भावना होती है कि उनके बच्चे बहुत होशियार हैं। शोध से पता चलता है कि जल्दी दाखिला करा दिए गए बच्चे पहले कुछ सालों में तो अच्छी प्रगति दिखा सकते हैं, पर बाद की कक्षाओं में होने वाली पढ़ाई के साथ कदम–ताल मिला कर नहीं चल पाते। क्योंकि उन्हें वस्तुतः एक 'छोटे–से दिमाग' में जानकारी की भरमार का संग्रह करने में दिक्कत होती है। साथ ही साथियों के आगे निकल जाने का दबाव और अच्छा न करने पर माता–पिता की अपेक्षित नाराजगी जैसे कारणों से भी अन्ततः बच्चा चुक जाता है। फिर वह बस ट्यूशनों तथा और अधिक यांत्रिक व उबाऊ कामों में उलझकर रह जाता है। उसके पास 'खेलने' का समय ही कहाँ है?

हमें इस बात को समझना होगा कि बड़ों के विपरीत बच्चों की अपनी एक गति और समय का पैमाना होता है। आपने कब आखिरी बार एक पल रूककर, अपने बच्चे को आकाश में हवाई जहाज या झाड़ियों में कोई सोनपंखी कीड़ा दिखाया था या कि उसके साथ किसी चट्टान पर बैठकर तारों को निहारा था? सैली जैन्किन्सन अपनी किताब "द जीनियस ऑफ प्ले"[1] में कहते हैं, "बचपन बहुत लालित्य, मनोहरता और ऊपर वाले की कृपा का दौर होता है, जीवन को भर लेने का बड़ा मौका होता है, भविष्य के

[1] "The Genius of Play: Celebrating the Spirit of Childhood" by Sally Jenkinson. Hawthorn Press (First published in December 2001)

लिए बड़ी सम्पदा को संचित करने का वक्त होता है। क्या हम बच्चों के प्रति समानुभति रखने की – उनकी बातों को सुनने की, उनकी दुनिया में घुल–मिल जाने की – अपनी क्षमता खो चुके हैं? क्या हम उनकी सुरक्षा करने के साथ–साथ उन्हें स्वतंत्र नहीं छोड़ सकते? हर बच्चे को यह पता होता है कि वह क्या बनना चाहता या चाहती है। और अपने गहरे विवेक और भीतरी दृष्टि से मिलने वाली रोशनी के सहारे वे उस गुप्त भविष्य की ओर जाने वाली राह पर चल पड़ते हैं।"

मैं यहाँ मनोवैज्ञानिक डॉ. स्टुअर्ट ब्राउन का उद्धरण देना चाहूँगा, "बचपन का खेल, वैकल्पिक या पाठ्येत्तर होने के बजाय, किसी भी बच्चे के स्वस्थ विकास की यात्रा का अभिन्न हिस्सा होता है।" जो बच्चे अपने बचपन के सालों में काफी खेले होते हैं, उनके वयस्क जीवन में तनाव से जुड़ी बीमारियों का शिकार बनने की सम्भावना कम होती है, वे अपने घर या कार्य के परिवेशों में या फिर अपने वैवाहिक जीवन में ज्यादा बेहतर ढंग से सामंजस्य बैठा पाते हैं, और जीवन में आने वाली कठिन परिस्थितियों से निपटने के लिए जरूरी आत्मविश्वास तथा मानसिक मजबूती पैदा कर पाते हैं। खेलना जीवन में उतना ही महत्त्व रखता है जितना कि सोना और सपने देखना।

इसलिए वाल्डर्फ प्रारम्भिक बाल्यावस्था कार्यक्रम में, 'खेल ही काम है और काम ही खेल है' तथा किण्डरगार्टन घर का ही विस्तार भर है। कक्षाएँ भी फर्नीचरों से भरे अन्य किण्डरगार्टन परिवेशों के विपरीत, खुली जगह हैं। हम छोटे बच्चों को इधर–उधर जाने (उन मेजों और कुर्सियों के पीछे हिलने–डुलने, उठने–बैठने) से रोकने वाले कौन होते हैं, जबकि प्रकृति बस यही चाहती है कि वे घूमें–फिरें, दौड़ें–भागें? चिकित्सा विज्ञान ने आज यह साबित कर दिया है कि नए जन्मे बच्चों के अंग पूरी तरह से बने नहीं होते हैं, बल्कि बनने की प्रक्रिया में होते हैं। घूमना–फिरना और खेलना नए दाँतों के आने के समय तक शरीर के विकास के लिए तथा अंगों के पूर्णता प्राप्त करने या परिपक्व होने के लिए अत्यावश्यक है। अतः यहाँ दो प्रकार का खेल होता है, एक चहारदीवारी के भीतर खेला जाने वाला और दूसरा उसके बाहर खेला जाने वाला, जो किण्डरगार्टन शिक्षिका द्वारा व्यवस्थित की गई एक सुन्दर लय के साथ बदल–बदल कर चलता रहता है। बाहर खेला जाने वाला खेल 'श्वास छोड़ने' जैसा काम करता है। यह खेल सर्कल टाइम (वृत्त गतिविधि), स्टोरी–टाइम (कहानी का समय) तथा कलात्मक या दस्तकारी वाली गतिविधियों, जो मुख्यतः 'श्वास लेने' जैसी गतिविधियाँ होती है, के बीच–बीच में कराया जाता है। यह लय, जिसका लगातार और पूरी लगन से अनुसरण किया जाता है, बच्चे में प्राण शक्तियों का संचार करती है तथा उनमें अच्छी व पक्की आदतें पैदा होती हैं और उनकी लयात्मक स्मृति का निर्माण होता है जो इस विकासमान मनुष्य के पूरे जीवनकाल के लिए स्वास्थ्य का एक खजाना साबित होती है। उदाहरण के लिए खेल के समय के बाद वस्तुओं को हटाकर जगह को साफ करने का कार्य भी रोज की लय का हिस्सा बन जाता है और यह अपने द्वारा उपयोग की जा रही वस्तुओं की ओर श्रद्धा का भाव पैदा करने की तरफ पहला पाठ होता है।

डॉ. रूडॉल्फ स्टेनर[2] ने अपनी रचना 'स्पिरिचुअल साइंस' में इसे "पदार्थ में आत्मा की तलाश करना" कहा है। इसलिए स्टेनर किण्डरकार्टन के तीन 'आर' हैं, 'रिदम' (लय), 'रिपीटीशन' (दोहराव), और 'रेवेरेन्स' (श्रद्धा)। शिक्षिका खुद इन तीन आर का अनुसरण कर जीती है, इसलिए बच्चे भी उसके कामों, भाव–भंगिमाओं, विचारों और यहाँ तक कि कम्पनों का एक ऐसी गहरी अचेतन प्रक्रिया के तहत अनुसरण कर सकते हैं, जो उन पहले सात सालों में अनुकरण की गतिविधि के माध्यम से उनके मन में बैठ जाती है। कई पारम्परिक किण्डरगार्टन सीखने की इस स्वाभाविक अनुकरण रूपी प्रक्रिया से हटकर शिक्षण की एक कहीं अधिक मस्तिष्क–उन्मुख उपदेशात्मक प्रक्रिया की तरफ चले गए हैं। निर्देशन और शिक्षण बच्चे की स्वप्न चेतना को उपयुक्त समय से पहले ही जगा देते हैं जिसके कारण बाद के स्कूली वर्षों में बच्चा उद्देश्यपूर्वक सीखने में भारीपन और बोझ महसूस करता है। परिवेश की खूबसूरती, खेल में भीगी हुई उसकी सतत लय, भाषा निर्माण के अवसर, उन दक्ष हाथों के साथ काम करते हुए ज्ञान की शक्तियों का जागना और उस कच्ची उम्र में घर छोड़कर स्कूल आने का सम्पूर्ण आनन्द, ये किसी स्टेनर किण्डरगार्टन की ऐसी विशेषताएँ हैं जो दुनिया की किसी भी अन्य व्यवस्था में मौजूद नहीं हैं।

[2]www.rsarchive.org For a collection of the works, lectures given by Dr. Rudolf Steiner, the pioneer of Steiner-Waldorf education.







Photo courtesy: Smitha, Bangalore Steiner School

जी.मणिवन्नन बेंगलूरु स्टेनर स्कूल के संस्थापक न्यासी, किंगडम ऑफ चिल्ड्रन प्री–स्कूल के संस्थापक निदेशक और बेंगलूरु में होने वाले स्टेनर शिक्षा विचारगोष्ठी के समन्वयक हैं। उन्होंने विशेष शिक्षा में आर.सी.आई. (भारतीय पुनर्वास परिषद) योग्यता कोर्स और निवारक व सामाजिक–चिकित्सा शिक्षा में तीन वर्ष का कोर्स किया है। शिक्षाविद के रूप में वे एक शिक्षक–प्रशिक्षक भी हैं जो शिक्षकों में काम करने की एक भीतरी प्रेरणा को जगाने का काम करते हैं तथा बच्चों के साथ काम करते वक्त उन शिक्षकों को अपनी चरम सृजनशीलता को तलाशने में मदद करते हैं। उनकी अन्य रुचियाँ हैं परामर्श देना, कला, नाट्यमंच और संगीत। उनसे mani@heartnsoulfoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी

ग्रामीण कर्नाटक में पालक गुणवत्तापूर्ण प्रारम्भिक शिक्षा चाह रहे हैं। क्या शैक्षिक संस्थाएँ उनकी आकांक्षा की पूर्ति कर सकती हैं?

एच.एल.सी. की कहानी



हिप्पोकैम्पस लर्निंग सेंटर्स (एच.एल.सी.) ने ग्रामीण कर्नाटक में अपर्याप्त शैक्षिक सुविधाओं वाली आबादियों को कम कीमत पर अच्छी गुणवत्ता वाली प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा प्रदान करने के लिए 2011 में अपने 17 किण्डरगार्टन केन्द्रों की शुरुआत की। 2013 में माण्ड्या तथा दावनगीर जिलों में फैले हुए 104 ग्रामीण केन्द्रों के माध्यम से एच.एल.सी. की पहुँच 3000 बच्चों तक हो गई।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था के शैक्षिक प्रयास में 2.5 से 6 साल की उम्र के बच्चों को लक्ष्य करके बनाया गया एक 3–वर्षीय कार्यक्रम होता है। इस कार्यक्रम के द्वारा हासिल किए जाने वाले सीखने के परिणाम स्पष्ट रूप से परिभाषित हैं और वे विकासात्मक दृष्टि से उपयुक्त हैं। इसमें सिखाने–सीखने का अच्छी तरह से संतुलित दृष्टिकोण अपनाने के लिए संज्ञानात्मक, शारीरिक, सामाजिक–भावनात्मक तथा सृजनात्मक जैसे सीखने के सभी क्षेत्रों पर ध्यान दिया गया है।

कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाले बच्चे मुख्य रूप से पहली पीढ़ी के सीखने वाले हैं। माता–पिता दोनों के कृषि कार्य में संलग्न रहने के कारण उनके बच्चे हमारे केन्द्रों पर सीखने और आनन्द लेने की गतिविधियों में 6 घण्टे बिताते हैं। अधिकांश बच्चे रविवारों को भी अपने पालकों से उन्हें केन्द्रों पर पहुँचाने के लिए कहते हैं।

इस प्रारम्भिक शैक्षिक प्रयास को क्रियान्वित करने की यात्रा एच.एल.सी. में शामिल सभी लोगों के लिए सीखने का एक विशद अनुभव रही है। इस प्रक्रिया में हमने अनेक मिथ्या धारणाओं को ध्वस्त किया है।

हमारे अनुभव का सर्वोपरि सबक है कि पालक प्रारम्भिक शैक्षिक प्रयास में खर्च करने के लिए न केवल राजी हैं, बल्कि उत्सुक भी हैं। शुरुआत में इसके बारे में सवाल उठे थे कि पालक एक प्रारम्भिक शैक्षिक कार्यक्रम के लिए खर्च करना चाहेंगे या नहीं। एच.एल.सी. में हमें पता चला कि पालक आँगनवाड़ियों का ऐसा विकल्प चाहते थे जहाँ उनके बच्चों को उस प्रकार की शिक्षा उपलब्ध हो जो उनकी औपचारिक स्कूली पढ़ाई के लिए मजबूत आधार तैयार करने में मदद करे। अनेक पालक यह बात समझते थे कि यदि उनके बच्चे किसी औपचारिक प्रारम्भिक शैक्षिक कार्यक्रम में शामिल हुए बिना ही कक्षा 1 में प्रवेश करेंगे तो वे नुकसान में और पिछड़े रहेंगे।



शुरुआती 17 शिक्षकों के आधार से लगभग 180 शिक्षकों तक पहुँचने के एच.एल.सी. के विकास के दौरान हासिल हुआ दूसरा बड़ा सबक यह है कि स्थानीय समुदाय में से शिक्षकों को खोज लेना, उन्हें प्रशिक्षित करना और काम पर रखना तथा इस प्रक्रिया को लगातार चलाते रहना सम्भव है। इस तरह से स्थानीय समुदाय की एक महिला सशक्त बनती है और उस समुदाय के बच्चों का गुणवत्ता सहित सीखना सुनिश्चित हो जाता है। इससे समुदाय की भागीदारी भी बढ़ती है। आज हम पाते हैं कि पालक अपने बच्चों के सीखने के बारे में पूछताछ करते हैं, पालक–शिक्षक बैठकों में नियमित रूप से शामिल होते हैं और अपने बच्चों के आगे सीखने के लिए जानकारी साझा करते हैं।

कुछ ऐसी सफलताएँ भी हैं जिनको लेकर एच.एल.सी. में काम करने वाले हम सभी लोग उत्साहित हैं। हमारे शिक्षक अब ऐसी बातें नहीं कहते जैसे कि "मंजुनाथ मन्दबुद्धि है" या "निर्मला अँग्रेजी में कमजोर

है”। अब वे पालकों से यह कहते हैं कि “मंजुनाथ गिनती करने में अच्छा है लेकिन जब संख्याओं को लिखने की बात आती है तो उसे ज्यादा अभ्यास करने की जरूरत है”। “निर्मला को कहानियाँ सुनना बहुत भाता है, और वह कहानी के आधार पर पूछे गए सवालों के उत्तर भी देती है, लेकिन उसे अक्षरों को पहचानने में ज्यादा मदद की जरूरत है।” बच्चों के सीखने का आकलन तो किया जाता है, पर वह ज्यादा दोस्ताना और गैर–डरावने वातावरण में किया जाता है।

गाँवों में हमारे शिक्षक जिस तरह अँग्रेजी ध्वनियाँ सिखाने में सफल हुए हैं, वह हमारे लिए एक अन्य सुखद परिणाम रहा है। आज एच. एल.सी. केन्द्रों पर उच्च किण्डरगार्टन कक्षाओं के बच्चे अक्षरों की आवाजों पर जोर देते हुए बोलकर पढ़ते हैं। जिस ढंग से बच्चों ने सरल वाक्यों को पढ़ना शुरू कर दिया है, उससे शिक्षकों के साथ ही उनके पालक भी आनन्दित हैं। बच्चों को पढ़ना सिखाने के लिए ध्वनियों के ज्ञान का उपयोग करने का निर्णय लेने के लिए हमने दो वर्ष का समय विचार–विमर्श करने में लगाया। दो माह की छोटी अवधि का प्रायोगिक परीक्षण किया। इसमें पहली चुनौती तो स्वयं शिक्षकों के रूप में सामने आई। ध्वनियों की जानकारी का विचार उनके लिए सर्वथा अनजाना था। उन प्रशिक्षण सत्रों में, जिनमें वे अक्षरों की ध्वनियों का अभ्यास करते थे, अकसर उनकी घबराहट भरी हँसी सुनाई देती थी। कक्षाओं में जितनी तेजी से बच्चों ने इस अवधारणा को अपना लिया उससे शिक्षकों को बहुत आश्चर्य हुआ। फिर पीछे मुड़कर नहीं देखना पड़ा। आज शिक्षक ध्वनि–आधारित पद्धति का उपयोग करने में गर्व अनुभव करते हैं और उसके बारे में पालकों से भी चर्चा करते हैं।



एच.एल.सी. केन्द्रों पर शारीरिक स्वच्छता सम्बन्धी अच्छी आदतों पर जोर देने का प्रभाव बच्चों के माध्यम से अन्य लोगों तक भी पड़ा है। पालक हमारे पास आकर बताते हैं कि उनका बेटा या बेटी इसका आग्रह करते हैं कि सभी लोग शौच के बाद अपने हाथ अच्छी तरह से धोएँ। कुछ समुदायों ने (यदि उनके गाँव में कोई शौचालय नहीं है) तो हमसे सम्पर्क करके वहाँ शौचालयों को निर्मित करने की इच्छा जताई है।

जैसी कि किसी भी बड़े प्रयास में अपेक्षा की जा सकती है, ऐसी कई चुनौतियाँ रही हैं जिनका हमें लगातार सामना करना पड़ा है। अधिकांश गाँवों में (और यहाँ तक कि शहरों में भी) सीखने का मतलब लिखना समझा जाता है। पालक लिखित कार्य को ही सीखने का प्रमाण मानते हैं। बिना समझे लिखने की इस प्रथा, या कुप्रथा, में न केवल प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा (ई.सी.ई.) के स्तर पर, बल्कि सभी स्कूलों में प्राथमिक स्तर पर भी सुधार किए जाने की जरूरत है। एच.एल.सी. में हर अकादमिक सत्र के आरम्भ में पालकों के साथ इसके बारे में चर्चाएँ करके हमने इस धारणा को सुधारने का प्रयास किया है। हालाँकि इसका प्रभाव तो पड़ता है, पर पालक फिर भी अपनी शंकाएँ लेकर तब हमारे पास आते हैं, जब वे पड़ोस के किसी कान्वेंट स्कूल के बच्चे को पहले ही महीने में ए से जैड तक अक्षरों को लिखता हुआ देखते हैं। प्रारम्भिक वर्षों के शैक्षिक प्रयासों में सिखाने–सीखने की हानिकारक पद्धतियों के इस्तेमाल के बारे में जानकारी देने के लिए व्यापक स्तर पर अभियान चलाए जाने की जरूरत है।

गायत्री आर. पी. हिप्पोकैम्पस लर्निंग सेंटर्स gayatri_rp@hippocampus.in

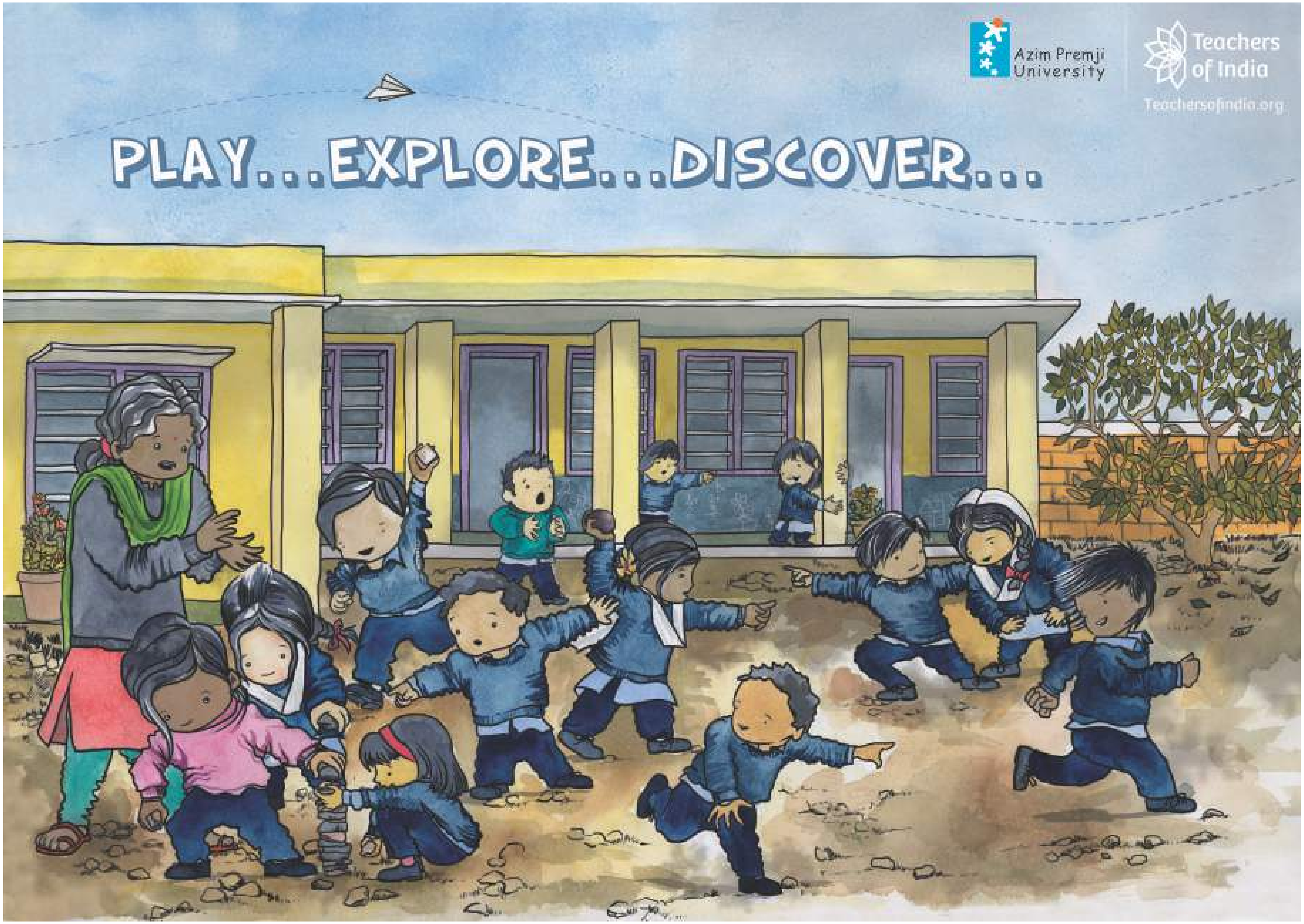
अनुवाद : भरत त्रिपाठी

सेसमी वर्कशॉप इण्डिया

सेसमी वर्कशॉप इण्डिया वह संस्था है जो गली गली सिम सिम तथा अन्य कार्यक्रमों का निर्माण करती है और जो बच्चों को उनकी सर्वोच्च सम्भावना तक पहुँचने और स्कूल तथा जीवन के लिए तैयार होने में मदद करने के लिए संचार माध्यमों की शक्ति का उपयोग करती है। इस संस्था के पेशेवर लोग 0 से 8 साल की उम्र के बच्चों के लिए उच्च गुणवत्ता की रोचक सामग्री को विकसित करके उसे टेलीविजन, रेडियो, सामुदायिक रेडियो, छपी हुई सामग्री, डिजिटल तथा सामुदायिक प्रसार आदि सभी संचार माध्यमों के द्वारा वितरित करते हैं। उनकी सामग्री का लक्ष्य, भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विविधता को आनन्दपूर्वक सराहते हुए, अकादमिक तथा जीवन कौशलों को हासिल करने में छोटे भारतीय बच्चों की सहायता करना है, ताकि समग्र रूप से उनके संज्ञानात्मक, सामाजिक–भावनात्मक तथा शारीरिक विकास को बढ़ावा मिले। उनकी टेलीविजन शृंखला, गली गली सिम सिम, के 2006 में राष्ट्रीय केबल चैनलों पोगो और कार्टून नेटवर्क पर तथा राष्ट्रीय सार्वजनिक प्रसारक दूरदर्शन पर आरम्भ होने के बाद से इसे हर साल एक करोड़ बच्चों के द्वारा देखा गया है। इसके शैक्षणिक सन्देश ऑल इण्डिया रेडियो तथा सामुदायिक रेडियो स्टेशनों, व्यापक सामुदायिक प्रसार संस्थाओं, तथा सैल फोन और इंटरनेट जैसे नए और उभरते हुए संचार माध्यमों के द्वारा प्रसारित किए जाते हैं। हाल ही में, सेसमी स्ट्रीट पूर्व–स्कूलों को प्रारम्भ करके उन्होंने स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश किया है। इन स्कूलों की पाठ्यचर्या तथा पद्धति प्रॉजेक्ट–आधारित स्वयं करके सीखने के तरीके को सृजनात्मक दृष्टिकोणों से जोड़ती है जिससे समीक्षात्मक सोच और समस्याओं को हल करने की क्षमता का पोषण हो सके तथा जीवनपर्यन्त सीखने को बढ़ावा देने वाला आधार निर्मित हो सके।

अधिक जानकारी के लिए देखें :
http://www.sesameworkshopindia.org/ or
www.galligallisimsim.com

अनुवाद : सत्येन्द्र त्रिपाठी


Azim Premji University
Teachers of India
Teachersofindia.org
PLAY...EXPLORE...DISCOVER...

अगला अंक

समावेशी शिक्षा

No. 134, Doddakannelli
Next to Wipro Corporate Office
Sarjapur Road, Bangalore - 560 035. India
Tel: +91 80 6614 9000/01/02 Fax: +91 806614 4903
E- mail: learningcurve@azimpremjifoundation.org
www.azimpremjifoundation.org

Also visit Azim Premji University website at
www.azimpremjiuniversity.edu.in

Azim Premji University
A publication from
Azim Premji University

For suggestions or comments and to share your views or personal experiences, do write to us at
learningcurve@azimpremjifoundation.org

Earlier Issues of the Learning Curve may be downloaded from
http://azimpremjifoundation.org/Foundation_Newsletters or
http://www.azimpremjiuniversity.edu.in/content/publications